# गोधूलि

[ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित लेखिका आशापूर्णादेवी
के मूल बंगला उपन्यास 'गोधूलि' का हिन्दी रूपान्तर]

# गोधूलि

## आशापूर्णा देवी

अनुवाद : देवलोना



उसकी गाड़ी जब इनके दरवाजे पर आकर रुकी, शहर के इस इलाके में दिन की चक्की चलनी शुरू नहीं हुई थी। सड़क मानो नींद से तुरंत जागी थी।

फुटपाथ के इधर-उधर सौभाग्यशाली मकानों या मकानों के साईन बोर्डों को सुरक्षित रखने के लिए आगे निकले हुए शेड के नीचे जिन अभागों ने अपनी राजशैय्या बिछायी थी, सड़क के होस पाइप ने तब तक उनकी चन की नींद में मटमैला पानी नहीं छिड़का था। कई दुकानें तो बिलकुल ही बन्द थीं। कुछ अधखुली थीं।

अखबार वाले साइकिलों की घंटी बजाते हुए मकानों के खुले बरामदों में या खिड़कियों के अन्दर फुर्ती से अखबार फेंक कर निकल जा रहे थे। दूध वाले सील किये बोतलों को घंटी बजाकर घरवालों को सूचित कर चौतन दरवाजे पर रख रहे थे।

इस समय सबसे अधिक सक्रिय घर घर बर्तन माँजने वाली मेहरियाँ थीं। इनकी संख्या भी कम नहीं थी। सुनने में आया था कि इनकी बस्ती यहाँ से हटा दी जाने वाली है, पर बस्ती वालों को इस बात की परवाह ही क्या थी? बस्ती वाले अब किसी बात से विचलित नहीं होते। वे जान गए थे कि अब जो होना है, होकर ही रहेगा। इसलिए वे भी आखिरी समय तक अपनी गृहस्थी समेटने का कोई विचार नहीं रखते थे।

हाल तक लोग इस इलाके को शहर के बाहर ही समझते थे। पर शहर के विस्तार के साथ वह बात नहीं रही। फिर भी यदि बड़ी सड़क को छोड़ दिया जाए तो इधर-उधर के इलाके में कहीं नल नहीं तो कहीं पक्की नालियाँ नहीं, तो कहीं सैनिटरी नहीं।

इनका मकान मेन सड़क पर था।

अच्छा मकान। बिलकुल नया नहीं, पर आधी इमारत नयी थी।

जिन दिनों यहाँ मिट्टी के भाव जमीन बिक रही थी, उन्हीं दिनों

अनुपम ने यह जमीन खरीदी थी—निरुपम, नीलांजन और इन्द्रनील के पिता अनुपम मित्रा। उसके बाद जमीन के भाव असली भाव तक पहुँचें, अनुपम मित्रा ने रिटायर होने के बाद बड़े उत्साह से वहाँ मकान बनवाया।

पर किसी एक और भी जगह उनके नाम से जमीन बंट रही थी—यह बात शायद कल्पना में भी उन सज्जन को मालूम नहीं थी। सूचना एकाएक ही मिली। पत्नी और परिवार को साथ ले जाने में बड़ी कठिनाई थी। अनुपम मित्रा को अकेले ही जाना पड़ा। उस जमीन पर उस समय नये मकान की छत पिटवायी जा रही थी।

कुछ दिनों तक काम-काज बंद रहा। उसके बाद फिर मकान पूरा बन जाने के बाद ही काम खत्म हुआ। अनुपम मित्रा की परिकल्पना और योजना के अनुसार ही सब कुछ बना। कहीं भी कोई कमी नहीं थी। कमरे की दीवारों का रंग, बाथरूम का मोजाइक आदि। सुचिन्ता मित्रा ने कहा—उनकी इच्छा थी। वैसा ही होना चाहिए।

सिर्फ गृह-प्रवेश का उत्सव अनुपम मित्रा की इच्छा के अनुसार नहीं हुआ। बिना आडम्बर एक दिन सुचिन्ता मित्रा अपने तीनों लड़कों के साथ गृहस्थी के पुराने सामान के साथ नए मकान में चली आयी।

उसके बाद तो चारों तरफ पटापट मकान बनते गए। छोटे, बड़े, मध्यम, आधुनिक, और अति आधुनिक। इन सबके बीच अनुपम मित्रा का मकान बुझा-बुझा सा लगा।

पर 'अनुपम कुटीर' के लोगों को इससे कुछ फर्क नहीं पड़ा, वे अपने ही रुटीन में बंधे नियमों के बीच बझे रहे।

छोटा बेटा इन्द्रनील अगर कभी बाहर से आकर कहता कि कोने वाली जमीन पर एक नया मकान बन रहा है, तो कौन बना रहा है, कैसा बन रहा है? कौतूहलवश भी कोई दो और बातें नहीं पूछता था। कभी-कभी सुचिन्ता कुछ कहती—जमीन पर मकान नहीं बनेंगे तो क्या यों ही पड़ी रहेगी?

नीलांजन कहता—सड़क पर फिरता रहता है। यही देखता रहता है कि कहाँ कौन क्या बना रहा है?

निरुपम तो इतना भी नही कहता।

निरुपम इसी इलाके के नये विश्वविद्यालय मे प्राध्यापक था। नीलांजन ने एम० ए० करने के बाद बड़ी मुश्किलों के बाद बर्मा शैल में अच्छी-खासी रकम की नौकरी जुटा ली थी। इन्द्रनील एम० एस०-सी० में पढ़ रहा था।

अनुपम के समय से ही इस घर मे एक पुराना नौकर था। घर का अधिकतर काम वही करता था। देर टाईम महरी आकर झाड़ू पोछा कर जाती थी। रिश्तेदार या जान-पहचान वाले शायद ही कभी इनके घर पर आते, क्योंकि अपने घर से ये भी शायद ही कभी जाते थे।

मुहल्ले मे किसी से इनका परिचय नही था। मुहल्ले में जब कोई नया परिवार आता तो कर्तव्य के नाते वे इनसे मिलने आते, पर फिर समझ जाते कि ये मिलने-जुलने वालो मे नही। सुचिन्ता और सुचिन्ता के पुत्रों के उदासीन व्यवहार से प्रथम परिचय ही आखिरी परिचय बन जाता था।

उसकी टैक्सी अगर दिन की प्रखर धूप मे दरवाजे पर आकर खड़ी होती तो अवश्य ही मुहल्ले के लोग कौतूहलवश खिडकी, बरामदो से झांकते और हैरान होते कि मामला क्या है? आखिर अनुपम कुटीर मे कौन आ गया? उस अजनबी को देखे बिना कोई भी खिडकी नही छोड़ता।

पर जब उसकी टैक्सी पहुंची तो अधिकतर लोग सुबह की मीठी नींद में डूबे हुए थे।

अनुपम कुटीर का कोई भी काम शोरो-शराबे से नहीं होता था। चार सभ्य शांत आदमियों की दिनचर्या शांत ढंग से ही प्रारंभ होती थी। पर अनुपम मिश्रा जब जीवित थे, बात ही कुछ और थी। वे अकेले ही हो हल्ला करते। उनके रोज के खाने मे यदि [illegible] नहीं मिलें तो वे नाराज होते। इतने बातूनी थे कि घर मे और भी चार लोग हैं, इसका आभास ही नही होता था। पर वे तो सारा हल्ला-गुल्ला अपने साथ लेकर किराये के मकान से ही विदा हो गए थे। उन [illegible] जाने के बाद अनुपम कुटीर शांत खड़ा था।

यहाँ तक कि पुराना नौकर सुबल, जो चौबीसों घंटे बाबू से डाँट खाता रहता था और ड्राइवर से लड़ता था, वह भी शांत गूंगा बन गया था। सुबह उठकर चुपचाप झाड़ू लगाता, फिर दरवाजे का एक पल्ला खोलकर दूध की बोतल उठाता। उसके बाद वह चूल्हा सुलगाता और फिर सब्जी-भाजी लाने के लिए बाजार चला जाता। सब्जी का पैसा उसी के पास रहता था। खत्म होने पर फिर माँग लेता। उससे कभी कोई हिसाब नहीं माँगता। हिसाब देने के लिए जाए भी तो लोग नाराज हो जाते।

सुचिन्ता सुबह ही उठ जाती। उठते ही वह बेडरूम से लगे बाथरूम में नहाने के लिए चली जाती। स्नान से पूर्व वह किसी से भी भेंट नहीं करती। नहानघर में अनुपम मित्रा की इच्छा के साज शृंगार के सभी उपकरण मौजूद थे। बेडरूम भी वैसी ही साज-सज्जा का था। स्नानघर और शयनकक्ष सुचिन्ता अकेले ही भोग रही थी।

सुचिन्ता को देखने पर ऐसा नहीं लगता था कि वह कोई भयानक शोक या हाहाकार मन में पाल रही है। यह आराम का जीवन उसे निरन्तर पीड़ा पहुँचा रहा है, ऐसा भी नहीं लगता था बल्कि लगता था कि वह हमेशा से इसी जीवन से अभ्यस्त थी। नींद से उठते ही बाथ टब में घंटे भर डूबी रहने के बाद वह रूबिया का अच्छा ब्लाउज और सफेद मलमल की धोती पहन कर अपनी सुडौल बाँहों को गोद में रखकर घंटे भर चुपचाप बैठी रहने के बाद कमरे से बाहर आकर भी लड़कों की नींद तब तक खुली या नहीं, इस पर हल्ला-गुल्ला नहीं कर अखबार लेकर टेबल के पास आकर बैठती, मानों आजीवन वह ऐसा ही करती आयी हो।

उसको देखकर ऐसा नहीं लगता था कि कुछ ही दिन पहले तक वह सुबह जैसे तैसे नहाकर चूड़ियों की झंकार के साथ सब्जी काटती थी, घी-तेल, आटे-दाल की चिन्ता में परेशान होती थी, पैरों में आलता, माथे पर सिन्दूर की बिंदी लगाती थी। अपने खाने और पत्नी के कपड़ों के प्रति अनुपम मित्रा का बड़ा ही ख्याल रहता था। चौड़े बार्डर वाली साड़ी के अलावा सुचिन्ता दूसरी साड़ी पहन ही नहीं सकती थी।

अनुपम मिश्रा जीवन के सभी मामलों में राजकीय ठाठ बनाकर रखने वाले तबियत के आदमी थे। हो सकता है आजीवन शौक और ठाठ-बाट का बोझ ढोते-ढोते सुचिन्ता में कोई अनासक्ति आ गयी हो। और बच्चे ? वे सभी माँ पर गए थे।

सुचिन्ता के अखबार लेकर बैठने के बाद ही निरुपम, नीलांजन और इन्द्रनील नींद से उठते। वे फिर टेबल पर आकर बैठते। सुबल चाय लाकर देता। सुचिन्ता कपों में चाय डालती। पूछती—एक बिस्कुट और दूँ ? टोस्ट नहीं लिया ? चाय पड़ी रह गयी।

वे कहते—अच्छा एक दे दो। नहीं और नहीं चाहिए। चाय थोड़ी कड़ी बन गयी है। अखबार सभी पढ़ने पर आपस में किसी बात पर आलोचना या बहस नहीं करते।

नीचे वाले तल्ले में नौकरानी संध्या सुबल को कहती—दोनों टाइम आती हूँ, जाती हूँ, पर किसी की आवाज तक नहीं आती। ऐसा क्यों ? सुबल संक्षिप्त सा जवाब देता—यह घर गूंगा है। यह घर वाकई गूंगा बना पड़ा था।

उस दिन सुचिन्ता तब तक अपने कमरे से नहीं निकली थी, लड़के भी नींद से नहीं उठे थे, तभी उसकी गाडी दरवाजे पर आकर रुकी।

सुबल ने दूध लेने के लिए दरवाजा खोला ही था। उसने देखा, दूधवाला बोतल रखकर चला गया और सामने रुकी गाड़ी से कोई लड़की उसी मकान के नेम प्लेट को पढ़ने की कोशिश कर रही थी।

'हाँ, यही तो अनुपम कुटीर है।'

फिर निश्चित मुद्रा में वह उतर आयी और बोली—उतर आइए पिताजी।

उसके कहते ही छोटे कद के एक प्रौढ़ व्यक्ति गाडी से नीचे उतरे। सर के बीचो-बीच छोटा-सा गंज। कनपटी के बाल सफेद हो गए थे। चेहरे पर एक अजीब सी असहायता।

सज्जन की तबीयत खराब होगी यह तो सुबल समझ गया, पर यह नहीं समझ सका ये लोग हैं कौन ? वह इतने दिनों से इस घर में काम कर रहा था, पर इन्हें कभी नहीं देखा था।

लड़की बड़ी ही चुस्त और स्मार्ट थी, यह तो सुबल भांप भी गया क्योंकि छूटते ही उसने सुबल पर हुक्म चलाया—एक सूटकेस और एक बेडिंग है। टैक्सी से उतार लो और यह लो दस रुपए। मीटर देखकर पैसे चुका दो। और हाँ सुनो, घर पर माँ है न ? सुबल ने सर हिलाकर 'हाँ' कर दिया। फिर पिता का हाथ पकड़कर वह लड़की सीढ़ियों से सीधे ऊपर चली गयी। सूटकेस और बेडिंग थामे सुबल मुँह फाड़कर देखता रहा।

सीढ़ी से ऊपर की तरफ चढ़ते ही टेबल और कुर्सियाँ लगी हुई थीं, जहाँ सुचिन्ता और लड़के चाय पीते और अखबार पढ़ते थे।

—पिताजी बैठिए।

एक असहाय सी नजर दौड़ाकर सज्जन ने कहा—देखा न तुमने ? मैंने कहा था, कहीं कोई भी नहीं है। जो जहाँ थे, सब मर गए हैं। फिर भी तुम मुझे क्यों यहाँ खींच लायीं ?

—कैसी बातें करते हैं पिताजी ? सुचिन्ता बुआ तो हैं न ?

—नहीं नीतू नहीं। उन बूढ़े सज्जन ने जिद ही ठान ली कि कहीं कोई भी नहीं है। सभी मर खप गए हैं।

नीतू उर्फ नीता बोली—छि: पिताजी ऐसा नहीं कहते। सुचिन्ता बुआ क्या समझेंगी ?

—बुरा मानेंगी ? वे सहम गए।

—क्यों नहीं मानेंगी ? वे जिन्दा हैं, भली-भाँति हैं।

उनकी बात खत्म भी नहीं हुई थी कि सुचिन्ता की तीखी आवाज गूंज उठी—कौन ?

—मैं हूँ बुआ। नीता ने सुचिन्ता के पैर छुए। फिर बोली—आपके पास चली आयी।

—चली आयी ? मेरे पास चली आयी ? सुचिन्ता की आँखों में भय की छाया उतर आयी। बोली—क्यों ?

—वाह ! आना मना है क्या ?

सुनकर लगा कि सुचिन्ता भी नीता के पिता की तरह ही एकाएक असहाय हो गयी। अनमनी सी बोली—बिना कोई खबर दिए सीधी यहाँ

चली आयी—क्यों ? तुम्हारे तो और भी कई रिश्तेदार हैं।

नीता कुछ बोले, इसके पहले ही उसके पिता ने कहा—मैंने तुम्हें पहले ही कहा था न नीतू, कहीं कोई नहीं है, सब मर चुके हैं।

—आह ! पिताजी, ऐसा नहीं कहते। सुचिन्ता बुआ तो हैं न ! वो यहीं तो खड़ी हैं।

—तुम मुझे बेवकूफ बना रही हो। वह सुचिन्ता क्यों होने लगी ? सुचिन्ता के पति अमीर आदमी हैं। उसके बदन पर तो कितने जेवर थे।

—उनके जेवरात तो चोरी हो गए थे पिताजी। नीता ने कहा।

—चोरी हो गए ? बूढ़े सज्जन थोड़े उदास हुए फिर बोले—चोरी हो गए तो क्या हुआ। उसके पति फिर से उसे जेवर क्यों नहीं खरीद देते ?

—देंगे। अब आप आ गए हैं न, सब ठीक हो जाएगा।

—तुम सच कह रही हो न नीता कि सब ठीक हो जाएगा।

—हाँ पिताजी।

सुचिन्ता अब दरवाजे से परे हट आयी। अनुपम कुटीर की हवा मानों भारी हो गयी थी।

थोड़े दिनों के बाद बहुत मिन्नत के साथ एक दिन नीता बोली—बुआ, मुझे जरा मदद करनी होगी आपको।

—मदद ! तुम्हारी मदद करनी पड़ेगी।

—ऐसा ही समझिए बुआ। पिताजी को ठीक करने में मुझे आपकी मदद चाहिए।

सुचिन्ता असहाय-सी बोली—पर मेरे लड़के ?

यह मानो कोई प्रश्न नहीं, एक आत्म-जिज्ञासा थी।

—आप अन्यथा न लें बुआ ! सब ठीक हो जाएगा।

—तुम लोग आपस में चुपचाप क्या बातें कर रहे हो ? सज्जन ने कहा।

—कुछ नहीं। बस बुआ पूछ रही थीं पिताजी कि सुबह आप नाश्ते में क्या लेते हैं ?

—पूछ रही हैं ? क्यों ? क्या सुचिन्ता को मालूम नहीं है ?

—वो तो पहले की बात है। तब बुआ जानती थी पर अभी तो आप

डाक्टर की राय के अनुसार चल रहे हैं।

—हाँ ! हाँ बत्तीसी निकालकर सज्जन हँसे फिर बोले—देखा आज-कल सब भूलभाल जाता हूँ। पर क्या तुम सुचिन्ता हो ? वाकई सुचिन्ता हो ? सुचिन्ता के बदन पर तो बहुत गहने थे।

सुचिन्ता के तीन लड़कों के दरवाजों पर से भारी भरकम पर्दे हट गए थे। नींद से उठकर वे भी हतप्रभ से हो गए थे। सुचिन्ता की तरह वे 'कौन ?' कहकर चिल्ला नहीं पड़े। सिर्फ अपने-अपने कमरे से मानों निकलना भूल गए। वे सभी अवाक् होकर सोच रहे थे—ये लोग हैं कौन ? कब आए ? इनके आने की बात किसे मालूम थी।

इस वृद्ध सज्जन को क्या उन्होंने कभी देखा था ? अगर देखा था तो कहाँ—दिल्ली या आगरा ? फिर याद आया कि दिल्ली में ही कहीं घूमते घूमते किसी सज्जन को देखकर सुचिन्ता चौंक पड़ी थी। बोली थी—कौन ?

वह सज्जन भी खड़े हो गए थे। पर उनके चेहरे पर एक असहाय-सी छाप थी। क्या यह वही आदमी हैं। शायद।

पर उसके बाद क्या हुआ ?

यह याद नहीं आया। शायद पिताजी अनुपम मित्रा हो-हल्ला करते हुए आ गए। माँ थोड़ा पीछे हट आयी।

पर यह लड़की ?

इस लड़की को तो इन लोगों ने कभी नहीं देखा था।

इन्द्रनील ने ही पहले कमरे से निकल कर धीरे से पूछा—ये लोग कौन हैं माँ ?

ये कौन हैं ? सुचिन्ता क्या जवाब दे, उसकी समझ में नहीं आया। परिचय देने लायक क्या था उनके पास। सुशोभन मुखर्जी नाम के व्यक्ति सुचिन्ता मित्रा के रिश्तेदार कैसे हो सकते थे ? सुचिन्ता को ऐसी मुश्किल में डालने के लिए ही क्या यह लड़की आयी थी ? क्या तो नाम है उस लड़की का, पूछना पड़ेगा क्या ?

पर इस विपत्ति ने सुशोभन ने स्वयं ही सुचिन्ता को छुटकारा दिलाया। भयभीत होकर चिल्लाकर बोले—नीतू, ये लोग कौन हैं ?

नीना अपने पिता की इस अवस्था से परिचित थी इसलिए बिना घबराए बोली—आप बहुत भूलते हैं पिताजी। ये ही तो सुचिन्ता बुआ के लड़के हैं।

—लड़के। इतने सारे लड़के हैं सुचिन्ता के। और मेरी सिर्फ एक लड़की। फिर सुचिन्ता को सम्बोधित कर बोले—समझीं सुचिन्ता, नीनू जब बिल्कुल छोटी-सी थी, उसकी माँ मर गयी और फिर उसके बाद तो सभी मर गए।

सुचिन्ता लड़कों की तरफ आँखें भी उठाती तो कैसे ? क्या वह लड़कों की मौजूदगी ही भूल जाए।

शायद सबसे आसान उपाय यही था। इसीलिए हल्के से बोली—वाह ! आमखा सबको मार दे रहे हो। मैं कहाँ मर गई हूँ ?

—हाँ। हाँ। तुम तो हो। वे सज्जन बोले।

संभवतः सुचिन्ता के तीनों लड़के भी निश्चिंत हुए। माँ के मैके के कोई होंगे। या दूर के कोई रिश्तेदार। पर बुड्ढा है पगलेट सा। पर ये लोग यहाँ आए क्यों है ? क्या इनके यहाँ आने की पहले से कोई बात थी ? और क्या यह बात सिर्फ सुचिन्ता को ही मालूम थी ? वे सभी यही सोच रहे थे—बड़े ताज्जुब की बात है। यह लड़की सुचिन्ता को कब और कैसे इतना जान गयी ?

सुचिन्ता सहज भाव से बोली—इतनी सुबह किस गाड़ी से आयी नीनू ?

नीना हँस कर बोली—पूछिए मत बुआ। हम क्या आज आए है ? कल सारी रात वेटिंग रूम मे काटनी पड़ी थी।

—क्या कह रही हो ?

—और क्या कर सकती थी। गाड़ी शाम को सात बजे पहुँचने वाली थी पर तीन घंटे लेट हो गयी। उतनी रात को कहाँ मकान को खोजती फिरती। पहले तो यहाँ कभी आयी नहीं थी न।

—फिर तो तुम लोगों को काफी कष्ट उठाना पड़ा होगा नीनू ? अब जल्दी से स्नान कर खाना वाना खा। सुलेखा तुम इन्हें नहलाओगे ?

—अगर नीनू कहती है तो नहा लेंगे

—हां पिताजी, नहा लीजिए। कल रात पूरी नींद नहीं हो पायी है।

अचानक नीलांजन ने नीता से पूछा—दिल्ली से शाम को सात बजे यहां कौनसी गाड़ी पहुंचती है ?

—दिल्ली से ? क्या पता। स्मार्ट नीता भी थोड़ी सहमी, फिर बोली—पर हम दिल्ली से तो नहीं आ रहे। पिताजी को लेकर कुछ दिनों के लिए दार्जिलिंग गई थी।

—अच्छा।

—पर हम दिल्ली में रहते हैं, यह आपको कैसे मालूम ?

नीलांजन के चेहरे पर एक सूक्ष्म व्यंग की मुस्कान छा गयी। मानों वह उनसे पूछ रहा हो—आपको कैसे मालूम हुआ कि हम अनुपम कुटीर में रहते हैं ? सुचिन्ता चौंक सी गयी। सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं। नीलांजन समझ गया कि यह आदमी वही है जिसे दिल्ली की सड़क पर देखकर सुचिन्ता घबराकर बोल पड़ी थी—कौन ? सुबल सूटकेस रख गया था। उस पर एस० मुखर्जी और दिल्ली का एक पता लिखा हुआ था।

एस० मुखर्जी सुचिन्ता मित्रा के मैके के कैसे रिश्तेदार हो सकते हैं ? सुचिन्ता के मैके के कौन दिल्ली में रहते हैं जो बिना खबर-किए अचानक बक्से बिस्तर के साथ यहां हाजिर हो सकते हैं ? यह कैसी अजीब बात है। ऐसा क्यों ? नीलांजन को यह सब सोच-सोचकर गुस्सा आ रहा था। सुचिन्ता ने नीता को स्नानघर आदि दिखाकर आकर पुकारा—सुबल।

इस आवाज से नौकरानी संध्या तक चौंक उठी। मालकिन की इतनी ऊंची आवाज उसने कभी नही सुनी थी।

सुबल दौड़ता हांफता आया। सुचिन्ता बोली—दो लोगों का खाना अधिक बनाना आज। और सुनो, थोड़ी अच्छी मिठाई कहीं से ला सकते हो ?

सुबल सोच रहा था—आज से किसी बात पर वह ताज्जुब नहीं करेगा। बोला—क्यों नहीं ला सकता। क्या लाना है कहिए।

—कुछ भी। ठीक है रसगुल्ले ही ले आओ। रुपए दूं ?

—नहीं मेरे पास पैसे हैं।

सुबल सीढ़ियों से उतर रहा था। अचानक नीलांजन की ऊंची

आवाज गूंजी—ये सामान बीच बाजार में क्यों रख छोड़ा है।

क्या यह गूंगा मकान आज एकाएक बोल पड़ा?

थोड़ी देर बाद नीलांजन सुचित्रा के कमरे में आया। बोला—पहले से यदि हमें सूचित किया जाता तो कोई हानि नहीं होती। हम आने के लिए मना थोड़े ही करते?

नीलांजन सोच रहा था—उनके इस आकस्मिक अभियोग से क्या सुचित्रा चौंक उठेगी? दुखी होगी? क्या इसी का सामना करने के लिए वह अपने को मन ही मन तैयार कर रही थी?

सुचित्रा बोली—तुम भूल कर रहे हो नीलांजन। इनके आने के बारे में मुझे भी पहले से कुछ मालूम नहीं था।

—क्या यह अजीब तरह की अविश्वासनीय बात नहीं है?

सुचित्रा ने आँखें ऊपर उठायीं। अपने सभ्य सुशील लड़के उसे एकाएक असभ्य लगने लगे। फिर भी अपने को शान्त रखकर बोली—इस दुनिया में कितनी ही अविश्वसनीय घटनाएँ घटती हैं। यह भी उनमें से एक है, यही मान लो।

—लगता है इनका दिमाग सही नहीं है।

—हां मानसिक रोग से पीड़ित हैं। चिकित्सा के लिए कलकत्ता आए हैं।

—लेकिन मुझे एक बात समझ में नहीं आती। रहने के लिए इन्होंने हमारा ही घर क्यों चुना?

—इस 'क्यों' का जवाब मेरी भी समझ के बाहर है?

—बिलकुल ही समझ से परे है मां?

सुचित्रा को इस एक सवाल से विमूढ़ बनाकर नीलांजन निकल गया।

काफी समय के बाद, जब नीना अपने पिता के साथ कहीं बाहर गयी हुई थी, सुचित्रा अपने बड़े लड़के के पास आयी।

बोली—नीना मुझे पहले से सूचित किए बिना अपने पिता के साथ यहां आयी है, तुम इस बात पर विश्वास नहीं करते?

निरुपम ने मां को देखा। फिर बोला—ऐसी बात क्यों पूछ रही हो मां?

—पूछने का कारण है। लगता है नीलांजन को इस पर विश्वास नहीं हो रहा है। वह मुझसे बहुत नाराज है।

—इसमें नाराज होने की क्या बात है ?

—तुम लोगों को बताए बिना अगर मैं ऐसा कुछ करूँ जो तुम लोगों के लिए असुविधाजनक हो तो यह अप्रसन्नता की बात तो है ही।

निरुपम हाथ में रखी किताब पर नजर झुकाकर बोला—जब ऐसा तुमने किया नहीं तो फिर बात ही खत्म।

सुचिन्ता ने अपने बड़े बेटे के झुके चेहरे को देखा—परम निर्लिप्तता थी उसमें। मानों तुरत यदि कोई पूछे कि अभी किस प्रसंग पर बातें हो रही थीं तो वह नहीं बता पाएगा। सोच कर बोलेगा—क्या पता। याद नहीं आ रहा है।

वैसे नीलांजन लड़ाई के मैदान में उतर आया था। सुचिन्ता को अपमान-सा लगा। निरुपम ने कोई जिक्र ही नहीं किया था—यह भी कोई सुख और सम्मान की बात थी ? निरुपम इस तरह उदासीन क्यों रहेगा ?

सुचिन्ता बोली—नीता कौन है, तुम लोग यह जानना नहीं चाहोगे ?

—वाह ! मुझे जानने की क्या जरूरत ? अवश्य ही ऐसी कोई होगी जो सहजता से यहाँ आ सकती है।

सुचिन्ता अब अपने लड़के को क्या जवाब दे ?

क्या वह यह कहे—नहीं बेटे ऐसी बात नहीं। मैंने उसे आँखों से कभी देखा तक नहीं। अपने पागल बाप को लेकर यह दुस्साहसी लड़की अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए गैर रिश्तेदारों के घर आ टपकी है। अन्य रिश्तेदारों के यहां जाने में उसे शायद संकोच और लज्जा हुई होगी।

पर वह ऐसा कुछ भी नहीं बोल सकी। बल्कि उसने बिलकुल उल्टी बात कही—पर बेटे वे जब आ ही गए हैं तो उन्हें एक कमरा तो देना ही होगा।

निरुपम ने किताब से आँखें उठाईं। बोला—ठीक है माँ जितने दिन ये रहेंगे मैं नीचे के ड्राइंग रूम में चला जाऊँगा।

—नीचे चले जाओगे ?

—उसमें क्या है ? नीचे के तल्ले में क्या कोई रहता नहीं है ?

सुचित्रा बोली—कोई नहीं कहता है, मैं ऐसा नहीं कह रही हूँ। लेकिन इतनी असुविधा उठाने की जरूरत क्या है? इससे अच्छा होगा यदि इन्द्र और तुम एक कमरे में—

सुचित्रा निरुपम को जानती है। एक कमरे में दो आदमियों का रहना उसे बिलकुल पसंद नहीं। निरुपम के अनुसार यदि जीवन में एकान्त ही नहीं रहा तो रहा क्या? पहले के मकान में सबके हिस्से में अलग-अलग कमरे नहीं थे। अनुपम के किसी दोस्त या रिश्तेदार के आने पर कमरा खाली करना पड़ता था। नीलांजन और इन्द्रनील एक कमरे में रहते, पर निरुपम कभी नहीं। वह सीढ़ी के बीच वाले छोटे कमरे में चला जाता था। वहीं अपना एकान्त खोजता था। फिर इस घर में तो उसकी व्यवस्था पूरी तरह थी। अनुपम ने तीन बेटों के लिए तीन कमरे बनवाए थे। और आज यह अजीब प्रस्ताव सुचित्रा ने निरुपम के सामने रखा।

सुचित्रा ने ऐसा क्यों किया?

क्या वह नीलांजन के सामने ऐसा प्रस्ताव रखने में हिचकिचा रही थी? या फिर सुचित्रा इस उम्मीद से निरुपम के सामने प्रस्ताव रख रही थी कि निरुपम भी उसे 'ना' कर देगा।

निरुपम ने 'ना' तो किया ही पर एक हल्की सी मुस्कान से बोला—इससे तो अच्छा नीचे के ड्राइंग रूम में ही रहना होगा माँ।

पर न जाने क्यों सुचित्रा सहसा तुनक उठी। बोली—जरूरत पड़ने पर अपने कमरे में छोटे भाई को जगह नहीं दी जा सकती?

अनुपम कुटीर की दीवारें ऐसे नये शब्दों के झंकार से चौंक उठीं। ऐसे शब्द तो यहाँ पहले कभी नहीं गूंजे थे।

निरुपम अवाक् होकर बोला—आश्चर्य है माँ! तुम खामखा इतनी उत्तेजित क्यों हो रही हो? इससे अधिक तुच्छ बात दुनिया में और क्या हो सकती है मुझे नहीं मालूम। घर में मेहमान आए हैं। अपनी व्यवस्था में थोड़ा परिवर्तन करना ही होगा। बात तो इतनी ही सी है। इसे एक समस्या में ढालने से क्या फायदा? मुझे नीचे के तल्ले में रहने में किसी प्रकार की कोई असुविधा नहीं होगी माँ।

—वहाँ तुम कहाँ सोओगे?

—क्यों ? दीवान पर। अच्छी नींद आएगी।

—ये लोग कितने दिनों तक रहेंगे, उसका भी कुछ ठीक नहीं। सुचिन्ता बोली।

पर निरुपम इससे आतंकित नहीं हुआ। विस्मित भी नहीं हुआ। हँसकर बोला—तो फिर इसमें क्या है ? कोई अस्थायी व्यवस्था यदि स्थायित्व ले ले तो आदमी को उसका भी अभ्यास हो जाता है।

पर न जाने सुचिन्ता को आज हो क्या गया था। वह मानों हवा से लड़ना चाह रही थी। गंभीर मुद्रा में बोली—यह स्थायी व्यवस्था हो जाएगी, इतना अभी से सोचने की जरूरत नहीं। खैर। तुम लोगों में से किसी को भी कोई परेशानी उठाने की जरूर नहीं। मैं ही उस तरफ के छोटे कमरे में रह जाऊँगी।

—छोटा कमरा यानि सीढ़ियों के बगल में जिसे बक्सा घर बनाया गया था। कमरा ऐसे कोई बुरा नहीं था। दक्षिण की तरफ खिड़की थी पर गृहस्थी का सारा फालतू सामान भी उसी कमरे में ठूंसा पड़ा रहता था।

—छोटे कमरे में रहोगी माँ ? निरुपम ने हैरान होकर पूछा—बक्से घर में कैसे रह पाओगी ?

—उसे तरीके का कर लूंगी। वे लोग दो जनें हैं, बड़ा कमरा न देने पर उन्हें दिक्कत होगी। नीता को रात को पिता के पास ही रहना पड़ता है। सनकी आदमी न जाने कब किस चीज की जरूरत पड़ जाए।

निरुपम ने फिर किताब पर नजर गड़ा ली। बोला—मेहमान के लिए यदि तुम स्वयं ही इतना कष्ट उठाना चाहती हो माँ तो इस प्रसंग को उठाने की कोई जरूरत ही नहीं थी। अच्छा ही है। तुम जो कुछ भी करोगी सोच समझकर ही करोगी।

इतना कहकर वह फिर किताब में खो गया। पर उसके चेहरे पर हल्की-सी मुस्कुराहट थी।

सुचिन्ता चली आई। वह सोच रही थी— आखिर निरुपम मुस्कुराया क्यों ? काफी देर तक सोचने के बाद वह उस नतीजे पर पहुंची कि शायद किताब में ऐसी वैसी हंसने की कोई बात रही होगी। नहीं तो

सुचिन्ता ने ऐसा क्या किया था कि उसका निरुपम जैसा निर्लिप्त लड़का भी हंस पड़ा ?

काफी देर बाद नीता अपने पिता के साथ लौट आयी। साथ में इन्द्रनील भी था। नीता ने इन्द्रनील को मना कर कहा होगा—मैं तो निहायत अनाड़ी हूं। कलकत्ते के रास्ते-वास्ते बता दीजिएगा।

—क्यों ? आप कलकत्ते मे इससे पहले कभी नहीं आयी ?

—वाह ! आयी क्यों नहीं थी, पर पिताजी के साथ उनकी नाबालिग लड़की बनकर। और ठहरी थी रिश्तेदारों के घर। खाना खिलाना, सिनेमा ले जाना, घुमाना, सब रिश्तेदारों का काम था। फिर सड़क पहचानने की मुझे क्या जरूरत थी ?

इन्द्रनील सम्भवतः बहुत खुश था। अनुपम कुटीर की बर्फशीतलता में उसने रोशनी का प्रवेश होते देखा। चुपचाप रहते-रहते वह घुट-सा गया था। इसलिए बात करने का मौका पाते ही वह उछल पड़ा। इतनी बातें करना इस घर के नियम के विपरीत था, यह बात इन्द्रनील शायद भूल गया था। इन्द्रनील हँसकर बोला था—लड़कियाँ कई बार जान-बूझ कर बच्ची बनी रहना चाहती हैं अथवा नाबालिग।

—अच्छा। लड़कियों के मन की बात अभी से जान गए है ? बहुत लायक लड़के हैं।

—लायक हूँ, यह तो आपने मान ही लिया है इसीलिए तो पथ निर्देशक का काम मुझे सौंपा।

—वह तो कृपा करके दिया था। आपके दोनों बड़े भाई बहुत काम काज के आदमी ठहरे।

—मुझे ही फालतू समझ लेने की कोई खास वजह थी।

—आदमी देखकर मैं पहचान सकती हू। भगवान ने मुझे यह खास गुण दिया है।

—तो फिर। इन्द्रनील हंसकर बोला—आप यह मान रही हैं न कि भगवत् शक्ति भी कभी-कभी फेल कर जाती है।

—वह तो देखा जाएगा।

सुचिन्ता अवाक् नजरों से अपने लड़के के उज्ज्वल चेहरे को देख रही

—क्यों ? दीवान पर। अच्छी नींद आएगी।

—ये लोग कितने दिनों तक रहेंगे, उसका भी कुछ ठीक नहीं। सुचिन्ता बोली।

पर निरुपम इससे आतंकित नहीं हुआ। विस्मित भी नहीं हुआ। हँसकर बोला—तो फिर इसमें क्या है ? कोई अस्थायी व्यवस्था यदि स्थायित्व ले ले तो आदमी को उसका भी अभ्यास हो जाता है।

पर न जाने सुचिन्ता को आज हो क्या गया था। वह मानों हवा से लड़ना चाह रही थी। गंभीर मुद्रा में बोली—यह स्थायी व्यवस्था हो जाएगी, इतना अभी से सोचने की जरूरत नहीं। खैर। तुम लोगों में से किसी को भी कोई परेशानी उठाने की जरूर नहीं। मैं ही उस तरफ के छोटे कमरे में रह जाऊँगी।

—छोटा कमरा यानि सीढ़ियों के बगल में जिसे बक्सा घर बनाया गया था। कमरा ऐसे कोई बुरा नहीं था। दक्षिण की तरफ खिड़की थी पर गृहस्थी का सारा फालतू सामान भी उसी कमरे में ठूंसा पड़ा रहता था।

—छोटे कमरे में रहोगी मां ? निरुपम ने हैरान होकर पूछा—बक्से घर में कैसे रह पाओगी ?

—उसे तरीके का कर लूंगी। वे लोग दो जनें हैं, बड़ा कमरा न देने पर उन्हें दिक्कत होगी। नीता को रात को पिता के पास ही रहना पड़ता है। सनकी आदमी न जाने कब किस चीज की जरूरत पड़ जाए।

निरुपम ने फिर किताब पर नजर गड़ा ली। बोला—मेहमान के लिए यदि तुम स्वयं ही इतना कष्ट उठाना चाहती हो मां तो इस प्रसंग को उठाने की कोई जरूरत ही नहीं थी। अच्छा ही है। तुम जो कुछ भी करोगी सोच समझकर ही करोगी।

इतना कहकर वह फिर किताब में खो गया। पर उसके चेहरे पर हल्की-सी मुस्कुराहट थी।

सुचिन्ता चली आई। वह सोच रही थी— आखिर निरुपम मुस्कुराया क्यों ? काफी देर तक सोचने के बाद वह उस नतीजे पर पहुंची कि शायद किताब में ऐसी वैसी हंसने की कोई बात रही होगी। नहीं तो

सुचिन्ता ने ऐसा क्या किया था कि उसका निरुपम जैसा निर्लिप्त लड़का भी हंस पड़ा ?

काफी देर गए नीता अपने पिता के साथ लौट आयी। साथ में इन्द्रनील भी था। नीता ने इन्द्रनील को मना कर कहा होगा—मैं तो निहायत अनाड़ी हूं। कलकत्ते के रास्ते-वास्ते बता दीजिएगा।

—क्यों ? आप कलकत्ते में इससे पहले कभी नहीं आयीं ?

—वाह ! आयी क्यों नहीं थी, पर पिताजी के साथ उनकी नाबालिग लड़की बनकर। और ठहरी थी रिश्तेदारों के घर। खाना खिलाना, सिनेमा ले जाना, घुमाना, सब रिश्तेदारों का काम था। फिर सड़क पहचानने की मुझे क्या जरूरत थी ?

इन्द्रनील सम्भवतः बहुत खुश था। अनुपम कुटीर की बर्फशीतलता में उसने रोशनी का प्रवेश होते देखा। चुपचाप रहते-रहते वह घुट-सा गया था। इसलिए बात करने का मौका पाते ही वह उछल पड़ा। इतनी बातें करना इस घर के नियम के विपरीत था, यह बात इन्द्रनील शायद भूल गया था। इन्द्रनील हँसकर बोला था—लड़कियाँ कई बार जान-बूझ कर बच्ची बनी रहना चाहती हैं अथवा नाबालिग।

—अच्छा। लड़कियों के मन की बात अभी से जान गए हैं ? बहुत लायक लड़के हैं।

—लायक हूँ, यह तो आपने मान ही लिया है इसीलिए तो पथ निर्देशक का काम मुझे सौंपा।

—वह तो कृपा करके दिया था। आपके [illegible] बड़े भाई बहुत काम काज के आदमी ठहरे।

—मुझे ही फालतू समझ लेने की कोई [illegible] वजह थी।

—आदमी देखकर मैं पहचान [illegible] ने मुझे यह [illegible] गुण दिया है।

—तो फिर। इन्द्रनील हँसकर [illegible]—[illegible] यह [illegible] है [illegible] भगवत् शक्ति भी कभी-कभी [illegible] है.

—वह तो देखा [illegible]।

सुचिन्ता अवाक् [illegible]

थी। इतनी बातें इन्द्रनील ने कब सीखीं ? सुचिन्ता सोच-सोचकर हैरान हो रही थी। कुछेक घंटे में ही इन्द्रनील और नीता एक दूसरे से 'तुम' करके बातें कर रहे थे।

पर फिर सुचिन्ता को ज्यादा कुछ सोचने समझने का समय ही कहां मिलता था। सुशोभन उसके बहुत पास आकर धीरे से बोले—देखो सुचिन्ता, तुम्हारा यह लड़का तो अच्छा नहीं है।

सुचिन्ता ने शंकित नजरों से देखा। उसे ध्यान ही नहीं था कि सुशोभन उसके कितने करीब खड़ा था। वह सोचने लगी—पागल समझकर कहीं इन्द्रनील उनका अपमान तो नहीं कर बैठा ?

सुचिन्ता ने कुछ पूछा नहीं। सिर्फ देखने लगी।

सुशोभन बोले—तुम उसे जरा डांट देना। गाड़ी में सारे समय मेरी लड़की के साथ लड़ रहा था।

ओह ! यह बात है।

सुचिन्ता ने चैन की सांस ली। पर क्या वह पूरी तरह चैन ले सकी ? सुशोभन की लड़की कैसी है, सुचिन्ता नहीं जानती। हो सकता है पिता के स्नेह में ज्यादा वाचाल हो गई हो। या जो मां उसे दुनिया की रोशनी में लाते ही दुनिया से उठ गई थी, उसका स्वभाव पाती है। पर वह अपने लड़के को तो जानती है। इन्द्रनील अपने बड़े भाइयों की तरह गंभीर न सही, पर इतना हल्का भी तो नहीं था कि एक लड़की को देखकर ही सुध बुध खो बैठता ? पर सुचिन्ता क्या स्वयं भी अपने में है ? क्या वह खुद कह पा रही है—छिः सुशोभन इतना नजदीक नहीं आना चाहिए। वहां जाकर बैठो।

नहीं, सुचिन्ता ऐसा कुछ नहीं बोल सकी। केवल बोली—बच्चे क्या नहीं करते। तुम्हें याद नहीं, तुम्हारी दादी कहा करती थी, बच्चे खेल खेल में बातें करते हैं और बात-बात में लड़ पड़ते हैं।

—दादी। मेरी दादी। मेरी दादी की बात तुम्हें याद है सुचिन्ता ? अचानक व्याकुल भाव से सुचिन्ता की बांहों को पकड़ कर सुशोभन बोल पड़ा—कितने ताज्जुब की बात है। मैं सब कुछ क्यों भूल जाता हूं सुचिन्ता ?

सुचिन्ता का सारा चेहरा उत्तप्त हो उठा।

कितनी लज्जा। कैसी लज्जा।

नहीं, नहीं, यह संभव नहीं। संभव नहीं हो सकता। इस पागल को इस घर में जगह नहीं दी जा सकती। आज ही वह नीता को कहेगी—मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि तुम मुझे ऐसी क्षति पहुंचा रही हो। कहेगी—तुम्हारे और भी तो कई रिश्तेदार यहां होंगे।

सुचिन्ता धीरे से अपना हाथ छुड़ा लेना चाहती थी, पर पागल की ताकत के आगे हार गयी। सुशोभन और भी दबाव डालकर कंधा पकड़ कर बोला—चलो। चलो हम अकेले में बचपन की बातें करेंगे।

सुचिन्ता ने हताश दृष्टि से नीता की तरफ देखा।

नीता की दोनों आंखों में विनती थी। पर पिता का हाथ पकड़कर बोली—वाह! पिताजी आप लोग तो मजे से बचपन की बातें करेंगे और इतना समय हो चुका है हम सब भूखे रहेंगे।

—भूख! ठीक कहा। फिर कुर्सी पर धम से बैठकर सुशोभन बोला—मुझे भी बहुत भूख लगी है।

नीता सर झुकाकर बोली—डाक्टरों का कहना है कि यह सभी एक तरह का मानसिक विकार है। इस किस्म के रोग में हमेशा एक सूनापन और 'दुनिया में मेरा कहीं कोई नहीं है। सब हमें छोड़ गए हैं या मर गए हैं' ऐसा लगता है। जो आदमी सामने बैठा है उसी की मृत्यु के शोक में रोना आदि। पिताजी खुद भी एक दिन 'मैं ही मर गयी हूं' सोचकर फूट फूट कर रोने लगे। बहुत मुश्किल से समझा पायी। हालांकि यह दौरा दो ही चार दिन तक था। उन्हें पहाड़ पर भी ले गयी, पर उन्हें अच्छा नहीं लगा। सड़क पर निकलते ही चिल्लाते—'गिर जाओगी। गिर जाओगी' मुझे शर्म आती। पर डाक्टर कहते हैं इस रोग की असली दवा है स्नेह और ममता से उन्हें भरा पूरा रखना। उन्हें यह एहसास कराना कि उनका सब कुछ यथावत् है। कोई मरा नहीं। किसी ने छोड़ा नहीं।

सुचिन्ता थोड़ी कठिन भाव से बोली—पर यहां यह सब कुछ संभव हो सकेगा, यह बात तुम्हारे दिमाग में कैसे आयी? मुझे तुम जानती पहचानती नहीं। कभी देखा भी नहीं।

नीता आँखें उठाकर थोड़ी-सी मुस्कराकर बोली—बिना देखे क्या जान-पहचान नहीं हो सकती ?

—क्या मालूम ! मेरे लिए यह एक रहस्य ही है। दुनिया में उनका सब कुछ यथावत् है यह समझाने के लिए उन्हें अपने लोगों के बीच ले जाना चाहिए जहाँ उन्हें स्नेह ममता से लोग घेरे रहेंगे।

नीता धीरे से सिर हिलाकर बोली—नहीं ऐसा नहीं होता। बहुत सारे लोगों को देखने पर वह घबरा जाते हैं। उन्हें एक ऐसे आदमी की जरूरत है जिसमें रोगी के मन के सारे सूनेपन की पूर्णता हो।

एकाएक अपने स्वभाव से परे सुचिन्ता आग की तरह भभक उठी और बोली—ऐसी कोई एक मैं हो सकती हूँ, ऐसी बेहूदी बात तुम्हें किसने बतायी ?

नीता मुरझाए से स्वर में बोली—किसी ने नहीं बतायी। मैंने खुद ही सोचा। मैं जानती थी बुआ कि आप परेशान होंगी। संकट में पड़ेंगी। पर आप नाराज होंगी यह मैंने नहीं सोचा था।

सुचिन्ता चुप हो गयी।

फिर व्याकुल भाव से बोली—तुम मेरी मुश्किल को समझ नहीं सकोगी नीता। मेरे लड़के बड़े हो गए हैं।

—बड़े हो गए हैं इसी भरोसे से तो आयी हूँ बुआ। वे लोग समझेंगे। वे निश्चित रूप से इस बात को समझते होंगे कि मानसिक रोगी की एकमात्र दवा कोमल मन का ऐसा स्नेह स्पर्श है जो बनावटी नहीं हो। यह काम किराए के नर्स का नहीं। और आपके लड़के इस बात को समझते हुए भी यदि नाराज होते हैं तो भी आपका क्या नुकसान होगा ?

सुचिन्ता खिन्न होकर बोली—नफे-नुकसान का माप समझ सको, इतनी समझ तुम में नहीं है नीता। जब उम्र होगी, बच्चों की माँ बनोगी तब खुद समझ जाओगी। बड़ों से कई गुना ज्यादा अपने से छोटों का सम्मान करना पड़ता है।

—यह बात बिल्कुल नहीं समझती, ऐसी बात नहीं है बुआ। पर मैं यह भी जानती हूँ कि आप लोग एक दूसरे से हमेशा प्यार करते रहे हैं जो हानि—।

सुचित्रा के कान गरम हो उठे। वह लाल हो गयी। बोली—हम लोग अपने में बड़ों की इस तरह की आलोचना कभी नहीं करते थे नीता।

पर नीता अविचलित मुद्रा में बोली—क्यों नहीं करती थीं? प्यार एक भयंकर गोपनीय चीज है, ऐसा समझने की क्या जरूरत है? अगर आपके लड़के यह जान ही जाएँ कि जिन्दगी में आपने कभी किसी से प्यार किया था तो यदि वे आपके प्रति श्रद्धाशील और सहानुभूतिशील हैं तो अवश्य ही वे आपके मन के सूनेपन को समझ सकेंगे।

—यही एक जगह है नीता जहाँ पति या पुत्र सहानुभूतिशील नहीं होते। हो ही नहीं सकते।

—अभ्यास का अभाव है। दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना पड़ेगा। और यह परिवर्तन हम लोगों को ही लाना पड़ेगा। मैं सिर्फ इसी एक विशेष परिस्थिति के लिए नहीं कह रही हूँ बुआ। मैं सबके लिए कह रही हूँ। मैं यह बात मन से मानती हूँ, तभी तो हिम्मत करके आपके पास आ सकी हूँ। जानती हूँ प्यार की शक्ति से बहुत कुछ संभव है। उस शक्ति के बल पर आप बहुत-सी चीजों को तुच्छ समझ सकेंगी और एक आदमी को बरबादी और विलुप्ति के रास्ते से लौटा सकेंगी। यह मेरी आपसे प्रार्थना नहीं, मानवता के समक्ष प्रार्थना है। रोगी की सेवा समझ कर ही उसे थोड़ा-सा स्नेह और ममता की खुराक देनी होगी। आपको तो कोशिश भी नहीं करनी पड़ेगी। अभिनय भी नहीं करना होगा।

सुचित्रा हताश होकर बोली—मुझे कोशिश नहीं करनी पड़ेगी, अपने को तैयार नहीं करना होगा, यह खबर तुम्हें कैसे मिली—मुझे यही नहीं समझ में आता।

—मैं आपको हमेशा से जानती हूँ बुआ। पिताजी के गहन एकांत में रखी आपकी तस्वीर मैंने देखी है। आपका पता और आपके नाम का भरा हुआ पन्ना, आपके नए मकान का पता।

सुचित्रा अब मानो शर्माना भी भूल बैठी थी। अश्रुतपूर्व इस कहानी ने उसे विभोर-विकल बना दिया था।

नीता फिर बोली—ऐसे तो पिताजी बहुत अनमने हैं। घर में हर जगह मेरा ही हस्तक्षेप होता रहता है। पर उनके मन की निर्जनता

तव मेरी पकड़ में आ जाती थी। एक दिन मुझे शैतानी सूझी। मैंने बड़े सहज भाव से पूछ ही लिया—सुचिन्ता कौन है पिताजी ?

उस समय हालत इतनी खराब नहीं थी। रह-रहकर सब भूल जाते थे। मैं समझ नहीं पायी थी कि उनका दिमाग फेल हो रहा है। सोचती थी, कुछ ज्यादा ही उदासीन हो गए हैं। मेरे प्रश्न से चौंककर बोले—सुचिन्ता की बातें तुम्हें किसने कही ?

मैंने निरीह भाव से कहा—टेबल पर एक कागज पर उनका पता लिखा पड़ा था। उसमें लिखा था, सुचिन्ता मित्रा, अनुपम कुटीर। ये कौन हैं पिताजी ? पिताजी ने जवाब नहीं दिया। बोले—कहाँ है वह कागज ?

मैंने कहा—पता नहीं झाड़ू देते समय कहीं फेंका गया होगा।

—फेंका गया है। फिर रुककर बोले—सुचिन्ता कौन है यह जानकर तुम्हें कोई फायदा नहीं।

बुआ मैं हमेशा से तेज लड़की रही हूँ। चट बोली—क्यों, आपके पहचान की किसी को मैं नहीं जानूंगी ?

—मेरी पहचान के सभी को क्या तुम जानती हो। मेरे दफ्तर के सभी लोगों को जानती हो ?

उनके तर्क के आगे मुझे हारना पड़ा। पर सुचिन्ता कौन है यह मैं समझ गयी। उसके बाद बीमारी पकड़ी गयी। पिताजी बिल्कुल ही बदल गए। मन की स्थिरता जाती रही। बच्चों की तरह हो गए। उसके बाद एक दिन सारा घर तहस-नहस करके कुछ ढूंढ़ने लगे। किसी से कुछ पूछना नहीं। नौकर चाकर खामखा डाँट सुन रहे थे। अचानक निराश होकर बोले—सुचिन्ता की चिट्ठियां कहाँ हैं नीता। रेशमी धागे में बंधी एक गट्ठर चिट्ठियां। इतना ढूंढ़ रहा हूँ कहीं नहीं मिल रही हैं। तुम जरा देखो न बेटी, मुझे उनकी बहुत जरूरत है। खोने से नहीं चलेगा।

यह सुनते-सुनते सुचिता के सिर कान मुंह से मानों आग की लौ निकल रही थी। तीव्र स्वर में बोली—उनके कहने पर तुमने विश्वास कर लिया?

—कौन-सा कहना ? नीता सुचिन्ता के गुस्से को भांप न सकी।

—यही चिट्ठी की बातें। जिन्दगी में मैंने कभी भी उन्हें कुछ नहीं लिखा।

—कभी नहीं लिखा ? नीना ने पूछा। नीना की आँखों में असीम प्रश्न था, आवाज में अनन्त विस्मय था।

—नहीं, नहीं, कभी नहीं। तुमने तो ढूँढ़ा था। मिला तुम्हें कुछ ?

नीना ने सर हिलाया—नहीं।

—तो फिर तुमने यह क्यों नहीं सोचा कि यह उनका पागलपन ही है।

नीना धीमी आवाज में बोली—तब तक इतना नहीं समझ पायी थी। और फिर सोचा, यह कोई ऐसी असंभव बात भी नहीं। इसलिए ढूँढ़ती भी रही, पर कहीं कुछ मिला नहीं। पिताजी गुस्से में चिल्लाते रहे। कहते—सबको घर से निकाल दूंगा। सब चोर हैं यहाँ।

फिर उन्हें जबर्दस्ती नींद की दवा पिलाकर सुलाया गया। दूसरे दिन से वे निस्तेज हो गए। बोलने लगे—सब मर गए हैं।

सब सुनकर सुचिता भी मानो ठंडी पड़ गयी। बुझ-सी गयी। बोली—इसका मतलब उसी समय से इनका दिमाग बिल्कुल काम नहीं कर रहा था। इसीलिए सहारे के लिए मनगढ़न्त चिट्ठियों को ढूंढ रहे थे।

—शायद ऐसा ही हो।

—शायद नहीं नीना। बात सही है। विश्वास करो, हमने कभी एक-दूसरे को कोई चिट्ठी नहीं लिखी।

—ताज्जुब है। नीना ने लम्बी साँस ली।

—पर मुझे अब क्या करना होगा नीना ?

—मैंने आपको कहा तो। आपको हमें कुछ दिनों के लिए आश्रय देना पड़ेगा। और यदि पिताजी का कोई आचरण आपको कुठिन करे उसे पिताजी का पागलपन समझकर माफ कर दीजिएगा। आपके पास कुछ दिन रहने से पिताजी ठीक हो जाएंगे बुआ। नीना की आवाज में मिन्नत थी।

सुचिता ने म्लान-सी हंसी हंसी। बोली—तुम अभी बच्ची हो नीना इसलिए नहीं जानती कि मैं तुम्हें क्षमा कर सकती हूं या नहीं, पर ऐसा करने पर मेरे लड़के मुझे क्यों माफ करेंगे ?

—क्यों ? आपकी उम्र का कोई सम्मान नहीं है। नीः

की आवाज उठा रही थी।

सुचिन्ता बोली—उम्र का सम्मान और वह भी औरत का? अस्सी के पहले नहीं।

—आप स्वयं औरत होकर इस तरह की आत्म-अपमान की बातें कह रही हैं।

—नहीं कहने पर क्या कोई चीज झूठी हो जाती है गीता! तुम मेरी तस्वीर की बात कह रही थी न! वैसी ही एक छोटी-सी तस्वीर मेरे पास भी थी। उस जमाने के भावुक लड़के-लड़की थे हम। समाज के विरुद्ध विद्रोह करेंगे, मां-बाप की उपेक्षा करेंगे, इतने दुस्साहस की कल्पना भी हम नहीं कर सकते थे। समाज के आगे हमने आत्म-बलिदान किया। इसी आवेश के प्रतीक के रूप में हमने आपस में फोटो का विनिमय किया था। किसी असतर्क मुहूर्त में वह फोटो दूसरे के हाथ लग गया। सुचिन्ता हंसकर फिर बोली—तुम लोग आज की लड़कियां शायद विश्वास ही न कर सकोगी कि मुझे वह फोटो अपने हाथों से उनके सामने जलाना पड़ा। आग में फेंककर नहीं। धीरे-धीरे मोमबत्ती की लौ में। मुझे आंखों से सब कुछ देखना पड़ा। कैसे धीरे-धीरे चेहरा, आंखें सभी कुछ आग से सिकुड़कर झुलसकर राख हो गया। तुम सिहर रही हो? सिहरने की कोई बात नहीं। ये कोई अत्याचारी व्यक्ति भी नहीं थे। यह सिर्फ उनके लिए पवित्रता का आदर्श था। उन्होंने मुझे कष्ट नहीं देना चाहा था। हिन्दू नारी को पवित्रता की शिक्षा देनी चाही थी।

—उसके बाद भी आपने उनकी गृहस्थी निभायी?

—सिर-फिरी की बात तो जरा कोई सुने। नहीं निभाती तो जाती कहां? पर एकमात्र सांत्वना यही थी कि ये कुछ अबोध थे।

—पर आपके लड़के तो अबोध नहीं हैं?

—नहीं हैं इसीलिए तो डर है।

—पर आप क्यों डरेंगी। मैंने तो कभी पिताजी को दुर्बल चरित्र का आदमी समझकर उनसे कभी घृणा नहीं की। फिर ये लोग ऐसा क्यों करेंगे। मनुष्य सिर्फ अपने परिवार की ही सम्पत्ति है, मनुष्य के लिए यह बात आखिरी बात क्यों मानी जानी चाहिए? हर मनुष्य के पारिवारिक

जीवन के ऊपर और भी एक जीवन होता है। यह जीवन अन्त तक बना रह सकता है, बशर्ते परिवार के बाकी सदस्यों की उसके प्रति श्रद्धा बनी रहे। वह जीवन चाहे उसका आध्यात्मिक जीवन हो, कलाकार का जीवन हो या फिर प्रेम का जीवन ही क्यों न हो।

—यदि उचित बात पर सभी चलते तो यह दुनिया स्वर्ग नहीं बन जाती नीता !

—बनानी पड़ेगी बुआ। दूसरों के बिना वजह असंतोष का भय हमें छोड़ना पड़ेगा। आप देखेंगी परवाह नहीं करते-करते दूसरों का असंतोष भी क्षीण पड़ जाएगा। समाज में हर परिवर्तन इसी तरह से आया है। परवाह नहीं करके।

—पहले अच्छे बुरे का विचार तो करना ही होगा। सिर्फ लापरवाही में तो कोई बहादुरी नहीं है ?

—आप ठीक कहती हैं बुआ। अच्छा तो वही है जिससे मेरे विवेक पर धक्का नहीं पहुंचता हो और बुरा वही है जिसमें आत्मा को चोट पहुंचती है। आप यह मत सोचिएगा कि मैं अपने स्वार्थ के लिए इतना कुछ कह रही हूं। मैं आम तौर पर ही कह रही हूं। आपने जिसे हमेशा अपना एक स्नेही जन समझा है, उनकी जीवन की रक्षा के लिए उन्हें थोड़ा स्नेह और साहचर्य देने से क्या आपका विवेक पीड़ित होगा। सोच-कर देखिए। अगर ऐसा होता है तो मैं आपसे ऐसा अनुरोध हर्गिज नहीं करूंगी। लेकिन पानी में डूबते हुए किसी को बचाने के पहले क्या लोग कुछ सोचते विचारते हैं कि वह औरत है या मर्द ? जवान है या बूढ़ा ?

—उदाहरण तो न जाने कितने मिल जाएंगे नीता। पर युक्ति और उदाहरण एक बात नहीं। सुमोमन का मैं दूसरों से क्या परिचय दूंगी ? अगर कोई पूछे कि वह मेरा कौन है ? वह यहां क्यों रहता है ?

—आपके यहां इस तरह के जिज्ञासु रिश्तेदारों की भीड़ तो नहीं है बुआ ?

सुचित्ता चौंक कर बोली—भीड़ नहीं है, यह तुमसे किसने कहा ? मेरे घर के बारे में तुम कितना जानती हो ?

—बहुत कुछ। नीता हंस पड़ी।

—ज्योतिष जानती हो, यह तो मैं मानती नहीं, पर क्या इस दो घंटे में ही मेरे बुद्धू लड़के ने तुम्हें घर की सारी कहानी बता दी है।

—बुद्धू नहीं, सीधा है। इस घर में कोई कहानी नहीं, वही कहानी उसने सुनायी है। आप लोग सभी बड़े गंभीर हैं इसलिए उसके मन में बड़ा दुख है। कहता है अपने ही घर में हम सभ्य बनने की प्रतियोगिता में उतरे हुए हैं। भैया फर्स्ट, मां सेकेंड, मंझले भैया थर्ड, और मैं फेल, जबर्दस्ती मौन व्रत का पालन करता हूं, ताकि आश्रम के वातावरण में खलल न पहुंचे।

सुचिन्ता समझ नहीं पायी कि इसके जवाब में वह क्या बोले। बोली —हां शुरू से ही इन्द्रनील कुछ ऐसा ही है। अपने पिता पर गया है।

नीता हंसकर बोली—गंगा या गोमुख—किसमें कौन-सा स्रोत सोया है वह खुद ही नहीं जानता। झरना एकाएक ही तो फूटता है।

सुचिन्ता ने मन ही मन सोचा—तुम मेरे घर इसलिए आयी हो कि मेरे इस शांत, स्तब्ध हिमालय की शांति भंग कर झरने को सोते हुए से जगा दो। न मालूम कैसी लड़की है यह। इन्द्रनील अभी बच्चा है। इन्द्रनील की बात सोचकर उसका मन चिनचिना उठा।



—सुबह तो आपसे परिचय ही नहीं हुआ।

निरुपम के कमरे में आकर नीता मुखर हो उठी। निरुपम के कुछ कहने के पहले ही कुर्सी पर बैठ गयी और बोली—सुबह तो आपसे सिर्फ भेंट ही हुई थी।

—बड़ी स्मार्ट लड़की है। निरुपम ने मन ही मन सोचा। बोला—जान-पहचान करना क्या इतना ही आसान है।

—आसान नहीं है, इसलिए तो इसमें इतना आनन्द है। नीता हंस कर बोली।

निरुपम आदत के मुताबिक किताब पर नजर गड़ाकर बोला—इन्द्र थोड़ा गप-शप कर सकता है।

—क्या इसका अर्थ यह है कि आप नहीं कर सकते हैं। इससे तो

अच्छा आप सीधे तरीके से यही बोल सकते थे कि नीता मुझे तंग मत कर। मेरे कमरे से दूर हो जा।

इस तरह की बात से निरुपम थोड़ा चौंका पर बोला—नहीं, इसका एक ही अर्थ है कि मैं वाकई में ज्यादा गप-शप नहीं कर सकता।

—नहीं कर सकते, न सही। पर एक-आध बार आपके कमरे में आने की अगर अनुमति मिल जाए। वाह! कितनी किताबें हैं। मैं दिन भर प्यासी आंखों से इन्हें देखा करती हूं।

निरुपम भी आज एकाएक मानों बोलना सीख गया। बोला—आना था तो आ जाती। रोक ही कौन रहा था? दरवाजा खुला ही रहता है।

—खुला दरवाजा बड़ा भयंकर है। लगता है छुपकर कोई चौकीदारी कर रहा है।

—कहां तक पढ़ा है तुमने? बात बदल दी निरुपम ने। बड़े भाई की ही तरह बातचीत करने लगा।

पकड़ी जाने के डर से नीता सकपका सी गई। बोली—कहां पढ़ पायी। फिर लम्बी सांस खींचकर बोली—थर्ड इयर में पढ़ रही थी जब पिताजी बीमार हो गए। घर में उन्हें अकेला छोड़कर कालेज नहीं जा सकती थी। जाती भी थी तो चैन नहीं मिलता था। पिताजी समय से पहले रिटायर हो गए, उसके बाद से तो ऐसा ही चल रहा है।

—तुम्हारे पिता जी कितने दिनों से बीमार हैं?

—यही कोई तीन साढ़े तीन साल से।

इसके आगे निरुपम और क्या कहता? वह फिर किताब पढ़ने लगा। नीता घूम-घूमकर किताबें देखने लगी। दुर्लभ किताबों का संग्रह था। पर किताबों की अलमारी के पीछे नीले रंग के कपड़े की खोल में यह क्या लटक रहा था?

तानपुरा? और आलमारी के ऊपर बायें तबला।

—आपको गाने-बजाने का बड़ा शौक है।

—मुझे! निरुपम हँस पड़ा। यह शौक पिताजी का था। जब तब गाने की मजलिस जमाते थे पिताजी।

—फिर आप लोगों को तो बड़ी मौज होगी।

—मौज ?

—क्यों मौज नहीं होगी ? गाना मुझे इतना अच्छा लगता है। घर में पियानो नहीं है ?

—हां, वह भी है ?

—मैं बजाऊँगी।

—आता है क्या ? निरुपम हँसकर बोला—बजाना है तो बजाना पर जब मैं घर पर नहीं रहूँगा तब।

—क्यों आपको अच्छा नहीं लगता ?

—नहीं। थोड़ी ही देर में असहनीय हो जाता है।

—संगीत आपको असहनीय लगता है ? बड़े भैया, फिर तो आप आदमी का खून भी कर सकते हैं। मैं तो रेडियो चलाने जा रही हूं। तभी सोचती हूं कि घर में रेडियो गूंगा क्यों पड़ा है।

—मुझे तो फिर घर से बाहर जाना पड़ेगा।

—आप देखते ही रह जाइएगा एक दिन ऐसा गाना गाऊँगी कि...।

—कि मुहल्ले वालों को नींद से जाग जाना पड़ेगा। क्यों यही बात है न ? निरुपम गंभीर भाव से बोला। पर उस गंभीरता में भी कौतुक की आंच पाकर नीता खिलखिलाकर हंस पड़ी।

इस हंसी की आवाज से उस तरफ के छोटे कमरे में बैठी सुचिन्ता चौंक उठी, और इधर के बढ़िया कमरे में बैठा नीलांजन।

—कौन इतना हंस रहा है ? किसके घर से इतनी हंसी की आवाज आ रही है ? सुशोभन दरवाजे पर आकर खड़े थे। बोले—मुझे अकेला छोड़कर कहां चली आयी हो नीता। मुझे डर नहीं लगता है ?

नीता उठकर खड़ी हो गयी। बोली—कहां गयी हूं पिताजी ? बड़े भैया से जान-पहचान बढ़ाने आयी थी। आपको डर लग रहा है ? भूत-प्रेत का डर ?

सुशोभन पलंग के किनारे पर बैठकर बोले—क्या बकती है ? भूत-प्रेत से क्यों डरूँगा ? तुम लोग मुझे छोड़कर कहीं चली तो नहीं गयी, यही सोचकर—।

—नहीं नहीं। ऐसे कैसे कोई कहीं चला जाएगा। निरुपम स्नेह भरी

आवाज में बोला—ऐसे थोड़े ही कहीं कोई जाता है ? इस सौम्य चेहरे वाले असहाय वृद्ध के प्रति निरुपम के मन में विरोध नहीं, ममता आ गयी थी।

—तुम यह रहे हो कोई नहीं जाता। सुशोभन स्थिर हुए। बोले—तुम क्या लगते हो इस घर के ?

—क्या कह रहे हैं पिताजी ? यही तो घर के बड़े बाबू हैं। सुचिन्ता बुआ के बड़े लड़के।

—ओह ! समझ गया। सुचिन्ता के तो ढेर सारे बच्चे हैं। तुम बड़े हो ? क्या पढ़ते हो ?

पागल नामक जीव, साधारण आदमी के लिए हमेशा से तमाशे और हँसने की चीज है। पागलपन में एक अजीब रहस्य छुपा रहता है। इसलिए पागल को छेड़ने में, उससे बातें करने में लोगों को आनन्द आता है। इतना कम बोलने वाले निरुपम को भी इसका नशा-सा चढ़ा। बोला—कुछ नहीं पढ़ता।

—पढ़ते नहीं ? इतने बड़े लड़के और लिखते पढ़ते नहीं—यह तो ठीक बात नहीं।

—पिताजी, ये पढ़ाते हैं। नीता बीच में बोली।

—पढ़ाते हैं ? किसे ?

—यही छात्र-छात्राओं को। ये विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं।

सुशोभन भौं तानकर बोले—तुमने तो थोड़ी देर पहले ही कहा था कि यह सुचिन्ता का लड़का है। इतना बड़ा लड़का कहीं सुचिन्ता का लड़का हो सकता है ?

—अजीब बातें कर रहे हैं पिताजी। मैं क्या आपकी इतनी बड़ी लड़की नहीं हूँ ?

—तुम आखिर कितनी बड़ी हो ? कुछ दिन पहले ही तो फ्रॉक पहनकर घूमती थी। अच्छा, मैं सुचिन्ता से जाकर पूछता हूँ।

—पूछेंगे ? क्या पूछेंगे पिताजी ?

—यही, सुचिन्ता को इतना बड़ा लड़का क्यों है ?

—रहने दीजिए पिताजी। आप यह मत पूछिए। सुचिन्ता बुआ को

दुख होगा।

—दुख होगा। तो रहने देता हूँ।

—पिताजी आप गाना सुनेंगे?

—गाना? सुशोभन खुश हो उठे।—हाँ चलो नीता मुझे गाना सुनाओ।

फिर बेटी का हाथ पकड़कर वह दरवाजे की तरफ जाने लगे।

—आप इसी तरह से इन्हें सम्हालती आयी हैं? निरुपम ने धीरे से पूछा।

नीता ने मीठी आवाज में जवाब दिया—और उपाय भी क्या है? पर इन्हें सम्हालने की अधिक मुश्किल आसपास के स्वस्थ दिमाग के लोगों को सम्हालना मुश्किल है। पिताजी की बातचीत और उनके आचरण को लोग माफ करने को राजी नहीं हैं। वह दूसरों के साथ उनकी बराबरी कर बैठते हैं। आते समय ट्रेन में तो एक से लड़ाई ही लग गई।

—नीता, सुचिन्ता के बड़े लड़के के साथ इतनी क्या बातें कर रही हो। गाने में देर हो रही है।

नीता मजाक के तौर पर बोली—गाना कैसे गाऊँ पिताजी। ये लोग अपना बाजा-वाजा मुझे दे ही नहीं रहे।

—नहीं देते? कौन नहीं देता? सुशोभन गुस्सा कर बोले—सुचिन्ता को अभी जाकर कहता हूँ।

—चलिए पिताजी, बुआ को कहकर इन लोगों को डाँट पिलवाते हैं।

और थोड़ी देर में आसपास के घरों की खिड़कियाँ खुल गयीं। 'अनुपम कुटीर' से गाने की आवाज। खिड़कियों में उत्सुक लोगों के चेहरे दिख रहे थे। नीता की सुन्दर सुरीली आवाज शाम की हवा को तरंगित कर रही थी। 'अनुपम कुटीर' को छोड़ बाकी मुहल्लों वालों को एक-दूसरे से काफी परिचय था। सुबह होते ही लाल मकान की लड़की ने पीले मकान वाली लड़की को, गुलाबी मकान की लड़की ने सफेद मकान वाले लड़के को दौड़कर आकर बताया—कल रात गाना हुआ?

—सुना तो है। पर मामला है क्या?

—पता करना पड़ेगा।

'अनुपम कुटीर' के सुबल का कामकाज भी इन दिनों कुछ बढ़-सा गया था। जब तब उसे बाजार दौड़ना पड़ता था—रसगुल्ला लाने, दाल-मोठ, चनाचूर आदि लाने।

लाल मकान की लड़की ने एक दिन सुबल को पकड़ा। बोली—ऐ सुनो!

—जी?

—तुम अनुपम कुटीर में काम करते हो?

—जी।

—तुम्हारे घर में कौन लोग आये हैं?

सुबल गंभीर भाव से बोला—माँ की भतीजी और उसके पिताजी।

—माँ की भतीजी और उसके पिता। इतनी ऊँची भाषा तो लाल मकान की लड़की ने कभी सुना ही नहीं था। बोली—माँ के भाई और भतीजी आए हैं, ऐसा कहो न।

—ऐसा कैसे कह सकता हूँ कहिए। वे तो मुखर्जी हैं।

—मुखर्जी? यानी? ओह—ये लोग मित्रा हैं न?

—हाँ, कायस्थ हैं।

—तो फिर दोस्त होंगे।

सुबल आत्मस्थ होकर बोला—हो सकता है, और क्या क्या जानना है कहिए? लाल मकान की लड़की लाल हो उठी। बोली—जानने-वानने का क्या है। गाने की आवाज आती है इसलिए पूछ रही थी। अच्छा ठीक है। गुस्से से लाल-पीली होकर वह अंदर चली गयी। पर वह बिल्कुल निराश नहीं हुई थी। अनुपम कुटीर के रहस्य का थोड़ा आभास उसे मिल गया था। अनुपम कुटीर की गृहिणी की भतीजी और उसके बाप आए हैं—जो बाप कायस्थ नहीं, ब्राह्मण है।

वह पीले मकान में यह खबर पहुँचाने के लिए दौड़ गयी। गुलाबी मकान की बातों को जानने का एक अच्छा मौका यह मिल गया कि तीन-चार घरों में काम करने वाली मेहरी मध्या अब उसके घर में भी काम करने लगी थी। इसलिए गुलाबी मकान वाली लड़की 'अनुपम कुटीर' के रहस्योद्घाटन के लिए बरामदे में मोढ़ा लेकर जम गयी। जब सध्या आई

तो उसे देखते ही पूछा—तुम इस सामने वाली कोठी में काम करती हो न ?

—हाँ, पिछले दो साल से वहाँ काम कर रही हूँ।

अच्छा ! तब तो उन लोगों का सब कुछ तुम्हें मालूम होगा। उस घर में कोई लड़की बड़ा अच्छा गाती है। नयी आयी है न ?

—हाँ। यही कोई दो-चार दिन हुए। इस बाप-बेटी के आने के बाद तो वह घर कुछ घर जैसा लग भी रहा है नहीं तो लगता था जैसे कोई गूंगा मकान खड़ा हो। कोई किसी से बात नहीं करता था। मालकिन कभी बुलाकर यह नहीं कहती थी—संध्या यह कर दो; पर अब तो बुलाती भी हैं। उस दिन कहा—संध्या, दुतल्ले का बरामदा जरा पोंछ देना। वहाँ पानी गिर गया है। नौकर घर नहीं है। अगर पहले ऐसा होता तो दिन भर वह पानी यों ही पड़ा रहता। नौकर को जब फुर्सत मिलती तो पोंछता। अब तो ऐसा नहीं चल सकता। घर में लोग-बाग हैं और बूढ़ा तो कुछ पागल सा है।

—पागल ?

गुलाबी घर की लड़की उत्साह से गुलाबी हो उठी। बोली—ओ माँ। यह क्या कर रही हो ? तुम लोगों को डर नहीं लगता ?

—डर क्यों लगेगा ! काट खाने वाला पागल थोड़े ही है। ऐसे तो पता भी नहीं चलता। नौकर कहता है, इसलिए थोड़ा जानती हूँ।

—वे लोग मालकिन के कौन लगते हैं ?

—क्या पता दीदी। नौकर तो कहता है, कोई नहीं लगते। दोस्त-बोस्त होंगे। मालकिन को तो नाम लेकर पुकारते हैं।

मालकिन को नाम से पुकारते हैं और रिश्ते में भी कुछ नहीं लगते। इनके आने पर गूंगा मकान बोल उठा है। इतना तथ्य लिए वह गुलाबी मकान वाली लड़की सफेद मकान के लड़के की तरफ दौड़ी।

—ऐ सुना है ? बुड्ढा पागल है। वे लोग इनके कुछ नहीं लगते फिर भी मालकिन को नाम से पुकारते हैं।

सफेद मकान के लड़के ने अपने होंठों को उलटकर 'फू' कहा। बोला—गायिका तो 'अनुपम कुटीर' के छोटे लड़के के नाक में रस्सी डाल

—ज्यादा छेड़ो मत। हालांकि ऐसा हो भी सकता है। तुम लोग इतने ही लालची हो।

—तुम लोगों ने भी क्या कोई कसर बाकी रखी है? किसकी लड़की किसके लड़के की नाक में रस्सी डालकर उसे नचा रही है उसी से जल भुन रही हो।

—जल भुन रही हूँ?

—और नहीं तो क्या? प्यार से कोई लड़की किसी अनजान के घर पहुँचकर उसकी प्रशंसा कर आए तो खुद भगवान भी आकर कहे तो विश्वास नहीं होगा। ईर्ष्यावश देखने जाने के लालच से प्रशंसा एक बहाना हो सकता है।

—तुम मर्द लोग तो दुनिया के तमाम रंग धो डालोगे।

—इतनी हिम्मत कहाँ। सारे रंग बटोर कर तो तुम्हीं लोग ओंठों और गालों में लीपो-पोतोगी।

—हाँ लीपते-पोतते हैं। हमेशा से ही लड़कियाँ प्रकृति के रंगों और सम्पदाओं से श्रृंगार करती रही हैं। विश्वकवि ने व्यंग में नहीं, पूर्ण आनन्द के साथ ही कहा था—सिर्फ विधाता की सृष्टि नारी तुम नहीं हो।

—बाप रे। बड़ी सीरियस हो गई। तुम गंभीर होने लगती हो तो बड़ी भयानक दिखती हो।

—लेकिन मुझे वाकई में बहुत गुस्सा आ रहा है।

—यह तो अच्छी बात है।

—कहो न, एक दिन 'अनुपम कुटीर' जाऊँ?

—अभी से मेरी राय लेने की कोई उचित वजह नहीं है। अपनी माँ से पूछकर जा सकती हो।

—सामने के घर में घूमने जाऊँगी, वो भी माँ से पूछना पड़ेगा।

—यह भी ठीक कहा। मुझसे प्रेम कर रही हो, यह बात माँ को थोड़े ही बतायी होगी।

—अपने को ज्यादा काबिल मत समझो।

—थोड़ा सा तो काल्पनिक सुख है। वह भी छीनना चाहती हो? ठीक है बाबा।



जिनको लेकर चारों तरफ इतनी चर्चा चल रही थी, उन्हें इसकी कोई फिक्र ही नही थी। अब तक वे नियमो में बँधे थे, पर अब लगता था उन्होंने सारे नियम तोड डाले हैं।

इन दिनो सुचिन्ता सुबह-सुबह अपनी छोटी-सी कोठरी से निकलकर नहाने जाने के पहले नीचे ग्वाले को देखने जाती है। पास की बस्ती का कोई ग्वाला गाय लेकर सामने दूध दुहकर दे जाता है। सुशोभन को अच्छे ताजे दूध की जरूरत है। सुचिन्ता खुद खडी होकर दूध निकलवा कर रसोई में रखकर तब नहाने जाती है। ऐसे रुचिहीन किसी काम के लिए अब उसकी नाक भी नही सिकुड़ती थी बल्कि बडी तीक्ष्ण नजरों से देखती थी कि धूर्त ग्वाला यहीं कोई चालाकी तो नही कर रहा है।

अब उसे रसोई मे भी आना पडता है। आकर कहती है—सुबल आज खाना थोड़ी जल्दी चाहिए। नीता दीदी लोग बाहर जाएँगी।

कभी कहती—सब्जी मे मसाला कम देने के लिए कहा था। भूल क्यों जाते हो। ज्यादा तेल घी मसाला उनके लिए मना है।

इसकी आदमी कभी-कभी सुबह सुबह गाना गाने लगते। निरुपम की नींद खुल जाती। वह हतप्रभ-सा बिस्तर मे बैठा रहता। नीलांजन अस्थिर भाव से चहल कदमी करने लगता और इन्द्रनील सीधे गायक के पास जाकर बैठ जाता।

अब केतली में रखी चाय ठण्डी हो जाती। अखबार भी ज्यों के त्यों पड़े रहते।

नीता मानो जादुई लड़की थी।

कभी किसी गंभीर विषय पर तर्क करती तो कभी बिना वजह तर्क करती। कभी हँसी मजाक में हल्की फुल्की लड़की जैसा आचरण करती। उससे मन मोड़ना कठिन था।

फिर भी नीलांजन यह कठिन साधना कर रहा था।

गाना सुनने के बाद वह कभी आकर नही कहता—अच्छा गा लेती हैं आप।

बल्कि नीता ही पास आकर कहती—क्यों मझले भैया, आप तो कुछ

बोल ही नहीं रहे हैं। गाना सुनकर मूक बन गए हैं।

नीलांजन सिर्फ आंखें उठाकर देखता।

नीता कहती—कुछ तो कहिए भैया। डाँटना हो तो डाँटिए, मारना हो तो मारिए पर इतनी चुप्पी से भर्त्सना मत कीजिए। मै तो ठंडी पड़ जाती हूँ।

—भर्त्सना किस बात की। अच्छा ही तो है।

—तो फिर कहिए न—वाह ! क्या बढ़िया गाया !

—हर समय क्या कुछ कहकर ही समझाना पड़ता है।

—फिर तो मैं लाचार हूँ। कहकर हाथ उलटा कर निराशा की भंगिमा दिखाकर नीता भाग जाती है। फिर कभी आकर कहती—आज बाबूजी को एक जगह ले जाना है। और आज रविवार है। ले चलिए न हमें ?

नीलांजन भौं सिकोड़कर कहता—क्यों इन्द्र को क्या हुआ ? वो नहीं राजी हो रहा है क्या ?

—इसमें राजी नहीं होने का क्या है ? वह तो जाने के लिए एक पैर पर खड़ा है। मैं ही उसे लेकर नहीं जाना चाहती हूं। बाबूजी को समझाना पड़ता है कि वे कहीं अपनी जरूरत से जा रहे हैं। रोज-रोज एक ही आदमी को देखने से संदेह करेंगे।

—रोज-रोज इतना जाते कहां हैं ?

—मानसिक चिकित्सक के यहां। डा० पालित हैं न ?

—पर मैंने तो सुना था लुम्बिनी में दिखाने आयी थी ? नीलांजन की दृष्टि रूखी और तीक्ष्ण थी।

नीता निर्विकार रही। बोली—हां। सोचकर तो ऐसा ही आयी थी। पर डा० पालित कह रहे हैं, थोड़ा समय और गुजरने दीजिए। जमीन तैयार करनी होगी। किसी भी तरह रोगी को पता न लग सके कि उन्हें मानसिक चिकित्सालय भेजा जा रहा है। कोई और कहानी बनानी पड़ेगी।

—आपके पिताजी को देखने से यह नहीं लगता है कि वे बीमार हैं। लगता है स्वभाव से ही वे नासमझ और लापरवाह हैं।

—नहीं। यही नासमझी तो उनकी बीमारी है।

नीलांजन और भी रूखे भाव से बोला—वो भी सब क्षेत्र में तो नहीं लगता। खाना खाकर हाथ धोना तो वे नहीं भूलते। और हाथ धोकर फिर खाना। सोने से पहले कपड़े बदलना भी वे नहीं भूलते। नहा कर बाल बनाना नहीं भूलते। सिर्फ सामाजिक रीति-रिवाज, व्यावहारिक, शोभन-अशोभन बातों को वे नजर अंदाज कर देते हैं।

—डाक्टर का कहना है कि ऐसे रोगी ऐसा ही करते हैं।

—मानसिक रोग के डाक्टर रोग न पकड़ पाने पर ऐसा ही उल्टा सीधा पाठ पढ़ा देते हैं।

—मानसिक रोगी की बात रहने दीजिए। क्या स्वस्थ व्यक्ति भी हर समय सही बात, सही काम कर पाता है? शोभन-अशोभन की जिम्मेदारी ले पाता है? आप अभी जो कुछ भी कह रहे हैं, क्या यह आपको शोभा देता है? हम आपके मेहमान हैं। मजबूरी में आपके यहाँ आए हैं और आप खरी-खोटी सुना रहे हैं।

—आपको मैंने कुछ नहीं कहा। नीलांजन गंभीर हो गया। नीता के व्यंग ने उसे जला दिया था। पर इस दहन का आकर्षण भी बड़ा तीव्र था।

पर इस दाह से क्या सिर्फ नीलांजन ही था फिर घर के सभी लोग जल रहे थे?

यह दाह 'अनुराग कुटीर' के लिए बड़ी अनहोनी चीज थी। जो 'अनुराग कुटीर' खरी धूप में सोया पड़ा रहता, अब वह रात के अँधेरे में भी जगा बैठा रहता था।

थका घर के दक्षिण की तरफ की खिड़की खोलकर सुचिन्ता बैठी बैठी न जाने क्या सोचा करती।

उसने अपने को यह किस जाल में उलझा लिया था? यह वह क्या कर रही थी!

जो अतीत मृत्यु-सी शीतलता में मूक बना मिट्टी के निचले तल में पड़ा हुआ था, उसे यह फिर से क्यों जुबान दे रही थी।

ऐसी अजीबोगरीब स्थिति कब तक चलेगी? इन्हें आए दो महीने होने को आए। ईश्वर ही जानता है सुशोभन को कितना फायदा पहुँचा

पर सुचिन्ता की क्षति की तुलना ही नहीं हो सकती, सुचिन्ता की गृहस्थी की शृंखला ही टूट गयी। जीवन की शृंखला टूटी और 'अनुपम कुटीर' की मौन गंभीरता की वेदी पर सुचिन्ता का जो श्रद्धा और सम्मान का आसन था, वह भी हिल गया।

अब लड़कों के सामने सुचिन्ता सहज ही नहीं हो पाती थी। उनके सामने वह जल्दी निकलती ही नहीं थी। जब तक लड़के घर पर रहते, वह अपने को हजार कामों से ओढ़ कर रखती।

दूसरी तरफ आए हुए लोगों के लिए भी उसका मन बेचैन था। नीता को सुचिन्ता ठीक से समझ ही नहीं पाती थी। सोचती—कैसी लड़की है नीता? बड़ी सीधी, साफ दिल की या अत्यंत चतुर। क्या अपना जीवन बनाने के लिए वह सुचिन्ता के तीनों लड़कों से खेल रही है? या उसके तरुण शरीर में आज भी एक सहज बालिका बसी हुई है? कुछ भी हो, वह बातें तो बड़ी पकी-पकी और ऊँची-ऊँची करती है।

वह इन्द्रनील के साथ लड़ती-झगड़ती, वजह-बेवजह उसे धूप में लेकर घूम-फिरकर देर सवेर लौटती, तर्क में समय का होश खोकर दस-दस बजे रात को खाना खाती। पर उसके इन जुल्मों से इन्द्रनील का चेहरा और भी खिल उठता। इन्द्रनील या तो उसके कब्जे में चला गया था।

फिर जब निरुपम के कमरे से नीता की खिलखिलाती आवाज गूंजती, सुचिन्ता मन में सोचती—उसने अब तक जो कुछ सोचा था, वह सब गलत था। नीता एक तरह से शिव की तपस्या भंग करने पर तुली थी।

पर सुचिन्ता असली चिंता में पड़ जाती नीलांजन के साथ नीता के सम्बन्ध की जटिलता देखकर। सोचती—दोनों पास आते ही क्यों टकरा जाते हैं? इन बातों को सोच-सोचकर सुचिन्ता थक जाती थी। बेहाल होकर कभी सोचती—बिलकुल बुरी लड़की है। बाप की तरह नहीं हुई। जरूर माँ पर गयी है। किसी से प्यार नहीं करेगी। तीनों को नचाएगी।

पर सुचिन्ता के बुद्धिमान, संयत, अल्पभाषी लड़के एक फालतू लड़की के हाथों नाच क्यों रहे थे—इस बात को सुचिन्ता सोचना नहीं चाहती थी। सोचने की प्रथा ही नहीं थी, शायद इसीलिए यह खुली खिड़की उसे दिखाई नहीं दी। प्रथा नहीं थी। सचमुच ही प्रथा नहीं थी। लड़कियाँ

जादुई छड़ी से लड़कों को भेड़ बना सकती हैं, लड़कियों की यह बदनामी अनन्त काल से चली आ रही है। आदमी अगर आदमी है तो वह भेड़ कैसे बन सकता है, यह प्रश्न कोई नहीं उठाता। सुचिन्ता भी नहीं उठाती। पर मन ही मन कहती—नीता सिर्फ मेरे लड़कों को ही नहीं नचा रही है बल्कि मुझे भी नचा रही है। पर अब और नहीं।

रात को आकाश की तरफ ताककर सुचिन्ता प्रतिज्ञा करती। बस! बहुत हो चुका। यह कल ही वह देगी—बहुत समय हो गया। कुछ भी तो उन्नति नहीं हुई। अभी तो वही बचकानी हरकत। फिर क्या फायदा? अब मुझे तो मुक्ति दो। देखती नहीं, अपने बेटों की आँखों से मैं आँखें नहीं मिला पाती। लड़के भी कब तक व्यंग भरी नजरों से देखकर चुप बैठेंगे। वे मुझसे तीखे सवाल भी कर सकते हैं—तुम्हारे बालपन का प्रेमी तुम्हारी तरफ मुग्ध नयनों से देखेगा, यह दृश्य हर घड़ी हम क्यों सहन करेंगे? वे मगर बस इसीलिए नहीं हो पाते क्योंकि उनकी दृष्टि तुमने ढँक रखी है। पर तुम कब तक इसे ढँक सकोगी नीता? जब तुम्हारा मोह टूटेगा उस दिन प्रतिवाद से मेरा संसार भी टूटकर बिखर जाएगा। बहुत समुन्दर पार कर मैंने किनारे पर घर बाँधा था। तुम फिर मुझे समुद्र की लहरों में धकेल रही हो।

सुचिन्ता मन में ठान लेती कि अब वह निश्चित रूप से नीता से यह सब कहेगी। पर सुबह होते ही उसका सारा संकल्प ढह जाता। वह स्वयं ही उद्वेलित हो उठती—दूध के लिए, गरम पानी के लिए, नाश्ते के लिए। ऊपर नीचे दौड़-धूप करने लग जाती। और नीले काँच-सी दृष्टि से गंभीर सी आवाज गूँज उठती—सुबह-सुबह इतना क्या काम रहता है तुम्हें सुचिन्ता? सुबह का आकाश देखो कितना साफ है, कितनी रोशनी है। पर सब एकाएक खो सा गया है। मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दिखा सका।

सुनकर सुचिन्ता का भी सब कुछ मानो खो सा जाता। हँसकर बोलती—रोशनी कहाँ खो जाएगी? यह देखो कितनी रोशनी है।—यह तो धूप है। उसमें रंग कहाँ है। सुबह कितने रंग थे बचपन के उस आकाश की तरह। याद है तुम्हारे घर के छत से यह हम साथ-साथ देखा करते थे।

—मेरे घर की छत?

पल-भर में सुचिन्ता अपूर्व रोमांच के साथ पीछे छोड़ आए समय को फिर पकड़ लेती। उसकी छत। जहाँ अपने को चतुर समझकर दो अबोध लड़का-लड़की डंडे से चम्पा के फूल तोड़ते। वैसाखी चंपा का पेड़ सुनहरे फूलों से लदा सुचिन्ता की छत छूता था। वहां से छोटे-से डंडे के सहारे फूल तोड़ने में भी एक नशा-सा था।

सुशोभन की दादी वाणेश्वर देवता की पूजा करती थी। वैसाख के महीने में वाणेश्वर देवता को चंपा का फूल चढ़ाना होता और सुशोभन को दादी की पूजा के लिए फूल चुनना बहुत पसंद था। पौ फूटते ही सुशोभन सिर्फ पूजा के फूलों के लिए बेचैन नहीं, बल्कि सुचिन्ता की छत पर जाने के लिए भी बेचैन रहता।

सुशोभन चाहे कितनी ही धीरे छत पर पहुंचता, सुचिन्ता उसे पकड़ ही लेती। वह भी अपनी दादी से कहती—देखो दादी! शैतान फूल तोड़ने फिर छत पर आया है। तुम्हारे गोपाल की पूजा के लिए एक भी फूल नहीं बचेगा। ओह! दादी अपनी तसर की साड़ी दो न। पहनकर तुम्हारी पूजा के लिए फूल तोड़ लाऊं।

दादी नाराज होकर कहती—रहने दे। तुझे लड़ने के लिए जाने की जरूरत नहीं है। भन्ना उसी में से हमें भी फूल दे जाएगा।

दादी की सास का नाम सुषमा था इसलिए दादी सुशोभन का पूरा नाम नहीं लेती थी।

सुचिन्ता भी कभी-कभी बचपन में चिढ़ाकर कहती थी—भन्ना भन् भन् नचखी भिन् भिन्। सुशोभन भी बदला चुकाने के लिए कहता—सुचिन्ता ता् ता् चिनता्। पर वह तो दोस्ती के समय। फूल की चोरी के समय दोनों एक-दूसरे के दुश्मन थे।

—भन्ना तुम्हें फूल दे जाएगा? सुचिन्ता दादी पर झल्ला उठती। तुम तो जैसे तर ही जाओगी। अपने ही फूल भिखारी की तरह हाथ फैलाकर लेने पड़ेंगे। वह शैतान अपनी दादी के लिए सारे फूल ले जाएगा और अश्रद्धा से चार फूल तुम्हें दे जाएगा। आखिर क्यों?

सुचिन्ता की दादी फिर भी सुचिन्ता को ही डांटती, कहती—अश्रद्धा से क्यों देगा, री। भक्ति भाव से ही देता है। तुम उससे नहीं लड़ सकी,

इसलिए जली-कटी बोल रही है। तुझे जाने की जरूरत रही है। तेरी मां नाराज होती है।

—मां की बात छोड़ो। तुम घर का काम काज छोड़कर दो घंटे तक सुबह पूजा करती हो, मां तो इस पर भी नाराज होती है। देव-देवी पर किसी की भक्ति तो है नहीं उस घर में।

दया अगर कर जाती।

दादी का चेहरा गुस्से से तप जाता। बोलती—जा तू फूल तोड़ने जा। देखती हूं तेरी मां क्या कहती है? फिर सुचित्ता को कमर की साड़ी देकर वह घस्-घस् चंदन घिसने लगती।

पर रोज-रोज एक ही चालाकी काम नहीं आती। फिर दूसरा तरीका ढूंढना पड़ता। और वह यह था कि शुशोभन सुचिन्ता की सलाह से दो-चार दिन गोपाल के लिए पूजा के फूल देना बंद कर देता था।

दादी दो घंटे इंतजार करने के बाद चिल्लाती—अरी ओ चिन्ता। भग्ना क्या अभी भी फूल तोड़ रहा है? देख तो जरा।

सुचिन्ता मुंह फुलाकर कहती—तुम्हारा भग्ना तो कब का चला गया। क्यों? तुम्हें फूल नहीं दे गया?

—नहीं तो।

—देख लिया न कितना भक्त लड़का है। यह बोलते समय सुचिन्ता के मन में पाप का डर नहीं होता, क्योंकि उसने शुशोभन को सिखा दिया था कि वह कुछ फूल गोपाल के नाम से नदी में बहा दे। इससे भगवान दोनों के पाप धो डालेंगे।

—मैं जा रही हूं दादी। सुचिन्ता कहती।

—तू कहां जाएगी?

—कहीं दो चार जली-कटी सुनाकर आऊंगी। उस घर की दादी को पूछूंगी—आपका प्राणेश्वर ही देवता है? हमारे गोपाल क्या देवता नहीं?

—चुप रह। मुहल्ले वालों से लड़ने जाएगी?

पर ऐसे समय दादाजी सुचिन्ता का पक्ष लेते। कहते—पर यह तो सरासर उन लोगों के लड़के की गलती है। कुछ कहना तो चाहिए ही। फिर कुछ कहने के लिए सुचिन्ता को उस घर में जाने की छूट मिल जाती।

वहां पहुंचते ही सुशोभन पूछता—तू छत में मुझे फूल देने के लिए मना कर गयी थी। तेरी छत में आने के बारे में दादी को पता तो नहीं चल गया?

—ऊँ हूं। पता चलता तो तुझे भी पता चल जाता। एक आंख बंद करके सूर्य को निहार रही थी। पैर फिसलकर गिरती तो क्या होता?

—क्यों? इस शहजादे की आंखें तो खुली हुई थीं। गिरती तो पकड़ नहीं लेता?

—गिरकर मेरी टांग टूट जाय, तू यही चाहता है?

—सच कभी-कभी यही इच्छा होती है। तू टांग तोड़कर बैठी रहेगी तो तेरी शादी नहीं होगी।

सुनकर उस बालिका के चेहरे पर सूर्य के सातों रंग खिल उठते थे।

चेहरे का वह लावण्य आज इतने वर्षों के बाद ढूंढे भी नहीं मिलेगा। सात रंगों में से छः रंग तो बिल्कुल बेकार हो गए हैं। शेष जो रंग रह गया था, वह था लाल रंग। लज्जा, लज्जा और लज्जा का ही रंग आखिरी संबल रह गया था। सुचिन्ता आज भी इकरंगे चेहरे से ही बोली —अभी भी वह बचपन रह गया है क्या कि बेहोश होकर आकाश के रंग देखूंगी। उम्र नहीं हुई है?

सुशोभन निराश होकर बोले—उम्र हो गयी है?

—पर सुचिन्ता आकाश की तो कोई उम्र नहीं होती। पृथ्वी की उम्र नहीं होती। सिर्फ आदमी की उम्र क्यों ढल जाती है। चारों तरह सब कुछ तो उसी तरह है। हमीं क्यों किसी और तरह के हो गए? क्या ताज्जुब है?

रात को भी सुचिन्ता खिड़की के पास बैठी सोच रही थी—अब तो सिर्फ एक ही रंग, अंधकार का रंग रह गया है। आदमी को तो बदलना ही पड़ता है। इसके सिवा चारा भी क्या है? पर इन बातों को कौन समझेगा?

'अनुपम कुटीर' का वह लड़का सुबह खिड़की के पास आराम कुर्सी बिछाकर बैठा था। उसकी खिड़की से आकाश का एक टुकड़ा दिखता था। शहर ने अपने पंजे यहां तक फैला लिए थे पर सारे आकाश को तो

अपनी मुट्ठी में नहीं बाँध पाया था। आराम कुर्सी में अधलेटा निरुपम आकाश में बादलों का तैरना देख रहा था। झिलमिलाते नारियल के पत्तों और चाँद का मुंदना-छिपना देखते-देखते उसे झिलमिलाती बातों का टुकड़ा याद आ गया।

—धन्य हैं आप बड़े भैया ! क्या ही सुन्दर शाम है और आप कमरे में घुट-घुटकर किताबें पढ़ रहे हैं। खिड़की तक पूरी नहीं खोली है। पता नहीं आपको छुट्टी क्यों मिलती है ?

—फिर कभी ओफ ! बड़े भैया आज आप चलिए न हमारे साथ ! बाबूजी को डाक्टर के चैम्बर के अन्दर जाने के बाद मुझे अकेले में डर लगता है।···मंझले भैया ! वे ठहरे काम-काज के आदमी। उन्हें इतनी फुर्सत कहाँ ? और छोटे बाबू ? मेरे साथ रोज-रोज घूमने पर तो परीक्षा में निश्चित फेल।

क्यों बड़े भैया, खुद तो कह रहे थे आपके घर से बाहर चले जाने पर ही गाना-बजाना होगा फिर अब क्यों सुनते हैं ? ओह ! शोर के कारण नहीं पढ़ पा रहे हैं ? ईस्··· यह तो मैं मानने से रही। तन्मय होकर गाना सुन रहे थे न ? बड़े भैया ! बड़े भैया !

घर के बड़े लड़के का सम्मान।

इस सम्मान के तिलक को मिटाया भी तो नहीं जा सकता था। यह तिलक अगर आग का तिलक बन जाए, फिर भी इसे हंसकर ही ढोना पड़ेगा।

दूसरे किसी कमरे से बेचैनी से चहलकदमी की आवाज आ रही थी। ठीक उसी कमरे के नीचे के कमरे में सुबल सोता था। सुबह सोचता होगा, पता नहीं इस घर को क्या हो गया ? मानो मकान पर दानव सवार हो गया है। रात भर कौन चल फिर रहा है।

जो चलता फिरता था, उसे किसी की परवाह नहीं थी। आधी रात को वह कुर्सी को खींचता। पलंग को खींचकर पंखे के नीचे लाता। बेचैन मन में प्रश्न उठता कि वह किसे चाहता है ?

नीलांजन दीवार से ही प्रश्न पूछता। या वो किसी को भी नहीं चाहता।

भैया के कमरे में उसे इतनी क्या जरूरत पड़ती थी? भैया से इतनी क्या बातें करती थी? भैया भी धन्य ठहरे। उसके साथ गला मिलाकर निर्लज्ज की तरह हंसते। 'अनुपम कुटीर' क्या फिर से अनुपम के समय की तरह हो उठा। हर समय बात, हर वक्त हंसी, मजाक और गाना। इन सब बातों से इस घर में और किसी को परेशानी भले ही न होती हो, पर मेरी बात और है। मैं इतना हल्का नहीं बन सकता। थोड़ी-सी हंसी, थोड़ी-सी दृष्टि और थोड़ा-सा स्पर्श, मैं इससे अपने को नहीं खो सकता। —नीलांजन मन ही मन बड़बड़ाता। मैं अगर लूंगा तो पूरी तरह लूंगा। फिर मुट्ठी में बांध कर पीसकर सोने के डब्बे में भरकर रख दूंगा। फिर अगर लड़ाई होगी तो हो। भैया के साथ, इन्द्र के साथ। पर लडूंगा जरूर। मैं उसे पाकर ही रहूंगा।

तीसरे कमरे में इन्द्रनील बिस्तर में पड़ा सोचता—ना, बहुत हो चुका। कल से पढ़ना-लिखना शुरू। इधर में किताब कापी से वास्ता ही नहीं रहा। नीता के आक्रमण से अपने को बचाना पड़ेगा। पर मुश्किल ही है। विनती करके कहूंगा—मुझे मत बुलाया करो। तुम कुछ भी कहती हो तो मैं 'ना' नहीं कर सकता। पर अब 'ना' ही करना पड़ेगा। जरूर कहूँगा।

और सुचिन्ता के सबसे अच्छे कमरे में बैठी नीता पिताजी की आंखें बचाकर चिट्ठी लिख रही होती—विदेशी अन्तर्देशीय पत्र में।

छोटे-छोटे अक्षरों में लिखती—तुम्हारे ही निर्देश से मैं पिताजी को यहां लायी थी। अचानक आकर अगर जबर्दस्ती रह जाऊं तो ये हमें घर से निकालेंगे नहीं—बस इतना ही भरोसा था। तुमने ठीक ही कहा था। पिताजी की आंखों में सहायता की छाया कभी-कभी बिल्कुल नहीं दीखती। आंखों में प्रसन्नता की झलक दिखाई देती है। कभी-कभी उम्मीद भी बंधती है कि पिताजी फिर पहले जैसे हो जाएंगे।

तुम जब तक आओगे तब तक तुम्हारी बताई चिकित्सा से पिताजी आधे ठीक हो जाएंगे।

वो महिला जिन्हें मैं क्या सम्बोधन करूं, सोच न पाने पर 'बुआ' कहती हूं, मैं समझ सकती हूं कि उनकी हालत उलझी हुई है। एक तरफ

ता वे परेशान हैं ही। लड़कों के कटाक्ष से बेचारी संकुचित भी हुई जा रही हैं। पर दूसरी तरफ कभी-कभी उनका चेहरा खिल उठता है। मुझे लगता है, पिताजी की तरह उनका जीवन भी हमेशा एकान्त का ही रहा। अब बालकों के एक वृहत् मेल में अपने को व्यस्त कर वे मानो पूर्णता की प्राप्ति में जुटी हैं।

शुरू में जब यहाँ पहुँची थी, मुझे लगता था वे बूढ़ी हो गयी हैं। अब वैसी नहीं लगतीं। मन के साथ-साथ चेहरे से भी उम्र के कई साल झड़ गए हैं। कभी-कभी अजीब से अपराधबोध से मन पीड़ित हो उठता है। लगता है, जब पिताजी ठीक हो जाएँगे और मैं उन्हें लेकर यहाँ से चली जाऊँगी तब इनकी क्या हालत होगी। महाभारत का वह अंश याद आता है जब कुछ चला जाता है तो देवयानी कह उठती है—

> मेरा अब कौन-सा काम रहा, कौन-सा धन रहा
> मेरे इस प्रतिहत निष्फल जीवन में
> किस बात का गौरव बचा रहा ?
> जिधर मैं नजर घुमाऊँ
> सहस्र स्मृति की चुभन...

पहले भी दो बातें की पंक्तियाँ तुम्हें मालूम ही होंगी। पर उनका जो मन सो चुका था, उसे जगाकर मैंने शायद उन्हें हानि ही पहुँचायी है। शायद नहीं भी हो सकता है।

शायद यह उनके जीवन की चरम [illegible] हो सकती है। चरम प्राप्ति भी हो सकती है। पर जैसे भी हो [illegible] इसको स्वस्थ करना ही होगा, नहीं तो तुम्हारे [illegible]

यह जीवन यों ही बिना [illegible] है। [illegible] जीवन की प्रतिक्रिया तो देख [illegible] है [illegible] मानसिक रोगी दिन पर दिन [illegible] मन को नहीं छू पाता है। [illegible] चुका है। 'आनंद निर' [illegible] मन का स्पर्श न [illegible] ज्यादा देर मन [illegible] औ

सकती। तुम्हारी चीज को झटपने के लिए कौए, चील बिल्लियां सभी हैं समझ लो। कब तक संभालकर रखूं। पहली चिट्ठी में तो सब कुछ लिखा ही है। रोगी लेकर इस घर में आकर मैंने देखा कि यहां का हर सदस्य अपने में ही एक रोगी है। सभी मानसिक रोग से पीड़ित हैं।

इनका रोग कैसा है मालूम?

साधारण होकर भी अपने को आसाधारण समझना, अस्वाभाविक होने का मतलब आसाधारण नहीं होना...यह उन्हें किसीने कहीं समझाया। नहीं समझाने का फल यह हुआ कि असाधारण होने की धारणा से साधारण लोगों का छूत लग जाने के डर से इन्होंने अपने को इतना अछूता रखा कि छूत की मरीज की तरह स्वयं ही अपने मुहल्ले में निर्वासित पड़े हुए हैं।

असाधारण होने की भावना से इस घर में कोई किसी के साथ जी खोलकर नहीं हंसता, बात नहीं करता। पर सच मानो ये लोग इतने साधारण हैं कि इनके दरवाजे जरा सा खटखटाओ तो पता लग जाता है।

सुचिन्ता बुआ को फिर भी समझ सकती हूं। तमाम जिंदगी के संगी-हीन जीवन के सूनेपन ने उन्हें इस तरह से नीरव बना दिया है। दूसरे शब्दों में वह भी एक निराले किस्म की आत्मप्रेमी है। अपने मन की गहराई में खोई-खोई रहने से उन्हें स्वयं से प्यार हो गया है।

यह आत्मप्रेमी ही इनके जीवन का अवलम्बन है। यह बात तो समझ में आती है। पर घर के तीन-तीन नौजवान इस तरह के क्यों हैं। कभी-कभी तो असहनीय लगता है। इन्हें सहज बनाने की साधना में जुटी हूं। हालांकि मुझे ज्यादा खटना नहीं पड़ेगा। छोटे को तो मैं कायदे पर ला ही चुकी हूं। वैसे घर में तो अब भी वह कुंठित ही रहता है, पर बाहर आकर खुली सांस लेता है।

फिर भी सच बताती हूं, इनके प्रति मन में ममता आती है। बड़े बेचारे हैं ये। बड़े को तो मैं श्रद्धा से देखती हूं। छोटे से स्नेह करती हूं। मंझले के लिए मन में जिज्ञासा का चिह्न है।

कागज भर चुका। बस करती हूं।

तुम्हारी...



अनुपम के समय से घर में एक गाड़ी थी। पुराने माडल की सेकेंड हैंड खड़खड़ गाड़ी। पर अनुपम ने खुश होकर ही इसे खरीदा था। उस गाड़ी में बैठकर अपने को गाड़ी का मालिक समझकर वे फूले नहीं समाते थे। अपने रिश्तेदारों को गाड़ी में बिठा कर घर ले आते थे। मौसी और बुआ को गंगास्नान करवा लाते थे। सिर्फ अपनी पत्नी और बेटों को वे नहीं बैठा पाए थे।

सुचित्रा को कभी भी घूमने निकलने की फुर्सत ही नहीं मिलती थी। और इस अपूर्व गाड़ी में बैठना बेटों के लिए शर्म की बात थी। अनुपम कभी-कभी सहज भाव से कहते—अरे बाबा, गाड़ी का काम है किसी को एक जगह से दूसरी जगह तक ढोकर ले जाना। मेरी गाड़ी क्या यह काम नहीं करती? फिर भी गाड़ी को गालियां देते हो।

गलती क्या है—यह समझाने का धैर्य लड़कों में नहीं था। वे सिर्फ कहते—हमें गाड़ी की जरूरत नहीं।

अनुपम कहते—खरीदता भाई, तुम लोगों की पसन्द माफिक ही खरीदता—अगर इस मकान में हाथ नहीं लगता। होगा। सब्र से ही मेवा मिलता है।

पर मेवा उगाने का समय का सब्र अनुपम न कर सके। मनपसंद गाड़ी की बात वहीं रह गयी। गाड़ी की आशा अब नहीं रही, इसका दु:ख इन लोगों को जितना नहीं था उससे अधिक सुख इस बात का था कि बाप ने मर कर इन्हें छुटकारा दिला दिया था। जीवन में पहली बार इन्होंने पिता के व्यवहार को सराहा।

इस 'अनुपम कुटीर' में जब अनुपम स्वयं आते तो उनके गृहप्रवेश के साथ ही परिवार के बाकि सदस्यों को परिवार की भद्दी स्थूलता नजर आने लगती। अनुपम की पत्नी और उनके पुत्र कितने सभ्य, कितने सूक्ष्म, कितने रुचिशील थे, किसी को मालूम ही नहीं चलता था। इसके अलावा पूरा घर आने-जाने वालों के पैरों की धूल से हर वक्त गंदा ही बना रहता।

लगातार लोगों का आना-जाना, खाना-पीना, हंसी-मजाक, ताश और

शतरंज, बाप रे बाप। अनुपम के मरने के बाद जैसे यह मकान इन सब जंजालों से मुक्त हो गया। सुचिन्ता और उसके पुत्र अपरिचय की चादर ओढ़कर इस मुहल्ले में आए थे और अभी तक वे उसे उतारकर फेंक नहीं पाए थे।

उस टूटी-फूटी गाड़ी को अनुपम के श्राद्ध के पहले ही बेच दिया गया था। नई गाड़ी खरीदने का सामर्थ्य अनुपम के बेटों में था नहीं, इसलिए बस, ट्राम या टैक्सी ही उनका सहारा रह गयी थी।

वैसे बस घर के सामने से ही खुलती थी। दिक्कत कुछ भी नहीं थी। दिक्कत सिर्फ उतनी ही थी कि कहीं मुहल्ले का कोई उसी बस में चढ़कर मुस्कराकर यह न पूछे बैठे—क्या हाल चाल है? सब ठीक है न?

इसका सामना न करना पड़े, इसलिए गर्दन टेढ़ी से टेढ़ी भी हो जाए तो भी बस की खिड़की से बाहर ताकना पड़ता था। पर हाल में एक रेलवे गुमटी की मरम्मत की वजह से वह दूसरी सड़क से पकड़नी पड़ती है। चौराहे पर ही मुहल्ले के लोगों को उतरना भी पड़ता है। उसी चौराहे से आते समय एक दिन अचानक नीलांजन चौंक कर रुक गया। स्टेशनरी की दुकान पर नीता खड़ी-खड़ी क्या कर रही थी? जरूर कुछ खरीदने आयी होगी। उसने सोचा—आयी है तो आने दो। इसमें मेरा क्या? पर ऐसा सोचकर भी नीलांजन आगे नहीं बढ़ पाया। वह इस ढंग से खड़ा रहा कि किसी को मालूम ही न चले कि वह क्यों खड़ा है?

—अरे आप? नीता ने ही पूछा। 'मंझले भैया' कहने से नीलांजन जवाब ही नहीं देता। इसलिए सिर्फ आप से ही काम चलाना पड़ता है।

—ओ हां। अभी-अभी लौट रहा था।

—मुझे कुछ खरीदना था। चलिए चलते हैं। साथ-साथ चलते-चलते नीता ने कहा—एक बात बताइए। आपने अभी तक सौजन्यता का क···ख···ग···घ···नहीं सीखा है क्या?

—इसके माने? नीलांजन ने सहम कर पूछा।

—माने बिलकुल आसान है। कोई महिला अगर कुछ ढोकर चले तो कोई भी भद्र पुरुष क्या उसे आंखें फाड़ कर देखता है?

नीलांजन ने भी कटाक्ष किया—कौन-सा ढोने लायक सामान

खरीदा है ? एक क्रीम और स्याही का डब्बा। कितना वजन होगा दोनों का ?

—वजन ही सब कुछ नहीं होता। लीजिए पकड़िए। सड़क चलते-चलते कोई देखकर यह स्याही कहीं आपके चेहरे पर न पोत दे, इसी डर से दे रही हूँ ?

—बड़ी कृपा है आपकी। नीलांजन ने कहा—कहीं और जाना है ?

—नहीं, कहाँ जाऊँगी ? नीता निराश भाव से बोली—सुना है यहीं आस-पास कहीं रवीन्द्र सरोवर है, पर अभागे की तरह वहाँ अकेले तो जा नहीं सकती।

—साथी की हैसियत से यदि मैं असहनीय नहीं हूँ तो साथ दे सकता हूँ।

—पर दिन भर के परिश्रम के बाद आप थके-हारे घर लौट रहे हैं।

—मैं थकता नहीं।

—फिर भी जिस कदर आप लोग नियम के पाबन्द हैं, कहीं आपकी माँ चिन्तित न हो जाएँ।

—माँ ! नीलांजन की आँखों में व्यंग छलक उठा। सोचने के लिए माँ के पास इससे कहीं अधिक कीमती विषय है।

नीता ओंठ से ओंठ दबाकर स्वाभाविक स्वर में बोली—आदमी की अश्रद्धा करते-करते आपकी यह हालत हुई है कि आप 'श्रद्धा' शब्द को ही भूल बैठे हैं।

—श्रद्धा करने लायक आदमी हो तो श्रद्धा की बात उठती है। ऐसे आदमी दिखते कहाँ हैं ?

—यह आपका दुर्भाग्य है कि इतनी बड़ी दुनिया में श्रद्धा करने लायक आपको एक आदमी भी नहीं मिला। इसका कारण क्या है जानते हैं ?

—सुनाइए। अपने आपको धन्य मानूँगा।

—कारण यह है कि आपने अपने पर ही श्रद्धा करना नहीं सीखा है। श्रद्धा करने के लिए मुँह ऊपर करके स्वर्ग लोक की तरफ ताकते रहने से आदमी ताकता ही रह जाता है। स्वर्ग बड़ा कंजूस है।

—मेरे मन में इसके लिए कोई अफसोस नहीं है।

—नहीं हो सकता है। पर आप लोगों के लिए मेरे मन में जरूर अफसोस होता है।

—आप महा देवी हैं। यह लीजिए आपका रवीन्द्र सरोवर आ गया है।

—यहाँ है रवीन्द्र सरोवर? घर के इतने पास? और बार तो मैं श्याम बाजार से गाड़ी में आती थी इसलिए ठीक से रास्ता नहीं याद था। चलिए बैठते हैं।

नीता इतनी जल्दी बात पलटती थी, इसीलिए तो उसमें इतना आकर्षण था।

पर बैठें तो कहाँ बैठें। इस दुनिया में कहीं थोड़ी सी जमीन भी खाली नहीं है। इसका प्रमाण है लेक और पार्क। कहीं कोई बेंच खाली नहीं है। जैसे यह युगल मिलन का लीला क्षेत्र है, इसीलिए तो मैंने कहा था कि यहाँ अकेले आने का मतलब ही है, लोगों को बुलाकर कहना कि देखो मैं कितना अभागा हूँ, कितना अक्षम हूँ।

नीलांजन सहम कर बोला—आपका परिहास बड़ा भारी है। मेरे लिए पचाना थोड़ा मुश्किल है।

—अरे वाह! सीधी सपाट यह बात भी आपके लिए वजनी है। इन्द्रनील आपसे छोटा सही, पर इससे ज्यादा वजन ढो सकता है।

इन्द्रनील का नाम सुनते ही नीलांजन गंभीर हो गया। बित्ते भर का लड़का इन्द्रनील। तो उसके साथ भी यह वाचाल लड़की बेहयापन करती है।

नीता ने आड़े नजरों से नीलांजन को देखा फिर बोली—आइए, घास पर ही बैठते हैं।

—घास पर? दोनों जनें? रहने दीजिए। थोड़ा यों ही घूमते हैं।

—वाह! कितना घूमूंगी। थोड़ी देर बैठेंगे, चना मुरमुरा और गोलगप्पे खाएँगे। लेक में घूमने का आनन्द इन्हीं बातों में तो है।

नीलांजन विकृत आवाज से बोला—कहीं मजाक में तो नहीं कह रही हैं। ऐसी सस्ती रुचि है आपकी?

—मस्ती ? क्या मतलब ? हर समय आदमी क्या कीमती बना फिरेगा। इसीलिए तो कहती हूँ, आप लोगों के लिए मन में तरस आता है। इमली के पानी से भरे गोलगप्पे खाने का आनन्द जिसने इस जीवन में नहीं उठाया, उसका आधा जीवन बेकार है।

—शराबी भी यही सोचता है कि जो बोतल नहीं चख सका, उसकी पूरी जिन्दगी बकवास है।

—यहीं-कहीं यह बात सच भी है। अरे ओ चने वाले ! नीता ने दौड़कर चना मुरमुरा खरीदा। नमक मिर्च ऊपर से माँगकर लिया और फिर नीलांजन के पास आकर बोली—लीजिए पकड़िए। फर्स्ट क्लास है।

नीलांजन ने हाथ नहीं बढ़ाया। बोला—आप ही खाइए।

—आप मेरा अपमान कर रहे हैं। नीता बोली।

—पर इसे मैंने जिन्दगी में कभी नहीं खाया।

नीता बोली—जीवन में कभी किसी लड़की के साथ लेक में आए थे ? जीवन में कभी नहीं किया इसलिए कभी नहीं करेंगे, यह भी कोई तर्क है ? जीवन में तो शादी भी नहीं की है, इसलिए क्या कभी नहीं करेंगे ?

वातावरण को हल्का कर नीना हंस पड़ी। नीना के दोनों हाथों में दो ठोंगे थे। नीलांजन चारों तरफ सतर्क होकर देख रहा था कि न जाने कौन उसे इस हालत में देख ले, हालाँकि किसे वो पहचानता ही था।

गुलाबी मकान की लड़की और सफेद मकान का लड़का, पास ही एक ही बेंच पर बैठकर आँखें फाड़े इन्हें देख रहे थे। नीलांजन जान भी न पाया। आवाज धीमी कर नीलांजन बोला—विवाह तो जीवन की एक बार की घटना है। प्रतीक्षा तो उसी की है। बस देखना है घटनाचक्र किस ओर मोड़ लेता है।

पर नीना मानो निर्बोध बन गई। भोली बच्ची। अफसोस के साथ बोली—आपकी तरह ज्ञान की बातें सुन-सुनकर सारे चने मुरमुरे सिल गए। लेना है तो लीजिए, नहीं तो सारा लेक के पानी में फेंक दूंगी।

—कैसी मुश्किल है ? अच्छा दीजिए।

—चलिए घास पर चल कर बैठते हैं।

—चलिए।

गुलाबी मकान वाली बोली—तुम तो कह रहे थे छोटे बेटे को नचा रही है?

—परसों तक तो मेरी यही धारणा थी। सफेद मकान वाला बोला।

—तुमने गलत देखा था। यह तो मंझला लड़का है।

—हो सकता है अगले परसों तक तुम्हारी धारणा भी बदल जाए। देखोगी, बड़े लड़के के साथ बैठकर मूंगफली चबा रही है।

—लड़की भयंकर रूप से खराब है। गुलाबी मकान वाली ने कहा।

—क्यों इसमें खराबी का क्या है?

—आज एक के साथ घूमती है, कल किसी और के साथ। यह किसी अच्छी लड़की का काम है?

—क्यों सीधी-सादी लड़की का काम जरूर है।

—सीधी-सादी?

—और नहीं तो क्या? वो तो बाहर ही घूमती है। तुम्हारी तरह मन ही मन तो नहीं भटकती फिरती।

—देखो अच्छा नहीं होगा। मैं कहे देती हूँ।

—अच्छा होने की उम्मीद यों भी कम दिख रही है। सफेद मकान वाले ने लम्बी साँस खींचकर कहा—'अनुपम कुटीर' हमें सोच में डाल देगा—यह किसने कब सोचा था।

—तुम किस सोच में पड़े हो? गुलाबी मकान वाली ने ताना कसा।

—सोचने की तो बात ही है। तुम्हारी दोनों आँखें तो 'अनुपम कुटीर' के लोगों को वाच करने में लगी रहेंगी। दुनिया में किसी और पर नजर भी उठाओगी?

—चुप भी रहो। अरे वह लड़की तो इसी तरफ आ रही है। सफेद मकान वाला कुछ कहता, उसके पहले ही नीता आकर उससे बोली—आइए न चारों जने एक ही जगह बैठा जाए। इतनी दूर से सिर्फ देख ही पा रही हैं, बातें तो सुन नहीं पा रहीं।

गुलाबी मकान वाली का चेहरा गुलाबी हो उठा। बोली—इसके

माने ?

—माने तो कुछ भी नहीं हैं। दोस्ती करने आयी हूँ। कहिए ? आपका नाम तो बताइए। ऐ मुरमुरे वाले ! दो पैकेट और दे जाओ।

शाम काफी ढलने के बाद उन चारों में तीन सड़क को मुखर करते हुए लौट रहे थे और एक अपनी अन्यमनस्कता को कोस रहा था कि वह क्यों दूसरों की तरह सहज नहीं हो सकता।

पहले 'अनुपम कुटीर' पड़ता था, फिर गुलाबी और बाद में सफेद मकान। नीना गुलाबी मकान वाली से मुस्कराकर बोली—आइएगा जरूर। अगर नहीं आई तो समझूंगी गाने की प्रशंसा दिखावे के लिए की थी।

—जरूर आऊँगी। मुझे गाना बेहद पसंद है।

—मैं गाना पसंद नहीं करता, इसका तो प्रमाण आपके पास नहीं है न ? सफेद मकान वाले ने आगे बढ़कर कहा।

—यों क्यों। आप भी जरूर आइएगा।

उनके जाते ही नीलांजन बोला—आप कहती हैं आपके पिताजी को भीड़-भाड़ पसंद नहीं, पर जानते हुए भी आप घर में भीड़ इकट्ठा कर रही हैं।

नीना बोली—भीड़ की बात नहीं। मैं उनके साथ सहज होना चाहती थी। सहज होना भी आदमी के जीवन में जरूरी है। स्वस्थ अस्वस्थ सब के लिए अनिवार्य है।

सुचित्रा बड़ी देर से परेशान हो रही थी। नीना कहाँ गयी ? नीलांजन अभी तक लौटा क्यों नहीं। सुशोभन बार-बार कह रहे थे—सुचित्रा तुम मेरी बातों पर ध्यान नहीं देती।

—सुन तो रही हूँ। सुचित्रा बोली।

सुचित्रा बार-बार खिड़की के बाहर देख रही थी। पहले तो कभी सुचित्रा इतनी चंचल नहीं होती थी। लड़के कभी देर से आते तो सुचित्रा किताब लेकर बैठ जाती थी। लड़के आते तो वह उनसे देर से आने के कारण के बारे में कभी नहीं पूछती। सिर्फ पूछती—अभी खाओगे या थोड़ी देर आराम करोगे।

पर आज जैसे ही वे सीढ़ी के ऊपर पहुंचे, सुचिन्ता झल्ला कर बोली —क्या अक्ल है नीता तुम्हारी ! तुम लोगों को कहीं जाना था तो कहकर जा सकते थे। सोच-सोच कर परेशान हो गई हूं।

सुचिन्ता तो बदल गयी थी।

पर क्या सुचिन्ता का लड़का भी बदला था ? इस उद्वेग के आगे ठंडी आवाज में उसने यह तो नहीं कहा—इसमें परेशानी की क्या बात है ? हालांकि उसके लिए, 'अनुपम कुटीर' के लिए यही स्वाभाविक था। उसके बदले नीलांजन बिना कुछ कहे पर्दा हटाकर अपने कमरे में घुस गया।

हंसी की आवाज में नीता बोली—पहले से पता होता तभी तो बता कर जाती बुआ। खुद ही को मालूम नहीं था। सब कुछ एकाएक ही हुआ। लेक में गई। वहां चना मुरमुरा खाया, मुहल्ले के लोगों से दोस्ती की।

सुचिन्ता बदल गयी थी। नहीं तो बहुत वर्षों के बाद उसके ठण्डे खून में आग क्यों लग गई ? गरम खून के दबाव से उसकी नसें फट रही थीं। कितना बेपरवाह और निडरता का जमाना आ गया था। कितने बेहया थे इस जमाने के लड़के-लड़कियां।

और सुचिन्ता ? डर और डर। जिन्दगी भर सिर्फ डरती ही आयी थी। जीवन के प्रारम्भ में किसी से प्यार हुआ था, इस अपराध-बोध से वह डरती ही आयी थी। उस प्यार को स्वीकृति दे पाने की हिम्मत नहीं जुटा पायी थी। उसका जीवन निचुड़ता गया था। बचपन से यौवन, यौवन से प्रौढ़ावस्था की सीमा पर पहुंच चुकी थी। फिर भी डर उसकी सारी सत्ता में समाया हुआ था। वह विद्रोह नहीं कर पायी थी, डर को तोड़ नहीं सकी थी, बल्कि कहीं किसी को पता न चल जाए इस डर से उसने परत-दर-परत आजीवन उस प्यार पर मिट्टी जमने दी थी।

वह अपने बड़ों से भी डरी थी, अपने से छोटों से भी। लेकिन क्यों ? सुचिन्ता का रोम-रोम अब विद्रोह में चिल्ला उठना चाहता था—क्यों ? क्यों ? क्यों ? कोई किसी से डरता नहीं, यह बोझ सिर्फ सुचिन्ता का क्यों था ?

उसका अपना ही लड़का नीलांजन तिरछी नजर के बिना उसकी ओर

जानता नहीं था। वेहिचक परायी जवान लड़की के साथ शाम को घूम फिर कर आकर निडर होकर सर ऊँचा कर कमरे में घुस गया।

और सुचिन्ता ? सुचिन्ता अपने उसी लड़के से अपने प्रेम को लेकर डर रही थी। क्यों ? क्यों ? क्यों ?

गरम खून के ठंडा होने के पहले ही नीना ने पूछा—पिताजी, बुआ क्या मुझ पर नाराज है ?

...बुआ ? तेरे ऊपर ?

सुशोभन अचानक भारी आवाज में हँस पड़े। बोले—सुचिन्ता गुस्सा करेगी ? गुस्सा किसे कहते हैं, वह जानती भी है ? गुस्सा तो मैं कर रहा हूँ। तुम लोग इतनी मस्ती कर आयीं। चना मुरमुरा खा आईं और हमें जरा-सा हिस्सा तक नहीं दिया। सुचिन्ता ! तुम्हें याद है, हम लोगों को अचार के तेल में मुरमुरा कितना अच्छा लगता था ? मेरी बुआ आवाज लगाती थी—अरी ओ सुचिन्ता, आज मुरमुरा भून रही हूँ। आ जाना। अच्छा सुचिन्ता, यह बात दिल्ली की है या दिनाजपुर की ?

नीता हड़बड़ा गई।

पर सुचिन्ता संयत भाव से हँसकर बोली—दिल्ली में हम कब साथ रहे ? अब तुम सब लोग खाना खा लो। चने मुरमुरे से तो पेट भरेगा नहीं। क्यों सुशोभन ? अच्छा ठीक है, कल अचार के तेल में मुरमुरा बनाकर हम बचपन की तरह ही खायेंगे।



सुशोभन का बड़ा भाई सुविमल कोर्ट से लौटते समय एक खबर ले आया। उसे कहाँ से मालूम चला यह बताने के पहले ही सारा घर विस्मित हो उठा। सुविमल कानून पास करने के बाद दिनाजपुर में बाप-दादों के मकान में ही रहकर वकालत करता था। अच्छी चलती थी। पर देश के विभाजन से उसका भी भाग्य विपर्यय हुआ।

बाप-दादों का मकान, धान, पान, गाय-भैंस, वकालत सब कुछ छोड़-कर जान लेकर ये लोग कलकत्ता चले आए। अपने साथ अपनी गृहस्थी, अपने बेकार छोटे भाई की गृहस्थी—सबको लेकर श्याम पुकुर के एक

जीर्ण-शीर्ण मकान को खरीदकर उसी में रह रहे थे।

सुशोभन बहुत पहले से ही दिल्ली में रहता था। पर घर से उसका लगाव था। दिनाजपुर का सब कुछ छूट जाने का दुख सुशोभन को भी हुआ था। साल भर के बाद छुट्टियाँ बिताने, खुशियाँ मनाने वह अब कहाँ जाएगा? यह क्या हुआ? सुशोभन टूट-सा गया था। निष्ठुर नियति सदा ही आदमी का धन, स्वास्थ्य, घर-गृहस्थी, बाल-बच्चों, पत्नी, प्रियजनों आदि को छीन लेती है। पर बाप-दादों का देश तक छोड़ना पड़ा, इस दुख ने सबको झकझोर दिया था।

सुविमल ने जब सुशोभन को लिखकर बताया कि अब देश शायद छोड़ना ही पड़ेगा, क्योंकि यहाँ रहना हितकर नहीं था, सुशोभन ने व्याकुल होकर लिखा, थोड़े दिन और ठहर जाओ भैया। मैं छुट्टी लेकर आ रहा हूँ। एक बार, अंतिम बार मैं अपना देश देखना चाहता हूँ। सुशोभन छुट्टी लेकर जाने की तैयारी कर ही रहा था कि सुविमल का टेलीग्राम आया—आने की जरूरत नहीं। यहाँ हम एक घंटा भी और नहीं रुक सकते। सुशोभन दिनाजपुर नहीं जा सका। वह दुबारा सुचिन्ता के बागीचे के बाकुल के पेड़ में उसी के चाकू से लिखे 'सु' शब्द को देख नहीं पाया। सुचिन्ता बोली थी—देखो कितने कायदे से लिखा है। कोई देखेगा तो समझेगा मैंने अपना ही नाम लिखा है।

सिर्फ पेड़ पर ही क्यों, दिनाजपुर के घर में सभी जगह अदृश्य अक्षरों में लिखा हुआ था—'सु', 'सु', 'सु'।

सब कुछ स्वप्न-सा मिट गया। माँ, बाबूजी, दादी, बुआ, सबकी स्मृति ओझल हो गयी। सुविमल श्याम पुकुर में मानों एक नए वंश का परिचय देकर बस गया था। फिर भी सुशोभन हर साल दशहरे में दिल्ली से यहाँ आता और साथ ढेर सारे उपहार लाता। यहाँ आकर पानी की तरह पैसे खर्च करता और फिर उदास नयनों से बेटी को साथ लिए दिल्ली रवाना हो जाता।

पर पिछले तीन वर्षों से यह नियम टूट गया था। नीता या सुशोभन कोई कलकत्ते नहीं आए। नीता ने लिखा था—पिताजी की तबियत खराब है। इस बार भी नहीं आ सकेंगे।

लिखकर नीना ने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया था। सुशोभन के बड़े भाई सुविमल ने उस चिट्ठी का जवाब न देकर, बस दशहरे के आशी-र्वाद के साथ एक चिट्ठी लिखी थी। भाभी ने व्यंग से कहा था—बाबू ने अब गरीबों के साथ अपने संबंध तोड़ लिए हैं।

पर सुविमल आज जो खबर लाया, उसे तो सुनकर सभी विस्मय, विमूढ़ हो गए।

पिछले दो महीनों से सुशोभन इसी कलकत्ते में रह रहा है। और वह भी सुचिन्ना के घर। वही सुचिन्ना—दिनाजपुर के मकान के साथ के घोष बाबू की लड़की।

पर इसका कारण किसी की समझ में नहीं आ रहा था। चार साल पहले जब सुशोभन आया था, तब क्या किसी ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था? सुशोभन की भाइयों के प्यार और खातिर में कमी रह गई थी?

नहीं, नहीं, ऐसा हो नहीं सकता। सुशोभन के लाए कपड़ों से सुविमल के बच्चों का एक साल आराम से निकल जाता था। जिसके पैसों से बेकार भाई सुमोहन के बच्चों का भी गुजारा होता था, उसका अनादर भला कौन करेगा?

पर अगर ऐसा वैसा कुछ हुआ भी है तो क्या तीनों लोक में सुचिन्ना के अलावा सुशोभन को और कहीं जगह नहीं मिली?

सुचिन्ना ने क्या अपने घर में उसे किराएदार बनाकर रखना शुरू कर दिया है?

क्या सुशोभन यहां छुट्टी पर आया था या फिर क्या वह रिटायर हो गया था? पर इन प्रश्न का जवाब कौन देता? सुविमल ने ही कहा—किराया-विराया कुछ नहीं। रह ऐसे ही रहा है।

सुविमल की पत्नी बोली—तो क्या सारे रिश्तेदार गैर हो गए? कौन न कौन सुचिन्ना है—उसके घर पड़े हैं? सुचिन्ना के पति और बच्चे उसे कुछ नहीं कहते?

सुविमल हंसकर बोला—बेटों ने कुछ कहा है या नहीं, यह तो मैं कह नहीं सकता, पर पति बेचारा कैसे कहेगा? वह तो स्वर्गलोक से सिर्फ

टुकुर-टुकुर देख रहा होगा।

—सच ? वह विधवा है ? सुविमल की पत्नी ने थोड़ा दुख प्रकट किया।

बचपन में देवरजी की सुचिन्ता के साथ बड़ी दोस्ती थी न ?

सुविमल एकाएक झल्ला उठा—तुम औरतों की यही तो एक बुरी आदत है। मैं सोच-सोचकर परेशान हूँ कि आखिर हुआ क्या ?

माया बोली—तुम्हें ये सारी बातें बतायी किसने ?

—वो बड़ी लम्बी कहानी है। हमारा ही एक पुराना मुवक्किल सुशोभन को जानता था। उसकी साली का मकान सुचिन्ता के मकान के पास ही है। साली के घर घूमने जाकर देखा कि पिता-पुत्री सुबह सड़क पर टहल रहे हैं।

—उन्होंने ठीक देखा है, इसका क्या सबूत है ? हो सकता है गलत ही देखा हो।

—पागल हो गई हो ? वह आदमी गलती नहीं कर सकता। पक्का आदमी है।

—मान लो, उन्होंने ठीक ही कहा हो। फिर हमारा क्या कर्त्तव्य है ?

सुविमल गंभीर होकर बोला—हमारा क्या कर्तव्य है ? जब वह संबंध ही नहीं रखना चाहता ?

माया की आँखों के आगे वे सारे दिन जाग उठे जब सुशोभन सामान और उपहारों से लदा उतरता था। टैक्सी में परिवार के लोगों को घुमाता था। जितने दिन रहता था, रोजमर्रे की चीजें भी बाजार से स्वयं ही लाता था। उसकी तबियत खराब थी इसलिए पिछले दो तीन सालों से नहीं आ पाया था वह एक अलग बात थी। एक जवान लड़की को लेकर किसी का बाप विदेश में यदि बीमार पड़ जाए तो रिश्तेदारों का भी कोई कर्त्तव्य होता है यह बात किसी के दिमाग में नहीं आयी, पर कामधेनु कलकत्ते में आकर दूसरे के गोशाले में बंधी रहे यह कोई कैसे बर्दाश्त कर सकता था ? बड़ी भाभी माया ने ठान ली कि वह देवर को समझा-बुझाकर यहाँ लाकर अपना कर्त्तव्य पूरा करेगी।

—क्यों क्या हुआ ? माया ने शंकित होकर पूछा।

लड़का गुस्सा कर बोला—होगा क्या ? मंझले चाचा ने मुझे पहचाना तक नहीं।

—पहचाना नहीं ?

—पहचाना तो होगा ही, पर दिखाया ऐसा जैसे किसी अजनबी को देख रहे हों। तुम लोगों की सुचिन्ता, न कौन, तश्तरी भर कर मिठाई लेकर आयी और बोली—अरे तुम सुविमल दा के लड़के हो ? क्या नाम है तुम्हारा ? मैंने भी कुछ खाया नहीं। सीधे चला आया।

—ठीक किया है तूने। पर नीता ? नीता ने क्या कहा ?

—उससे भेंट ही नहीं हुई। वह उसके बेटों के साथ पिक्चर देखने गयी थी।

मायालता भौं सिकोड़ कर बोली—समझ गयी।

▣

—सुचिन्ता ! सुचिन्ता ! भारी भरकम आवाज से पुकारते हुए सुशोभन ऊपर आए। नीता देखकर हैरान हो रही थी। धीरे-धीरे बोलना, हर बात में बेटी पर निर्भर करने वाला वह सुशोभन कहाँ गया। सुचिन्ता को न पाकर चिल्लाकर बोले—सुचिन्ता तुम घर पर हो या नहीं ?

इस बार सुचिन्ता अपने छोटे से कमरे से चश्मे का शीशा साफ़ करती हुई बाहर आयी। सुचिन्ता कुछ बोली नहीं। चुपचाप खड़ी रही, सुशोभन अस्थिर भाव से बोला—हर वक्त कहाँ रहती हो ? बुला-बुलाकर भी पता नहीं चलता। सुशोभन की आवाज में शिकायत थी, अधिकार था।

हर समय कुंठित रहने वाली सुचिन्ता और भी संकुचित हो गयी। वह भी शिकायत भरी आवाज में बोली—अजीब बात करते हो सुशोभन ! मेरा और कोई काम नहीं है क्या ?

—काम ? काम है तुम्हारा ? सुशोभन और भी गुस्सा गया। बोला—काम ! काम ! काम ! काम ही तुम्हारे लिए सबसे बड़ा है। मेरी बात सुनना कुछ नहीं। पहले तुम ऐसी नहीं थी सुचिन्ता !

पहले की बात छिड़ते ही सुचिन्ता घबरा गयी। जल्दी से बात पलट-

फर बोली—काम-काज से निपटकर आराम से बैठकर तुम्हारी बातें सुनूंगी। अब बोलो नीता, तुम्हें इतनी देर कहाँ हुई?

—देर नहीं होगी? सुशोभन शिकायत के साथ बोला—यह क्या तुम्हारे घर के आगे के पार्क में घूमने जाना था? नीता कहती है इस बार कलकत्ते में घूम-घूमकर उसका वजन बढ़ गया है, पर असली बात तो तुम सुनना ही नहीं चाहतीं सुचित्रा!

सुचित्रा धीरे से मुस्कुरायी। इस समय वह मुस्कुरा सकती थी, क्योंकि उनके तीनों बेटों में से एक भी घर पर नहीं था।

आदमी किस तरह से बदल जाता है। पहले घर का वातावरण चाहे जितना ही मौन क्यों न रहा हो, स्नेह के ऊपरी उच्छ्वास की भले ही कमी रही हो, फिर भी लड़कों के घर पर रहने पर सुचित्रा का मन भरा-भरा सा रहता था। पर अब? अब जितनी देर तक लड़के बाहर होते, सुचित्रा उतनी देर निश्चिन्त और स्वाभाविक रहतीं।

उसने हँसकर पूछा—कौन-सी असल बात है, यह मैं कैसे जान सकती हूँ?

—कैसे जानोगी? बड़ी अजीब बात करती हो। कल से तुम भी हम लोगों के साथ घूमने निकलोगी। समझीं? जाना ही पड़ेगा। घर पर केंचुओं की भाँति पड़ी रहोगी, इसका क्या मतलब? कल हम वहाँ जाएँगे, बड़े मजे की जगह है। है न नीता?

सुचित्रा बोली—मुझे अब और मजे की जगह की जरूरत नहीं।

—तुम्हारे कहने से जरूरत नहीं। फिर टेबल पर एक घूँसा मारते हुए सुशोभन बोला—मैं जो कह रहा हूँ वह एक काम है। स्वस्थ आदमियों के लिए भी कभी-कभी मानसिक रोगियों का अस्पताल देखना जरूरी है। समझी कुछ?

—मानसिक अस्पताल?

सुशोभन बोला—हाँ! हाँ! तभी तो कह रहा हूँ। अगर तुम वहाँ गयी तो देखना वे तुम्हें भी रोगी बनना देंगे। है न नीता?

सुचित्रा रहस्य को पूरी तरह नहीं समझीं। बोलीं—मुझे क्यों रोगी समझ लेंगे?

—मजे की बात तो यही है। ठहाका मारकर हँस पड़े सुशोभन।

सुचिन्ता फिर बोली—मैं उन्हें अपने को रोगी समझने का मौका ही क्यों दूंगी ?

—देने की क्या बात है। नीता, सुचिन्ता की बात तो जरा सुन। देने की क्या बात है ? मैंने क्यों दिया ? पागल की बातों का प्रतिवाद नहीं करना चाहिए। कभी नहीं। कभी नहीं। और तो और, ये लोग ऐसे वैसे पागल थोड़े ही होते हैं। पक्के पागल हैं। पर उनकी बातों को सुनकर उन्हें कौन पागल कह सकता है ? हम लोग जैसे ही वहाँ पहुंचे, किसी ने समझा मैं ही एक मानसिक रोगी हूं और फिर वह सज्जन ठहरे डाक्टर। उसके बाद क्या हुआ नीता, तू ही बता दे।

—नहीं पिताजी, आप ही बताइए।

—मैं बता पाऊँगा ? लेकिन तू कह रही है तो ठीक है। तो उस पागल डाक्टर ने मुझे पागल समझ कर मुझसे जिरह शुरू कर दी।

—जिरह ?

— हां, एक किस्म की जिरह ही समझ लो। जैसे गप-शप कर रहा हो, इस तरह से पूछने लगा कि मैं कहां रहता हूं, क्या काम करता हूं, मेरा कोई शौक भी है या नहीं। इसी तरह से। मैं तो कुछ समझ ही नहीं पा रहा था। मैं किताब पढ़ना, सिनेमा देखना, खेल देखना—क्या पसंद करता हूं। मैं फिर भांप गया। मजे लेने के लिए मैंने भी निरीह भाव से सब कुछ ठीक ठीक जवाब दे दिया। मैंने बनावटी डाक्टर को पकड़ लिया था, पर उसे ऐसा समझने नहीं दिया। फिर क्या हुआ नीता ? पता नहीं बीच-बीच में मैं इतना भूल क्यों जाता हूँ। नीति के चलते ही मेरा यह हाल हुआ है।

—मेरे चलते ? नीता ने प्यार से शिकायत की।

—आप स्वयं तो एक बात करते करते दूसरी बात सोचने लगते हैं।

—नीता बात को बहुत पकड़ सकती है सुचिन्ता ! उसने ठीक भांप लिया कि मैं कुछ और सोच रहा था। सोच तो रहा ही था। पर बताओ तो सुचिन्ता मैं क्या सोच रहा था ? सुचिन्ता इस बात को अनसुनी करना चाहती थी, पर अचानक ही सुशोभन सुचिन्ता के दोनों कंधों को पकड़ कर

तरझोर कर बोले—नहीं जानती मैं क्या सोचता हूँ? नहीं जानती? दिल्ली में तो तुम ऐसी नहीं थी। उस समय तो तुम मुझे समझती थी।

—पिताजी आप फिर भूल कर रहे हैं। दिल्ली में तो सिर्फ मैं और आप रहते हैं। बुआ वहाँ नहीं रहती।

—नहीं रहती हैं। तुम कहोगी और मैं मान लूँगा? मेज पर फिर घूँसा मारकर सुशोभन बोले—तू कितना जानती ही है नीता? कुछ दिन पहले तो ही तो तू जन्मी है। तूने जन्म भी नहीं लिया था, तब सुचिन्ता थी। तब कभी हम दोनों कुतुब मीनार चले जाते, कभी फिरोज शाह कोटला। कभी हुमायूँ के मकबरे के आस-पास घूमते। तुम्हें याद है न सुचिन्ता?

सुचिन्ता अचानक ठुड्डी पर हाथ रख कर बोली—हाँ अब सब याद आ रहा है। पहले भूल रही थी।

—याद आया न? और नीता यामख्वा सोचती है पिताजी बूढ़े हो गए हैं। सब कुछ भूल जाते हैं। मैं तुम्हारी कोई भी बात नहीं भूला हूँ सुचिन्ता! नीता क्या कहेगी?

नीता अचानक खिलखिलाकर हँस पड़ी—मैं कैसे कहूँगी पिताजी? मैं तो उस समय जन्मी ही नहीं थी।

—अच्छा सुचिन्ता, बाजार में इतनी बढ़िया साड़ियाँ हैं फिर तुम बिस्तर की चादर कैसे लपेटी हुई हो? मुझे यही बात तब से परेशान कर रही है।

नीता सँभलकर बोली—आजकल रंगीन साड़ियों में बड़ी मिलावट है। एक बार धोबी घाट से आने पर बिस्तर का चादर भर रह जाता है।

—पर दिल्ली से खरीदने में क्या हर्ज है? दिल्ली में कितनी बढ़िया साड़ियाँ हैं।

सुशोभन बोले—सुचिन्ता! तुम्हारे बड़े बेटे की बात तो जरा सुनो।

—ठीक है पिताजी। अब से सुचिन्ता बुआ दिल्ली से ही कपड़े खरीदा करेंगी।

—खरीदेंगी? क्यों? हम लोगों के पास पैसे नहीं हैं? हम नहीं खरीद कर दे सकते हैं?

—हाँ पिताजी आप तो खरीद ही सकते हैं।

—मैं? मैं खरीद सकता हूं। तू यह कह रही है।

—हां पिताजी क्यों नहीं? नीता की आवाज में जोर था। यही तो उनकी चिकित्सा थी।

सुशोभन बोला—तुम देख लेना सुचिन्ता, दिल्ली का रंग कितना पक्का होता है।

—वह तो मैं देख ही रही हूं। सुचिन्ता ने लम्बी सांस ली।

—मैं जरा नहाने जा रही हूं। कहकर नीता चली गयी।

नीता नहाने में देर लगाती थी। अभी साढ़े चार बज रहे थे। थोड़ी ही देर में निरुपम आने वाला था। तब तक अगर नीता नहाकर तैयार होकर यहां नहीं पहुंची तो? निरुपम ने यदि आकर देखा कि सुशोभन और सुचिन्ता बातें कर रहे हैं तो? क्या ठिकाना, हो सकता है ठीक उसी समय सुशोभन सुचिन्ता का कंधा पकड़ कर झकझोर कर कुछ कह उठे तो उस समय सुचिन्ता क्या करेगी? यह सब सोच कर सुचिन्ता को नीता के ऊपर बड़ा गुस्सा आया। नीता जब न तब उसे इस तरह की उलझन में डाल देती थी। पर नीता की अनुपस्थिति में आया हुआ गुस्सा उसे देखते ही ठंडा भी हो जाता था। उसका कोमल, शृंगारहीन निर्मल चेहरा और उसकी पवित्रता मन को छू लेती थी।

सुशोभन की लड़की सुशोभन की तरह ही सीधी और सरल थी।

सुचिन्ता नहीं जानती थी, पर सुचिन्ता का अन्तरतम जानता था कि नीता के पास में नहीं रहने पर उसमें एक भयानक भय समाया रहता है। यह भय क्यों और कैसा था—यह सुचिन्ता नहीं बता सकती थी। वह सिर्फ इतना ही कह सकती थी कि नीता के पास रहने पर उसकी छाती को बल मिलता था। मन में एक निश्चितता सी रहती थी। इस निश्चितता में रुकावट आने पर उसका मन विकल हो उठता था। सुचिन्ता बोली—मैं भी अब उठूंगी।

—तुम भी जा रही हो? सुशोभन ने डांटकर कहा—भई वाह! तो क्या यह मजे की बात मैं मेज और कुर्सी को सुनाऊंगा?

—ठीक है सुनाओ। सुनकर चली जाऊंगी।

—नहीं, तुम नहीं जाओगी। कहानी सुन लेने पर भी नहीं जाओगी।

सुशोभन ने स्पष्ट शब्दों में कहा—तुम्हारे यहाँ और रहने पर मुझे बहुत बुरा लगता है।

—सुचित्रा क्या खतरे का खेल खेल रही थी?

—क्यों?

—अकेली रहने की हिम्मत से?

बोली—सारी जिंदगी तो मैंने दूसरी तरह ही काटी है।

सुशोभन ने आँखें उठाकर सुचित्रा को देखा। फिर बोले—यही एक चीज़ मैं कभी नहीं समझ पाया सुचित्रा! तुम कहती हो तुम [illegible] किसी दूसरी जगह रह रही थी। लोग कहते हैं तुम किसी के यहाँ रहती थी। लेकिन—

—लेकिन क्या? सुचित्रा ने तीखा-सा प्रश्न किया।

—लेकिन मुझे क्यों ऐसा लगता है कि तुम थीं—तुम बहुत-बहुत पहले तक मेरे साथ थीं। तुम्हारे साथ जब मेरी [illegible] हुई—

—आह! सुशोभन!

सुचित्रा कुर्सी छोड़कर उठती हुई बोली—क्या [illegible] की तरह बकते हो?

बोली—तुम्हारे साथ तुम्हारी पत्नी हुआ करती थी।

—मेरी पत्नी? वह कौन है?

—क्यों, जिनके साथ तुम्हारी शादी हुई थी वह। नीता की माँ।

—फिर तुम बेकार की बातें कर रही हो सुचिन्ता। तुम्हारे अल. मेरी और किससे शादी हुई थी? तुम्हारी दादी कहा करती थी—।

सुचिन्ता गंभीर भाव से बोली—तुम कुछ सोच समझ कर बातें वि करो सुशोभन। जो मन में आता है, वही बकने लगते हो। दिनाजपुर मकान में अनुपम के साथ मेरी शादी हुई थी। तुम खूब रोए भी थे। य आया कुछ?

—मैं रोया था? इतना बड़ा बूढ़ा आदमी मैं! मैं रोया? क: मतलब? सुशोभन भौं तानकर बोले—कल के अस्पताल के उस पागल द तरह तुम भी मुझे पागल समझ रही हो सुचिन्ता?

—तुम उस समय भी इतने ही बुड्ढे थे क्या? फिर शांत भाव ं सुचिन्ता बोली—तब तुम मेरे छोटे लड़के की तरह थे। मेरी शादी क बात सुनकर—

—सुचिन्ता! सुचिन्ता! सुशोभन ने कुर्सी छोड़कर एकाएक उठकर सुचिन्ता का कंधा पकड़ लिया। बोले—सब याद आ गया सुचिन्ता। तुम्हारी दादी बोली थी, सुचिन्ता की शादी में तुम्हें खटना पड़ेगा भानु! सकेगा न? मैं गर्दन हिलाकर दौड़कर भाग गया था। विलायती आँवलों के पेड़ के नीचे जाकर छुप गया था। बचपन में हम दोनों वहीं खेला करते थे। बोलो, ठीक कह रहा हूँ न।

क्या सुचिन्ता इस समय बिलकुल भूल चुकी थी कि वह सुशोभन के बिल्कुल सामने सटकर खड़ी थी? भूल चुकी थी कि उसके कंधों पर सुशोभन का भारी हाथ रखा हुआ है? भूल गई थी कि दूसरों की आँखों में अपलक आँखें डालकर देखने की उम्र अब उसकी नहीं है?

सुचिन्ता सचमुच ही भूल गई थी कि निरुपम के कालेज से लौटने का वक्त हो चुका है, इसलिए सांस रोक कर बोली—हां। हां। तुम ठीक कह रहे हो। कहते जाओ सुशोभन।

सुशोभन बोले—मेरे रोने की बात बता रही हो, और तुमने क्या

किया था याद है ? सोच रही हो कि शायद मैं उसे भी भूल चुका हूँ ? बिलकुल नहीं। तुमने रो-रोकर अपना चेहरा सुजा लिया था। रो-धो लेने के बाद मैं तुम्हें तुम्हारे घर तक छोड़ आया था। सुशोभन मुखर्जी कुछ नहीं भूलता। मैंने तुमसे यह भी कहा था—रो-रोकर आँख-मुँह लाल हो गए हैं। घर जाकर क्या बताओगी ?

तुम बोली थीं—घर में कह दूँगी, जुकाम हुआ है।

—बोलो ठीक कह रहा हूँ न ?

सुचित्रा आँखों से इशारा कर बोली—ठीक कह रहे हो। बिलकुल ठीक।

—लेकिन तुम्हारी शादी के दिन मैंने कोई काम नहीं किया था। सुशोभन सहसा हँसकर बोले—तुम्हारी बूढ़ी दादी को खूब ठगा था। कहा था—मुझे बुखार हो गया है। फिर तुम्हारी शादी भी नहीं देख सका था। सिर्फ वह गँवार अनुपम मिश्रा जब तुम्हें लेकर जाने लगा, तब स्टेशन के पास जाकर गाड़ी छूटने तक मैं खड़ा रहा था।

यह सुन कर सुचित्रा का शान्त मन आज उद्वेलित हो उठा। व्याकुल होकर बोली—उसके बाद तुमने क्या किया सुशोभन ? खूब सोच-सोच कर अच्छी तरह बताओ। पिछले सत्ताईस सालों में न जाने मैंने कितनी ही बार सोचा होगा कि उसके बाद तुमने क्या किया।

सुशोभन का भारी हाथ सुचित्रा के कंधों पर से शिथिल होकर गिर पड़ा। वे ढीली-ढाली मुद्रा में कुर्सी पर बैठ गए। बोले—उसके बाद का कुछ याद नहीं आ रहा है सुचित्रा। रेल की आवाज और उसके धुएँ में सब कुछ अस्पष्ट सा होता जा रहा है। हो सकता है मैं वहीं देर तक उस स्टेशन के आस-पास ही घूमता रहा। सुचित्रा तुम्हीं बताओ न, कोई दूसरी ट्रेन पकड़कर मैं भी चल पड़ा था क्या ? मुझे कुछ याद नहीं आता। मैं देख रहा हूँ, अधमैली कमीज पहने, पैरों में चप्पल डाले एक लड़का झट से गाड़ी पर चढ़ बैठा। वह लड़का कौन था सुचित्रा ?

सुचित्रा इसका जवाब नहीं दे पायी। वह नहीं बता सकी कि वह लड़का कौन था। उसने एकाएक देखा कि निरुपम कब से आकर खड़ा था। बोला—क्या हुआ है माँ ?

उसका पूछना स्वाभाविक था।

उसने नीचे से ही सुशोभन का चिल्लाना सुन लिया था।

सुचिन्ता पहले भी कभी ईश्वर को मानती रही थी—उसे खुद भी याद नहीं था, पर आज इस मुहूर्त में उसे लगा ईश्वर नाम की कोई चीज अवश्य है जो किसी भयानक मुश्किल से आदमी को बचा सकती है। यदि ठीक इसी समय सुशोभन अगर अपनी स्मृति खो नहीं बैठता तो क्या होता ?

सुशोभन ने फिर पूछा—वह लड़का कौन था, मैं ठीक से समझ नहीं पा रहा हूँ।

—कौन सा लड़का माँ ? निरुपम ने जिज्ञासु दृष्टि से मां की तरफ देखा।

सुचिन्ता ने दोनों हाथ उल्टा कर निराशा का संकेत किया और सुशोभन से पूछा—आप किस लड़के के लिए कह रहे हैं ?

—तुम नहीं जानती। सर पर सेहरा बांधे अनुपम मित्रा जब अपनी पत्नी के साथ चला गया तो किसी दूसरी गाड़ी में बैठकर जो लड़का चला गया, मैं उसी के बारे में सोच रहा हूं।

कान में अपने पिता अनुपम मित्रा का नाम पड़ते ही निरुपम के मन में रहस्य छा गया। यहां कब की बातें हो रही थीं, किस प्रसंग पर बातें छेड़ी गई थीं।

सुचिन्ता अपने बाल सखा के साथ अतीत पर कैसी चर्चा कर रही थी।

पर वह लड़का कौन था ?

क्या वह मुखर्जी परिवार का सुशोभन मुखर्जी ही था ?

फिर सुशोभन ने निरुपम ही से पूछा—निरुपम ! तुम तो सुचिन्ता के बड़े बेटे हो। पंडित, विद्वान व्यक्ति। कालेज में पढ़ाते हो। तुम्हीं बताओ न ? क्या वह सही है ?

—मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूं। पहले से तो मैंने कुछ सुना नहीं।

—पहले की और कौन-सी बात है ? सिर्फ रोने-धोने की बात हुई है सुचिन्ता, तुम्हारा बड़ा बेटा पहले की बातें सुनना चाहता है। बताऊँ ?

सुचिन्ता गंभीर होकर बैठी रही। बोली—वह सब सुनाने से फायदा

ही क्या है ? निरुपम अभी कुछ नहीं सुनेगा। थका-हारा आया है। अभी नहाकर खाना खाएगा।

लेकिन सुशोभन जब उत्तेजित हो उठते तो कोई तर्क या प्रतिवाद उनके आगे ठहर नहीं पाता था। बोले—जवान आदमी है। थकावट किस बात की ? ओ बड़े बेटे ! तुम्हारी उम्र में मैं तो नहीं थकता था। सिर्फ जब सुचिन्ता मर गई, सब लोग मर गए"'डेस्म। देखो कैसी गलती हो रही है मुझसे। नीता मुझ पर गुस्सा करेगी। सुचिन्ता है। सब लोग हैं।

निरुपम थोड़ा मुस्कुराकर बोला—और आप भी तो अभी जवान ही हैं।

—धत् ! मेरे तो बाल भी पक गए हैं।

—उससे क्या ? मुस्करा कर निरुपम बोला।

पर सुचिन्ता सोच रही थी, यह सब निरुपम किसे कह रहा है। नासमझ एक पागल को या फिर और किसी को ?

सुशोभन बोले—सुचिन्ता सुनो सुनो। तुम्हारे बड़े बेटे की बात तो जरा सुनो।

सुचिन्ता बोली—तब से तुम बड़े बेटे, बड़े बेटे कह रहे हो। क्यों मेरे बेटों के नाम नहीं हैं क्या ?

सुशोभन थोड़ा चुप रहे। फिर बोले—तुम्हारे इतने सारे लड़के हैं। इतने नाम क्या मुझे याद रहते हैं।

—क्या पागलों की तरह बकते हो। धिक्कार कर सुचिन्ता बोली—तीन ही तो बेटे हैं मेरे।

—झूठ मत बोलो सुचिन्ता, मुझे ठगो मत। तुम्हारे ढेर सारे लड़के हैं। मुझे दिखता नहीं है क्या ? घर में इतनी भीड़ रहती है। जब वे लोग नहीं रहते हैं, घर शान्त हो जाता है।

—नीता और कितनी देर है ? सुचिन्ता अपने स्वभाव के विरुद्ध चिल्ला उठी। ताज्जुब है, लड़की क्या कर रही है ?

नीता की आवाज सुनाई पड़ी—आई बुआजी !

सुचिन्ता सोच रही थी—निरुपम अपने कमरे में जा क्यों नहीं रहा है। ये लोग आते-जाते इस तरह से पहले तो कभी कहीं नहीं रुकते थे।

सुचिन्ता बेटे की तरफ ठीक से देख भी नहीं पा रही थी। यह भी नहीं बोल पा रही थी—तुम्हें देर हो रही होगी। जल्दी से नहा लो या हाथ-मुंह धो लो और नाश्ता कर थोड़ी देर आराम कर लो।

नीला ने आकर सुचिन्ता को इस परिस्थिति से छुटकारा दिलाया। नीला नहाकर हमेशा की तरह सादे कपड़े पहन कर आयी और झटपट बोली—क्या हुआ? बुआजी मुझ पर गरम हो रही हैं क्या?

—तुम्हारी जैसी लड़की को तो पकड़ कर पीटना चाहिए। समझी। प्यार से डांट कर सुचिन्ता ने स्वयं ही वातावरण को हल्का कर दिया। बोली—तब से अब तक नहा रही थी तुम?

नीला आह्लाद भरी आवाज में बोली—शाम को नहाने में बड़ा मजा आता है।

निरुपम की तरफ देख कर बोली—सुबह क्या हुआ?

यह पूछने का कारण था।

आज सुबह नीला ने निरुपम को लुम्बिनी जाने के लिए कहा था, पर मानसिक रोग के चिकित्सक ने भीड़ बढ़ाने के लिए मना किया था ताकि मरीज यह नहीं समझ पाए कि उसे मानसिक चिकित्सालय में लाया गया है मरीज को यह समझने देना चाहिए कि वह रोज की तरह घूमने ही निकला है, इसीलिए सुबह निरुपम नीला के साथ नहीं गया था। लेकिन डाक्टर ने क्या कहा, यह जानना भी उसके लिए जरूरी था। इसलिए उसने फिर इशारे से पूछा—सुबह क्या हुआ?

निरुपम को इशारा करते देखकर सुचिन्ता का मन क्रोध से भर उठा। उसके देवोपम निरुपम का यह हाल?

लेकिन नीला तो उसे 'बड़े भैया' कहकर पुकारती थी। नीला को किसी चीज की परवाह नहीं थी।

उसने कहा—बड़े भैया, सुबह क्या हुआ, मालूम है?

निरुपम हंसकर बोला—मुझे कैसे मालूम होगा? सुनाओ तो समझूंगा। दीवार तो बोल नहीं सकती न।

—ठीक है मैं बता देती हूं। लेकिन पिताजी वो मजेदार बात आप ही सुना दीजिए।

सुशोभन नाराजगी के साथ बोले—लेकिन बड़ा लड़का खड़ा जो है। उसके खड़े रहने पर क्या कहानी कही जा सकती है ?

—ठीक ही तो। फिर मैं बैठता हूं। निरुपम बोला।

—बड़े मजे की बात हुई। एक पागल आदमी को सनक सवार हुई कि वह डाक्टर है और मैं मानसिक रोगी। वह मेरे साथ मरीजों जैसी बातें करने लगा मानों मैं कुछ समझ ही नहीं रहा था। उस पागल डाक्टर ने एक असिस्टेंट भी रख रखा है। वह कापी-पेन्सिल लेकर एक कोने में बैठा था। ऐसा दिखा रहा था जैसे हमारी बातचीत को नोट कर रहा है। मैं उन लोगों के साथ इतनी चालाकी से बातें कर रहा था, इसे तो वे पकड़ ही नहीं पाए। कहकर सुशोभन अपने खास अंदाज में हंसते रहे।

निरुपम बोला—वाकई बड़े मजे की बात है।

सुशोभन बोले—कभी-कभी स्वस्थ आदमियों को चाहिए कि वे मानसिक रोगियों को जाकर देखें। समझे बड़े बेटे, मैं सुचिन्ता को यही बता रहा था कि फिर वहां जाएंगे। इस विषय पर मैंने काफी अध्ययन किया है। अस्वाभाविक आदमियों को देखने से ही हमें पता चलता है कि हममें कुछ अस्वाभाविकता है या नहीं। अपने को उसी हिसाब से संभाला जा सकता है।

सुचिन्ता सोच रही थी, दूसरों से बातें करते समय सुशोभन की बातें स्वाभाविक ही रहती हैं ! सिर्फ सुचिन्ता के पास आते ही—।

पर क्यों ?

ऐसा क्यों होता है सुचिन्ता नहीं समझ सकी। इसीलिए सुचिन्ता डरी-डरी सी रहती थी।

नीता निरुपम से बोली—डाक्टर ने कहा, एक दिन देखकर कुछ भी नहीं बताया जा सकता है। ऐसे अनेकों रोगी आते हैं जो लगातार कई-कई दिनों तक स्वाभाविक रहते हैं। फिर एकाएक किसी दिन सब कुछ तोड़-ताड़ कर रख देते हैं। फिर भी डाक्टर बोले—सब लोग मर गए हैं या उन्हें छोड़कर चले गए हैं, यह भावना उनके मन से जा रही है, इसे अच्छा लक्षण समझना चाहिए।

निरुपम बोला—अब वे ऐसा नहीं कहते क्या ?

—खास तरह से नहीं कहते। पहले से हालत बेहतर है। दिल्ली में कैसे दिन कटे हैं, उफ!

—डाक्टर ने फिर कब बुलाया है?

—सप्ताह में दो बार ले आने के लिए कहा है। लेकिन लुम्बिनी में नहीं, उनके चेम्बर में।

—तुम्हारी हालत देखकर दुख होता है। निरुपम बोला।

—हमसे भी कितने लोग बदतर स्थिति में हैं। देखिए न बड़े भैया, पिताजी का और सुचिन्ता बुआ का हाल तो आंखों के सामने है। अपनी हालत के लिए तो मैं भाग्य को जिम्मेदार ठहरा सकती हूं, पर ये? सिर्फ आदमियों की निष्ठुरता, और उदासीनता के कारण दो सुन्दर जीवन किस तरह बर्बाद हो गए? ऐसे न जाने कितने बर्बाद हुए, कितने हो रहे हैं, और कितने आगे भी होंगे।

मां के सम्बन्ध में इस तरह की आलोचना सुनने का आदी न होने पर भी निरुपम चुप रहा।

नीता धीरे-धीरे बोली—हमारे देश में एक अजीब-सी धारणा बनी हुई है बड़े भैया, कि मनुष्य को हर चीज की आवश्यकता सिर्फ अपने यौवन में होती है। पर मुझे लगता है कि अंतरंग साथी की जरूरत बुढ़ापे में ज्यादा पड़ती है। कम उम्र के जीवन में और भी कितने काम होते हैं, कितना हो-हल्ला, कितनी खुशियां, कितनी रौनक। पर उम्र ढलने के साथ साथ जब काम कम होता जाता है, निष्ठुर संसार जब उसे भूलने लगता है तब भी उसे जीना तो पड़ता ही है, पर आदमी अपने आपको उस समय बड़ा अकेला महसूस करता है। लेकिन हम सोचते हैं कि इस दुनिया से उस आदमी को और कुछ भी प्राप्य नहीं है। उसकी और कोई मांग नहीं होगी। पर ऐसा सोचना क्या गलत नहीं है, बड़े भैया? अगर कोई अध्यात्मिक चिंतन में मन का आश्रय ढूंढ़ सकता है तो बहुत अच्छा है। अगर कोई उस संसार को पकड़ कर टिका रहना चाहता है जहां उसे कोई नहीं चाहता, कोई नहीं पूछता, तो वह वैसा ही करे। पर जो लोग इन दोनों रास्तों में से किसी एक पर भी नहीं चल सकते, वे?

—उनके लिए तुम कौन-सी व्यावस्था बताओगी? निरुपम ने शांत

पर व्यंगात्मक ढंग से पूछा।

पर नीता भी झुकने वाली नहीं थी। नम्र भाव से बोली—व्यवस्था करने की हिम्मत मुझमें कहां है? मेरे को तो सिर्फ यही लगता है कि दोस्त की जरूरत मनुष्य को हर उम्र में रहती है। और अकेलापन हर उम्र में कष्टदायक है। बुढ़ापे में तो और भी ज्यादा।

—इतनी देर तक तो एक ही बात बता रही हो। पर बूढ़े लोगों के लिए तुमने इतना सोचा कब? और क्यों सोचा? उनके मन की बात तुम्हारे समझने की चीज तो है नहीं।

—स्वस्थ आदमी ही अस्वस्थ आदमी के लिए सोचता है, बड़े भैया। धनी गरीबों के लिए सोचता है। बड़े, बच्चों के लिए सोचते हैं। नहीं तो सोचने का अर्थ ही क्या है?

—ठीक है। तुम्हारे सिद्धांत पर बाद में सोचकर देखूंगा। कहकर निरुपम ने एक किताब खींच ली।

इतनी सी लड़की की इतनी पकी-पकायी बातें निरुपम को अच्छी नहीं लगती थीं। उसे नीता से थोड़ा स्नेह जरूर हो गया था। जब वह सरल भाव से पास आकर बैठती थी तो अच्छा लगता था। उसका निर्मल मन उस के मन को छू लेता था। उसे लगता था, नीता आम लड़कियों की तरह नहीं है। पर कभी-कभी उसकी ऐसी अजीबो-गरीब बातों पर उसे गुस्सा भी आ जाता था।

निरुपम सोचने लगा—जिसकी उम्र हो चुकी, दुनिया के साथ जिन लोगों का लेन-देन खत्म हो चुका, उन्हें लेकर इतना सर दर्द क्यों? जीवन के आखिरी दिन तक आदमी क्या सिर्फ मांगता ही रहेगा। त्याग के सौंदर्य, त्याग के महत्त्व की कोई कीमत नहीं? बुढ़ापा तो त्याग से ही सुन्दर बनता है। उस समय भी अगर कोई हाथ पसारे मांगता रहे तो इससे अधिक नजर से गिरने लायक और क्या हो सकता था?

रात में नीता चिट्ठी लिख रही थी। बहुत-सी बातों के बाद लिखा—तुम्हारी परिकल्पना व्यर्थ है। इस देश में बूढ़ों के लिए क्लब बनाना एक चोरी करना है। देश का मन बदलने के लिए एक शताब्दी और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इन लोगों के बड़े बेटे ने फिर आंखों के आगे

खुलकर हँस-हँसकर बातें करता और समय-असमय चाय की फरमाइश करता। रात को देर तक संगीत का अड्डा जमता। अब इन्द्रनील डरता नहीं था। उसके मन में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता था। क्या इन्द्रनील समझ गया था कि उसकी इस तरह की उद्दंडता पर भौं सिकोड़ कर डाँटने की हिम्मत इस घर में किसी की नहीं थी।

धीरे-धीरे पिता की सारी आदतें इन्द्रनील में आ रही हैं—यह कह कर सुचिन्ता भी उसे अब धिक्कार नहीं सकती थी। हाँ, इन्द्रनील का स्वभाव उसके पिता अनुपम मित्रा की तरह ही था।

सुचिन्ता को यदि ये आदतें अच्छी न भी लगें तो क्या किया जा सकता था? सभी क्या एक जैसे होते हैं?

सुचिन्ता अपने कमरे में बैठी हैरान होकर सोचती थी कि एकाएक इस घर में इतना परिवर्तन कैसे आ गया?

इन्द्रनील घर के नियमों को इस तरह तोड़े, इतनी हिम्मत उसके मन में किसने जुटायी थी? इतना हंगामा बर्दाश्त करने की शक्ति सुचिन्ता को किसने दी?

क्या नीता इसका कारण थी?

या सुशोभन।

या फिर सुशोभन की मौजूदगी।

सुचिन्ता अनुभव करती थी कि अगर वह भौं सिकोड़ कर उन लोगों की ओर देखेगी तो वे लोग भी पलट कर भौं सिकोड़कर उसे देखेंगे।

अगर सुचिन्ता बोले—मुझे यह सब पसंद नहीं, तो तुरंत वे लोग भी अरुचिकर दृश्य की तरफ इशारा करेंगे।

इसलिए सुचिन्ता भी सब चीज को अनसुनी-अनदेखी कर रही थी।

क्योंकि सुचिन्ता को यह सब सहना पड़ रहा था।

ऐसा लगता मानो सुशोभन ने सुचिन्ता की सारी शक्ति को हर लिया था।

मानो विष और अमृत एक ही बर्तन में उसके सामने रख दिए गए थे।



लाल नवाब की लड़की बातें करते-करते नीचे उतर गई, उसके पीछे-पीछे इन्द्रजीत और नीला भी चले गए।

सुमित्रा को सुनाई पड़ा, इन्द्रजीत कह रहा था—यह खेल नहीं हुआ। हार-जीत का फैसला तो अभी बाकी ही है।

लाल नवाब की लड़की ने क्या कहा, यह सुमित्रा को सुनाई नहीं पड़ा। सुनने लायक उसकी मनःस्थिति भी नहीं थी।

सुमित्रा को लगा, इन्द्रजीत की आवाज़ में अनुराग लिए बोल रहे थे। लाल, सरदार हर तरह का खेल खेला करते थे अनुराग लिए। खेल के बाजी जब जिता देते तब अनुराग बोलते थे—लेकिन आज खेल खत्म नहीं हुआ है। हार-जीत का फैसला अभी बाकी ही है।

और सच में हार-जीत का फैसला बाकी रखकर ही अनुराग लिए इस संसार से चल पड़े। सुमित्रा की हार-जीत का फैसला कब होगा, यह कौन बता सकता था?

लगता था, उसकी हार की ही बारी आती थी।

उसे लगता था अनुराग कहीं से उसे देख कर जरूर हँस रहे होंगे। हाय, इस सुमित्रा के जीवन में अनवरत और अशांत उतार को देखकर व्यंग्य से उनका मुँह विद्रूप हो रहा होगा। आज सुमित्रा अस्वीकार नहीं कर सकती थी कि इतने दिनों का पत्थर जैसा मन आज भी अशांत होना छूटा नहीं था। नहीं तो उस रात जब सुशोभन ने कहा था, कितनी चाँदनी है सुमित्रा! चलो विजयपुर की तरह छत पर चलते हैं। तब सुमित्रा की छाती से लेकर सर और फिर सारी शिराओं में खून छलछला उठा था।



विजयपुर के घर में चाँदनी रात में छत में जाने का आनन्द ही कुछ और था, हालाँकि सुमित्रा और सुशोभन वहाँ अकेले नहीं जाते थे। कभी-कभी सुमित्रा के एक ठाकुरजी आते थे। बड़े शौकीन पुरुष थे। मोतिया के फूलों की माला गले में पहनते थे, जरी के बॉर्डर वाली धोती पहनते थे,

शरीर पर सिल्क की चादर ओढ़ते थे।

गरमी के मौसम में, और खासकर चाँदनी रात में वे सुचिन्ता को चटाई, तकिया आदि छत पर ले जाने का निर्देश देते, फिर घर और मोहल्ले के सभी बच्चों को इकट्ठा करते और मजेदार कहानियाँ सुनाया करते। बच्चे भी उन्हें चारों तरफ से घेरे हुए रहते। फूफाजी गाना गाते और बच्चों से भी गवाते। ताश और शतरंज का खेल भी जमता। फूफाजी के नाम पर भी बच्चे जान छिड़कते थे।

फूफाजी यही कोई पचास साल के रहे होंगे। घर में वे दादी माँ के दामाद लगते थे, इसलिए घर के लोगों को बुरा लगने पर भी वे चुप ही रहते और फूफाजी को कुछ नहीं कहते।

फूफाजी अपनी पत्नी को भी छत पर खींच ले जाते, पर फूलों की सुगन्ध और हवा के मीठे-मीठे झोंकों से वह तुरन्त सो जाती।

सुचिन्ता छत पर आती थी, सुशोभन भी आता था, सुशोभन के भाई सुमोहन और बहनें भी आतीं। लेकिन उससे क्या?

प्रेम क्या है, उस समय किसे मालूम था? अकेले में भेंट करने का सुख चाहता ही कौन था! साथ-साथ बैठ पाना ही जैसे अहोभाग्य था। बैठना भी क्या, बैठ पाने का बस मौका पाना।

फूफाजी के आने पर सभी तन-मन लगाकर छत में हाँफ-हाँफकर पानी छिड़कते। फूफाजी बड़े अच्छे जो थे।

उसी छत पर—

अचानक मोतिया की माला ने एक नया इतिहास रचा।

हो सकता है वह माला फूफाजी के गले की थी, या फालतू ही थी।

उसी माला ने—

सुशोभन बैठा-बैठा अचानक पूछ बैठा—उस रात मोतिया के फूलों की माला वाली घटना तुम्हें याद है सुचिन्ता?

याद आता है। याद आया भी।

याद आते ही तीस साल पहले की रात आँखों के सामने छा गयी। शायद ताजे फूलों की महक से वातावरण सुगन्धित भी हो गया।

लेकिन सुशोभन को क्यों ये बातें याद आ रही थीं।

सुशोभन तो रह-रहकर सब कुछ भूल जाता था।

सुचिन्ता ने भी यही कहा—तुम तो सब कुछ भूल जाते हो। इतनी पुरानी बात तुम्हें याद है?

—याद नहीं थी? याद रहती भी नहीं। सब धूमिल हो गयी थी। पर तुम्हें देखकर सब याद आ गया। यहाँ मोतिया की माला नहीं है?

—वाह! माला किस बात की! यहाँ क्या फूफाजी हैं?

लेकिन हम लोग तो हैं सुचिन्ता!

अचानक लाल होकर जरूरत से अधिक चिल्लाकर सुचिन्ता बोली—नहीं, हम लोग भी नहीं हैं। हम लोग सब मर चुके हैं।



हम लोग क्या मर गए हैं? यह आवाज दर्दभरी नहीं थी। मायालता ने कड़ी आवाज में पूछा, क्योंकि पति सुविमल तो किसी और ही दुनिया में रहते थे। वहाँ से धरती पर उतारने के लिए मायालता को चीखना चिल्लाना पड़ता ही था।

उम्र बढ़ने के साथ सुविमल अब कुछ अधिक ही अनमने से रहते हैं। इसके लिए उनके मुवक्किल ही जिम्मेदार हैं क्योंकि उनके इतने मुवक्किल हैं कि वे केवल उनकी ही सुनते हैं। घर के किसी का कुछ सुनने का समय ही कहाँ—इसीलिए मायालता कभी-कभी दुख के साथ कहती है—अगर मैं तुम्हारी पत्नी न होकर मुवक्किल होती तो मेरा अधिक आदर होता।

सुविमल हँसकर बोलते—तुम ही तो मेरी सबसे बड़ी मुवक्किल हो। तुम्हारे केस को लेकर तो मैंने जीवन काट दिया।

मायालता गुस्से से बोलती—फिर भी तो मुवक्किल की कभी भी जीत नहीं हुई। हमेशा से तो हारती ही आ रही हूँ।

—कितने आश्चर्य की बात करती हो? केस तो अभी खत्म ही नहीं हुआ। जब तक फैसला नहीं सुनाया जाता, तुम कैसे कह सकती हो कि किसकी हार हुई और किसकी जीत?

—मरने के पहले समझूँगी भी नहीं शायद। मायालता बिगड़कर बोलती—तमाम जिन्दगी भूतों की तरह बेगार खटती रही, न तो कभी

शरीर पर एक गहना ही चढ़ा और न कभी तीर्थ-वीर्थ ही कुछ किया। सिर्फ तुम्हारी माँ, बुआ, भाई-भावज, भतीजी-भतीजों की ही खिदमत करती रही। बहुत बड़ी जीत हुई है ना मेरी। जिनके पास तुम्हारी तरह का काम है, जाकर देखो, उनके पास अपनी गाड़ी, अपना मकान सब कुछ है।

मायालता के अफसोस का मूल कारण उसका निखट्टू देवर सुमोहन था।

सुमोहन भी बड़े अजीब किस्म का आदमी था। उसकी अपनी पत्नी थी, बच्चे थे। वह खुद हट्टा-कट्टा था, पर था निकम्मा और बेकार। ऊपर से शौकीन तबीयत का। इस निखट्टू भाई के प्रति यदि सुविमल का इतना प्यार नहीं होता तो मायालता कब का उसे इस गृहस्थी से उखाड़ फेंकती, लेकिन वह मन ही मन पति से डरती थी।

ससुराल में मायालता सिर्फ अपने मंझले देवर सुशोभन को ही थोड़ी अच्छी नजर से देखती। पर सुविमल सुशोभन के प्रति थोड़ा कम ही प्यार दिखाते। क्या पता, शायद छोटा भाई सुशोभन जीवन में अधिक प्रतिष्ठित था इसलिए, या फिर इसलिए क्योंकि सबसे छोटा देवर बिलकुल ही प्रतिष्ठित नहीं था, उसके प्रति सोलह आने प्यार होना थोड़ा स्वाभाविक था।

और शायद यही एक वजह थी कि मायालता सुशोभन को अपनी सम्पत्ति ही समझने लगी थी। सुशोभन की असली हकदार भी पहले ही गुजर गयी थी। पहले जब भी सुशोभन आता, मायालता सारा काम-काज छोड़कर देवर की सुख-सुविधाओं को जुटाने में लग जाती। लेकिन पिछले तीन-चार सालों से सुशोभन आया ही नहीं था।

मायालता शुरू-शुरू में उदास हो जाया करती थी।

लेकिन अब? आज जो उसे दुख मिला था, पहले का दुख उसके आगे बिलकुल तुच्छ था। मायालता सुशोभन के रहस्यमय आचरण का अर्थ ही नहीं समझ सकी।

इसीलिए मायालता ने आज पति के दरबार में आवाज उठायी थी—क्या हम लोग मर गए हैं? नीता क्या हमारी घर की लड़की नहीं है?

मुविमल समझ गया कि अब और चुप रहना उसके लिए मुनासिब नहीं होगा। बोला—हम मर गए हैं, ऐसी बात तो दुश्मन भी नहीं कह सकता। और नीता हमारे घर की लड़की है, यह भी कानूनन सही है। पर तुम्हारी इन दो उक्तियों का मतलब मैं समझा नहीं।

—वह क्यों समझोगे? केवल बातों के ही तो बादशाह हो। सीधी-सादी बात भी क्यों समझोगे? तपोधन गया था सुचिन्ता के घर, अपने चाचा से भेंट करने, पर वहां क्या हुआ कुछ सुना है?

सुविमल गंभीर होकर बोला—सुना है।

—सुना है? फिर भी निश्चिन्त बैठे हो? देवर जी का दिमाग फिर गया है, पर तुम लोगों का तो ठीक है न? इतनी बड़ी बिनब्याही, कुँआरी लड़की को लेकर पता नहीं किस-किस के घर जाकर पड़े हैं। उन लड़कों के साथ हमारे घर की लड़की सिनेमा देखने जाती है और न जाने और भी क्या-क्या करती है? तुम लोग जाकर खबर भी नहीं लोगे?

सुविमल गंभीर होकर बोला—हम खोज-बीन करने वाले कौन हैं? भाई अगर किराए के मकान में जाकर रहे, अपनी लड़की को पूरी-पूरी आजादी दे तो हम क्या?

—हमें क्या? मायालता ने पति की बात को ही दोहराया। तुमने यह इतनी आसानी से कह दिया। नीता क्या तुम्हारे खानदान की लड़की नहीं है? उसकी बदनामी से तुम लोग बदनाम नहीं होंगे? उसकी मां नहीं है। अच्छा-बुरा समझाने के लिए कोई नहीं है।

सुविमल पत्नी की तरफ अन्तर्भेदी दृष्टि डालकर बोले—उसकी मां तो उसकी चार साल की उम्र में नहीं है। पिछले बीस साल में तुम्हारी गोद में बाहर ही रहकर तो वह बड़ी हुई है। अभी तक अगर कोई बदनामी नहीं हुई, तो अब क्यों होगी?

पर मायालता ने अपना तर्क जारी रखा। बोली—परदेस में ऐसा वैसा कुछ करे, लोग देखने नहीं जाते। पर यहां रिश्तेदारों की आंखों के सामने—।

सुविमल गंभीर भाव में ही थोड़ा मुस्कराया और बोला—यह तो ठीक है कि बदनाम करने के लिए लोग मौजूद ही हैं

मायालता नाराज होकर बोली—देखो इस तरह का धिक्कार तुम मुझे जीवन भर देते रहे हो पर मैं उससे घबराती नहीं। मैं तो यही कहना चाहती हूँ कि एक बार मैं खुद वहाँ जाकर सुशोभन देवर को देखकर आऊँगी। उनके ऐसे व्यवहार के कारण को जानकर आऊँगी।

सुविमल नाराजगी के साथ बोला—कारण जानकर तुम्हें कुछ फायदा होगा ?

—फायदे या नुकसान की बात नहीं। आदमी चौबीसों घंटे मुनाफे या घाटे की बात नहीं सोचता। गृहस्थी क्या कोई अदालत है और आदमी कानून की किताब ?

सुविमल बोला—हाँ, बिल्कुल सही फरमाया तुमने। पर आदमी धृष्टता के कारण इसे अस्वीकार करता है।

—अपनी ये ऊँची बातें अपने मुवक्किलों के लिए रहने दो। मैं कल अपनी ही सुचिन्ता के घर जा रही हूँ।

सुविमल अनायास ही बोला—जाओगी तो जाओ। उसके लिए बना-वटी अनुमति माँगने की कोई जरूरत है ?

—अनुमति की क्या बात है ? मैं क्या तुम्हारा राजपाट बेचने जा रही हूं कि मुझे तुम्हारी अनुमति चाहिए। आजकल तो छोटी-छोटी बहुएँ भी पति या ससुर की परवाह नहीं करती, जो जी में आए करती हैं। और मैं अधेड़ उम्र की औरत इस मुहल्ले से उस मुहल्ले में घूमने आऊँगी तो उसके लिए मुझे तुमसे अनुमति लेनी पड़ेगी ? मैं वहाँ जाऊँगी। बस इतना ही कहने के लिए आई थी। सुचिन्ता के घर जाने में मेरे लिए कोई दोष नहीं। वह तो मेरी ननद जैसी ही है, मेरी उससे भेंट करने की भी तो इच्छा हो सकती है। सुना है विधवा हो गई है। एक बार देखने तो जाना ही चाहिए।

सुविमल हँसकर बोला—विधवा होने पर देखने जाना चाहिए, यह मैं नहीं मानता। पर जाना है तो जाओ। इतनी कैफियत क्यों दे रही हो? मैं तुम्हें जाने के लिए मना तो नहीं करता। सिर्फ इतना ही बताना चाहता हूँ कि अगर कोई अस्वाभाविक आचरण करता है तो उसके भी पीछे कोई न कोई कारण होता है, पर उस कारण को ढूंढ़ने की चेष्टा से तुम्हें क्या

फायदा है ?

मायालता पान के डिब्बे से एक पान निकाल कर मुँह मे रखते हुए बोली—पर गृहस्थी मे एक-दूसरे के प्रति गलत भावना भी आ जाती है। कोई अगर गलत समझकर झूठे स्वाभिमान से कही बैठा रहे, तो उसे तो समझाना ही पड़ेगा न ?

सुविमल बोला—यह चेष्टा भी एक गलत चेष्टा है। किसी फल को कच्चा तोड़कर यदि उसे धुएँ से पकाओ तो वह सुपक्व फल नही बनता। आदमी के मन की धारणाएँ भी कुछ इसी तरह की हैं। भूल आखिर भूल है। इसे समझने के लिए मन की धारणाओं को समय के हाथों मे छोड़ देना चाहिए। जब तक स्वाभिमान की तीव्रता कम होकर दृष्टि साफ नही होती तब तक गलतफहमी दूर करने की कोशिश करना ही एक बहुत बड़ी गलती है। सुशोभन या उसकी लड़की को यदि हमारे वर्ताव मे चोट पहुँची है तो जल्दीबाजी से उसमे मरहमपट्टी न करना ही ठीक है। जरूर वे कभी न कभी समझेंगे कि चोट हमने अनजाने मे ही पहुँचाई है। कितनी चोट दूसरो की नासमझी से पहुँचती है, कितनी चोट असावधानी से पहुँचती है, इसे यदि कोई किसी का अपराध मान ले तो मैं उसे बुद्धिमान नही कहता। और सुशोभन को मैं हमेशा अपने से अधिक बुद्धिमान मानता आया हूँ।

—सुशोभन अपनी लड़की के सलाह मशविरे से ऐसा कर रहा है, ऐसा भी तो हो सकता है। मायालता ने कहा—लड़की कोई सीधी-सादी तो है नही। उसने जरूर अपने बाप को समझाया होगा कि इधर आने पर तरह-तरह के फालतू खर्चे हैं, वगैरह-वगैरह।

सुविमल ठहाका लगाकर हँसते हुए बोला—तुमने जब कारण का आविष्कार कर ही लिया है, तो फिर व्यर्थ का परिश्रम क्यो करने जा रही हो ?

—ओह तो तुम्हारी भी यही आशंका है।

—यह आशंका स्वाभाविक है। और नही भी। इसीलिए सच्चे-झूठे का निर्णय मैंने समय के हाथों मे सौंप दिया है।

मायालता नाराज हो गई। बोली—बातों का व्यापार करते-करते सिर्फ बातूनी बन गए हो। तुम्हारी इन सब बातो का मतलब मैं तो नही

समझती। कल मैं जाऊँगी। और तुम मुझे छोड़ने जाओगे।

—मैं! मुझे काट-मार डालो तो भी मैं नहीं जाऊँगा।

—क्यों? तुम मुझे कहीं ले नहीं जा सकते? इतना तुम पर मैं दावा भी नहीं कर सकती?

—क्या मुश्किल है? वकील की पत्नी होने के कारण बात-बात पर अधिकार की बात उठाती हो। तुम तो जानती हो, तुम लोगों को लेकर मुझे कहीं जाने की फुर्सत ही नहीं होती। लड़के बड़े हो गए हैं'''।

—लड़कों ने बड़ा होकर तो मेरा सर ही खरीद लिया है। बड़े होने की सारी सुख-सुविधाएँ तो वे ले लेते हैं, पर उनके आचरण तो बड़ों जैसे नहीं। बड़े होने के साथ-साथ घर-गृहस्थी के प्रति भी कोई कर्त्तव्य होता है, यह इन लोगों ने सीखा है? केवल पढ़ाई-लिखाई ही तो सीखी है। बड़ों की इच्छा की कद्र करना तो नहीं सीखा। असली शिक्षा तो यही है न? दुख में मायालता बिल्कुल शुद्ध बोली बोलती है।

सुविमल कह सकता था कि यह सब सिखाना तो माँ का काम है। और यह माँ को बच्चों को बचपन से ही सिखाना चाहिए। लेकिन वह कुछ बोला नहीं, क्योंकि कहने से कोई फायदा नहीं था। खामखा आँसू की धार बहेगी।

टोकने पर भी कौन अपनी गलती मानता है? सभी तो अपनी मर्जी के माफिक ही चला करते हैं। टोका-टाकी से मतभेद और अशांति के सिवा हाथ कुछ भी नहीं लगता।

बुद्धिमान व्यक्ति कभी दूसरों की गलतियों पर टोका नहीं करते। पानी के नीचे के कीचड़ को छेड़ने से पानी दुबारा गंदा ही बनता है। सुविमल बुद्धिमान व्यक्ति थे। इसलिए जब मायालता बच्चों पर क्षोभ प्रकट करती तो सुविमल उसे यह कहकर नहीं टोकते कि इसके लिए तुम्हीं तो जिम्मेदार हो। तुम्हारी अंधी ममता ने ही बच्चों को तुम्हारे प्रति उद्दंड बनाया है।

सुविमल जैसे सदा से मायालता की बात हँसकर टाल देते, उसी तरह उसने आज भी किया। बोला—क्यों तुम्हारी बात तुम्हारे बच्चे सुना तो करते हैं।

—सुना करते हैं ? खूब कहा। घर-गृहस्थी में क्या हो रहा है, कभी देखने की कोशिश भी की है ? अगर देखते तो आज घर का यह हाल नहीं होता। अगर आँखें कभी खोल कर देखते तो देखते कि मेरी मर्जी से कुछ नहीं होता। मुझे सबकी मर्जी के माफिक चलना पड़ता है। अपने ही भाई और भावज को देखो न—

सुविमल बोला—रहने भी दो। उन लोगों की बात तो यहाँ हो नहीं रही थी।

मायालता अपमानित होकर चुप रह गई। फिर थोड़ी ही देर में संभलकर बोली—उन लोगों की चर्चा कभी भी नहीं होनी चाहिए, यह मैं खूब समझती हूँ। पर जिसकी छाती पर मूँग दला जाता है वही जानता है कि कैसा कष्ट होता है। खैर, बात बच्चों की हो रही थी तो उन्हीं की बात बताऊँ। वे लोग मेरी बात बिलकुल नहीं मानते, इस बात को कहीं दूसरे लोग न भाँप लें इस डर से मैं उन्हीं की मनपसन्द बातें करती हूँ। मैं जब उन लोगों को अच्छा खाने पहनने को कहती हूँ, तुम्हारी नाराजगी के बावजूद खेलने के लिए कहती हूँ, मनोरंजन को कहती हूँ तो वे अवश्य मेरी बात माना करते हैं। पर जब काम की बात कहती हूँ तो क्या कोई सुनता है ? कल ही तुम्हारे बड़े बेटे को सुशोभन देवरजी के पास जाने के लिए कहा था, क्या वह गया ? सीधा जवाब दे दिया—मुझसे नहीं होगा। फिर मैंने तपो को कहा। वह गया तो, पर वहाँ से बिलकुल गरम होकर लौटा है, क्योंकि देवरजी ने उसे पहचाना ही नहीं। क्या वह दुबारा जाएगा ?

सुविमल हँसकर बड़े निश्चित भाव से बोले—यदि वह तुम्हें भी न पहचानें तो ?

—मुझे ? मुझे नहीं पहचानेगा ?

मायालता के चेहरे से अब तक के दुखद भाव एकाएक मिट गए। वह गर्व से हँसकर बोली—मुझे नहीं पहचानने का ढोंग करेगा ? ऐसा करके वह मुझसे नहीं जीत सकता। मैं अपने को पहचनवा कर छोड़ूँगी।

—खैर, यह अहंकार तुम कर भी सकती हो सुविमल बोले।

—तो फिर मुझे देवरजी के यहाँ छोड़ आओगे न ? मायालता समझी कि उसके पति कब्जे में आ गए हैं, पर उसका यह भ्रम जल्दी ही टूट

गया।

सुविमल बोले—यह बात फिर क्यों उठ रही है ? इसका उत्तर तो मैं दे चुका हूँ।

—उत्तर का क्या है ? जो भी बोलोगे क्या पत्थर की लकीर है कि बदल नहीं सकता ?

—क्या बदलना कोई अच्छी बात थोड़े ही है। तुम्हें मालूम नहीं हकीम बदल सकता है पर हुक्म नहीं बदल सकता।

—तुम कोई हकीम तो हो नहीं। मायालता डपटकर बोली।

—पर हकीम के पास रहते-रहते उनके जैसी आदत बन चुकी है।

—ठीक है। मैं अकेली ही चली जाऊँगी।

सुविमल बोले—वाह ! अच्छी बातें करना सीख तो गई हो। यह निर्देश तो मैं तुम्हें कितना पहले दे चुका हूँ।

मायालता अब सचमुच ही नाराज हो गई। कमरे से जाते हुए बोली—हाँ, हाँ, ऐसा निर्देश तो तुम दोगे ही। मेरे चले जाने से कंधे का बोझ जो हल्का हो जाएगा। सिर्फ निर्देश देने से क्या होता है ? जब उम्र थी, शक्ति और साहस था, उस समय यह निर्देश मुँह से निकाला था ? उस समय तो मेरे सर पर से कहीं पल्लू न गिर जाए, इस डर से तुम काँपते रहते थे। बूढ़ी नौकरानी तक मेरी आलोचना करती थी। चिड़िया के पर काटकर अब पिंजड़ा खोल कर चिड़िया को उड़ने के लिए कह रहे हो। अकेली जाऊँगी, पर जाऊँगी कैसे ? रास्ता-वास्ता कुछ जानती पहचानती भी हूँ ?

—कितनी मुश्किल है ? तुम खुद ही तोड़ती हो, खुद ही बनाती हो। इतनी परस्पर विरोधी बातें कैसे करती हो, कोई तालमेल ही नहीं बैठता।

—क्यों बोलती हूँ, तुम जानते नहीं ? आपसी लोगों के बीच विरोध है इसलिए।

इस बार मायालता गुस्से के मारे कमरे से निकल ही गई। मायालता कमजोर दिल की हो सकती है, लालची हो सकती है, पर मायालता की तरफ से भी तो कोई तर्क है।

आदमी को उसका वातावरण तैयार करता है। अपने आपको कितने लोग बना पाते हैं? सबका उपादान तो पत्थर और लोहे का नहीं होता। दुनिया में रेत और मिट्टी ही अधिक है। इसलिए मायालता भी स्वाभिमान से उत्साहहीन नहीं हो जाती।

वह सीधे छोटे देवर सुमोहन के कमरे में पहुँची। हालाँकि इस देवर से उसकी बिल्कुल नहीं बनती, फिर भी कहीं तो कोई बंधन है ही दोनों के बीच। हो सकता है, यह बंधन बहुत साल से बसे हुए घर-गृहस्थी का ही बंधन हो। संस्कार का बंधन हो। चाहे कुछ भी हो, मायालता जानती है, सुमोहन छोटा देवर है और सुमोहन भी जानता है मायालता बड़ी भाभी है।

बड़े और छोटे के बीच जब न तब कलह मच जाती थी, फिर भी दोनों के बीच बातचीत कभी बंद नहीं होती।

सुमोहन बेकार था। मायालता इसका फायदा उठाती थी। चूड़ामणि योग में सुमोहन मायालता को गंगा-स्नान के लिए ले जाने के लिए तैयार हो गया, हालाँकि इस पर अपनी टिप्पणी करना न भूला। बोला—भाभी! भूत के मुँह में यह राम नाम कैसा? हिन्दू रीति-रिवाज का कोई लक्षण तो कभी दिखता नहीं, आज चूड़ामणि पर भाग्य कैसे फिर गया?

तसर की साड़ी बाँधती हुई मायालता बोली—तुम लोगों की गृहस्थी में आकर तो सिर्फ पेट पूजा के लिए अर्घ सजाना सीखा है। देवी-देवताओं के लिए अर्घ कैसे सजाया जाता है, सोचती हूँ, अब सीखूंगी। इसलिए 'योगस्नान' का पहला मौका मिलते ही शरीर शुद्ध कर लेना चाहती हूँ।

सुमोहन चटपट बोला—शरीर तो नलके के पानी से नहाओगी तो भी शुद्ध हो जाएगा। पर मन—साधु लोग जिसे चित्त कहते हैं [illegible] चित्त शुद्धि की चेष्टा की है कभी? थोड़ी बहुत कोशिश [illegible] करो।

उसके बाद दोनों में तर्क का तूफान उठ खड़ा [illegible] उसके बाद ही सुमोहन और मायालता [illegible] गंगा-स्नान के लिए रवाना हो जाते।

आज भी इसका [illegible]
से निराश होकर पति के [illegible]

लेकिन घर तो पुरुष का नहीं होता, घर गृहिणी का होता है।

सुमोहन के घर में भी गृहिणी थी जिसे मायालता बिल्कुल नहीं पसंद करती थी, पर सामने पड़ जाने से छोटी होने पर भी उसका मन श्रद्धा से झुक जाता था।

सुमोहन और उसकी पत्नी, दोनों बिल्कुल ही दो भिन्न चरित्र थे। हालांकि अक्सर ऐसा होता है कि पति-पत्नी का स्वभाव अलग-अलग किस्म का होता ही है, एक-दूसरे का पूरक होता है। लगता है भगवान ने सोच-विचार कर दोनों को आपस में मिलाया है। पर अधिकतर परिवार में विपरीत स्वभाव की जोड़ियों की लीला भी देखने को मिलती है।

सुमोहन और अशोका के स्वभाव में भी जमीन आसमान का फर्क था। मनुष्य प्रकृति में जितने तरह के भाव हैं, उसकी भी कोई श्रेणी या जात होती है—अगर यह सोचकर उस कसौटी पर विचार किया जाए तो उनमें से एक शूद्र था और दूसरा ब्राह्मण।

सुमोहन में आत्मसम्मान नामक कोई चीज ही नहीं थी और अशोका उतनी ही स्वाभिमान सम्पन्न। कई बार तो लगता था उसमें अहंकार ही अहंकार है।

सुमोहन ने जिन्दगी भर कभी कुछ कमाया नहीं। क्यों नहीं कमाया, इसका कारण बताना बड़ा मुश्किल है। सुमोहन अच्छा-खासा पढ़ा-लिखा व्यक्ति था, अच्छी सेहत थी पर काम न करने का कारण उसके अपने ही पास था। उसने साफ-साफ कहा था—वकालत मुझसे होगी नहीं। ला पढ़ना मेरे बस की बात नहीं है, क्योंकि झूठ मुझसे बोला नहीं जाएगा।

सुमोहन, सुशोभन के पिता भी वकील थे, पर मर कर शांति पा गए थे। उनकी मां और बुआ तब भी जीवित थीं।

बुआ गुस्सा कर बोलती—छोटा मुंह बड़ी बात। तेरा बाप जिन्दगी भर वकालत करता रहा। तेरा बड़ा भाई वकालत नहीं कर रहा है क्या?

—कर रहा है, इसीलिए तो जानता हूं। सुमोहन ने बेहिचक ला पढ़ने से इन्कार कर दिया था।

—तो फिर कोई दूसरी नौकरी···

सुमोहन अपने लम्बे बालों वाले सर को हिला कर बोलता—मैं

दूसरे की नौकरी नहीं कर सकता।

—तो फिर मास्टरी ही करो।

सुमोहन हो···हो···कर हँस पड़ता। बोलता—जिसका दिमाग ठिकाने है वह कहीं मास्टरी कर सकता है? मान मद्धे मर कर एक···।

सुविमल भाई को बीच में रोक कर बोलता—दूसरों की नौकरी नहीं करना चाहता है तो न सही, व्यापार ही कर। थोड़ी पूंजी में जो भी व्यापार हो सकता है।

—थोड़ी पूंजी में? सुमोहन हँसकर बोला था—तो फिर स्टेशन के पास पान बीड़ी की दुकान लगाऊँ? उन दिन व्यापार सम्बन्धी कुछ बड़ी-बड़ी बातें अपने बड़े भाई को सुना दी थीं सुमोहन ने। कहा था—अगर कोई लाख दो लाख रुपये लेकर व्यापार शुरू न कर सके तो व्यापार का नाम भी जबान पर नहीं लाना चाहिए। बंगाली लोग तो इसीलिए···।

ये बातें दिनाजपुर के घर में अक्सर हुआ करती थीं। और उसके बाद तो दंगा-फसाद, देश के विभाजन, इन सब झंझटों में न जाने कितने ही सुप्रतिष्ठित लोग बाढ़ के पानी में तिनके की तरह बह गए। इन सबके बीच घर का एक लड़का, वह भी सबसे छोटा, उसने अपना कर्म जीवन शुरू किया या नहीं, या अपने को जीवन में प्रतिष्ठित कर सका या नहीं, कौन देखता?

पर घर के लड़के के नाते समय पर उसकी शादी तो हुई, क्योंकि घर में खाने-पीने का तब तक कोई अभाव नहीं था। उसके बाद तो देश छोड़कर यहाँ आना पड़ा। अब परदेस में आकर क्या सुमोहन काम-काज के लिए घर घर जाकर हाथ फैलाए? यह तो उसके स्वभाव के विपरीत बात थी। इसलिए इन सब झकझोरों में वह पड़ा ही नहीं। उसने अपना जीवन बिताने का ढंग ही अलग किस्म का बना लिया।

रात को सोकर सुबह देर से उठना। बासी मुँह चाय पीकर दाढ़ी बनाना, फिर आराम से नहाना, फिर अखबार का एक-एक अक्षर निगल कर दिन के ग्यारह बजे प्रातः भ्रमण में निकल जाना, घूम-फिर कर घर लौट कर एक ग्लास मिश्री का शरबत या डाब का पानी पीकर थोड़ी देर विश्राम करना, फिर खाना खाना।

रोज जो सब के लिए खाना बनता था, उसके ऊपर भी सुमोहन के लिए एक-दो सब्जी विशेष रूप से बनाई जाती। फिर भी सुमोहन इससे खुश नहीं होता। सब्जी, भाजी पर हमेशा ही टीका-टिप्पणी करता। दो दिन भी यदि एक ही तरह की सब्जी भूल से बन गई, तो आस-पड़ोस के लोगों को बुला-बुला कर इस घर के देवियों की गृहस्थी कितनी बेढंगी थी, इसके किस्से सुनाता।

खाना खाने के बाद दोपहर को जम कर सोकर वह फिर शाम को उठता। दिन बिताने का यही तरीका था।

सुमोहन के दो लड़के थे, पर अपने बच्चों को भी वह 'आ' कहकर अपने पास नहीं बुलाता। कभी बच्चों का जिक्र आता भी तो 'वे अभागे' कहकर उनका सम्बोधन करता।

बच्चे जब छोटे थे तब रात को रोने पर सुमोहन, अशोका को कड़ा हुक्म देता—कमरे से निकाल दो, नहीं तो गला घोंट कर जिंदगी भर के लिए रोना बंद कर दो। मेरी नींद यदि पूरी नहीं हुई तो मुझसे बुरा कोई न होगा।

अब रात में रोने की उम्र दोनों बच्चों में से किसी की नहीं थी, पर दिन भर वे हल्ला जरूर मचाते थे। पर गलती से यदि पिता के कमरे में थोड़ा भी शोर करते तो सुमोहन उन दोनों को धुन देता।

यहाँ इस श्यामपुकुर के मकान में इतने लोग साथ रहते थे, फिर भी सुमोहन के आराम में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं थी।

सुमोहन का मिजाज जब ठीक रहता था, तब वह हँस हँस कर कहता—जो चीनी खाता है, उसे चिंतामणी चीनी जुटा देता है। पर चिंतामणी चीनी की बोरी कंधे पर लाद कर लाता तो नहीं है न। बस रस निचोड़ने की बुद्धि रखनी चाहिए। गन्ने में इतना रस होता है, फिर भी क्या वह अपने आप रस देता है। गन्ने को चूसने का कौशल जानना चाहिए। यह दुनिया भी जैसे गन्ने की खेती है। इसे निचोड़ने के कौशल को प्रयोग में लाना चाहिए। रस हर जगह भरा पड़ा है, पर वह दोस्ती से मिलता है। गन्ने के डंडे से प्रेम, करुणा या उसकी सद्बुद्धि पर भरोसा कर यदि कोई बर्तन लिए बैठा रहे, तो उसे खाली बर्तन ही लेकर लौटना

पड़ेगा। तनने के दम के लिए तो मशीन बनानी ही पड़ेगी।

अशोका यदि आम पाँच लड़कियों की तरह होती, उसके देखते यदि पति को माला कुमारी, तने में पोगी रचा कर या जहर खा कर मरते जाती, तो क्या होता कहना मुश्किल है। पर अशोका बिल्कुल ही और किस्म की लड़की थी। पति के मामले में वह पूरी तरह उदासीन थी। मनमोहन के प्रति उसके मन में मानों कोई लिंगाव ही नहीं था। उसके अपने मन में किसी प्रकार का क्षोभ या विषाद है, इसका अंदाज भी दूसरे लगा नहीं पाते। एक अजीब सी शान्त मुस्कराहट का कवच पहनकर वह घर-गृहस्थी के कामों में जुटी रहती। जिस कवच पर टोकर खाकर माया-लता के तीरों के बाण वापस लौट आते, अशोका अविचल रह जाती। मनमोहन के साथ मायालता की लड़ाई चलती और मायालता अशोका को जहर में घुली हुई बोली भी सुनाती, पर अशोका तो मानों पत्थर की दीवार थी। उस पर किसी बात का कोई असर नहीं होता। जब मायालता खरी-खोटी सुनाती, उस समय भी अशोका हँस कर आकर उससे पूछती—दीदी बच्चों के लिए शाम को क्या नाश्ता बनेगा? या रात के खाने के लिए सब्जी अभी काटकर रख दूँ क्या?

मेहनत का हर काम धीरे-धीरे अशोका के कंधों पर लद गया था। पर न तो अशोका के अपने व्यवहार से और न ही मायालता के व्यवहार से इसका कोई आभास मिलता।

अशोका हर विषय पर इस तरह से पूछती मानों वह प्रशिक्षण ले रही हो। और मायालता थोड़ा सा भी काम इतने हो-हल्ले के साथ करती कि सुनने वालों को लगता मायालता ही काम के बोझ से दबी हुई है।

मन में यदि असंतोष हो तो आदमी बाहर से भी इतना ही असहिष्णु हो जाता है, पर अशोका के मन में किस बात का इतना संतोष था—यह किसी की समझ में नहीं आता।

अशोका को देखकर मायालता सोच में पड़ जाती थी। और जितना ही वह सोचती उतना ही ईर्ष्या से जल-भुन जाती।

अशोका की सहिष्णुता ही मायालता की असहिष्णुता का मूल कारण था।

अस्थिर तथा अव्यवस्थित चित्त का व्यक्ति आत्मस्थ लोगों के प्रति ईर्ष्या किए बिना नहीं रह सकता है। इसीलिए मायालता आजीवन आश्रिता अपने बच्चे से भी छोटी उम्र की छोटी देवरानी से खूब ईर्ष्या करती। आश्रित यदि आश्रित की तरह दीन-हीन भाव से न रहे तो आश्रय देने में सुख ही क्या है? अशोका इस तरह रहती मानों वह अपने जेठ सुविमल की लड़की थी।

सुमोहन और अशोका के दो लड़के थे। उनकी जरूरतें चाहे कितनी ही कम क्यों न हों, पर अशोका निर्विकार भाव से उन्हें अपने जेठ के सामने पेश कर देती।

मायालता सुनाने में कोई कसर नहीं रखती। बोलती—जरूरी बातें मुझसे नहीं की जाएँगी। जेठजी को ही बताई जाएँगी। आगे न जाने और क्या क्या देखना पड़े।

अशोका इन बातों पर कभी कान ही नहीं देती।

फिर भी ताज्जुब तो इस बात का था कि मायालता मन ही मन अशोका से डरती। एक अजीबो-गरीब श्रद्धा से जुड़ा हुआ भय।

इसलिए देवर के कमरे में किसी काम से उसे आना पड़ता तो पहले वह झाँककर देख लेती कि देवरानी है या नहीं।

अगर अशोका नहीं रहती तो मायालता चैन की सांस लेती। आज जब मायालता सुमोहन के कमरे में आई तो अशोका वहाँ नहीं थी। मायालता हल्के मन से कमरे के अन्दर आई, फिर बोली—क्यों देवर जी, एक काम कर सकोगे या तरह-तरह के बहाने बनाओगे?

सुमोहन इस बेवक्त भी बिस्तर पर लेटा-लेटा पैर हिला रहा था। बड़ी भाभी के प्रति सम्मानवश वह अपने पैरों को खींच कर उठकर बैठ गया। पर उस सम्माननीया भाभी की बातें वह ध्यान से सुन रहा था या नहीं, इसमें शक ही था, क्योंकि तकिए के नीचे से चिड़िया का एक पंख निकालकर कान खुजलाते हुए आराम की मुद्रा में बोला—पहले सुनूं तो सही कि काम क्या है? सफेद कोरे कागज पर दस्तखत थोड़े ही दे दूंगा।

—सफेद कागज पर दस्तखत करने के लिए मैं तुम्हें कहने नहीं आई हूं। मायालता लज्जा कर बोली—और काम मेरे मैके का भी नहीं है।

तुम्ही लोगों का काम है।

सुमोहन बोला—ठीक है, पेश करो।

—पेश ! मैं पेश करूँगी ? गुस्सा कर मायालता बोली—बात करते समय यदि जरा ध्यान दो तो अच्छा रहेगा। तुम बात किसके साथ कर रहे हो ? मैं तुम्हारे आगे अर्जी रखूँगी ?

कबूतर का पंख फेंक कर, दोनों हाथों को जोड़कर घुटने टेक कर बैठ कर नाटक की मुद्रा में बोला—गलती माफ हो। कहिए क्या आदेश है ?

—इसीलिए तो मैं तुम लोगों के पास आती नहीं हूँ।

—अरे बाबा हुआ क्या ? झटपट बोलो न ?

मायालता भारी-भारी आवाज में बोली—किसी भयंकर काम के लिए नहीं कहने आई थी। सिर्फ इतना ही कहने आई थी कि मैं मंझले देवरजी से एक बार मिलने जाऊँगी। ले चलोगे ?

—मँझले देवरजी ? सुमोहन विलम्बित लय में बोला—'मिलने जाऊँगी', 'देखने नहीं' इसके माने वह बीमार उमार नहीं है। पर मंझले भैया का भाग्य अचानक इतना खुल कैसे गया, यह समझ में नहीं आ रहा है ?

—इसमें नहीं समझने का क्या है ? तुम लोगों की तो कोई भी बात मेरी तो समझ में ही नहीं आती। मायालता झल्लाई। भाई-भाई, सब एक से थे। सीधी बात का जवाब भी टेढ़ा ही देते थे। उसने फिर पूछा—ले जा सकोगे या नहीं, सीधा सीधा जवाब दो।

सुमोहन धीरे-धीरे बोला—इसमें न सकने का क्या है। ट्रेन में फर्स्ट क्लास में बर्थ रिजर्व करके—।

मायालता ने जब छोटे देवर को डाँट लगाई—नखरे क्यों कर रहे हो ? ट्रन की बात कहाँ से उठ रही है ? मैं तुम्हे दिल्ली चलने के लिए थोड़े ही कह रही है ? तुम्हें क्या यह भी मालूम नहीं कि मझले देवर जी कलकत्ता आकर रह रहे हैं।

—मझले भैया कलकत्ता आए हुए हैं ? ताज्जुब है।

—तुम्हारी बात से तो मेरी हड्डियों में आग लग जाती है। इस बात को लेकर घर में इतनी चर्चा हो रही है और तुम कहना चाहते हो कि

तुम्हारे कानों में कुछ पड़ा ही नहीं ?

सुमोहन पंख से कान खुजलाते हुए आँखें मूँदकर बोला—घ
कितनी बातें होती हैं, यदि सब बातों को कान में डालूं तो घर पर र
मुश्किल हो जाएगा।

—वह तो मैं देख रही हूं। खैर ! हम लोगों को खबर तक किए वि
मझले देवरजी कलकत्ता में आकर रह रहे हैं, यह खबर यदि कान में डा
तो तुम्हारे शरीर में कुछ चुभता नहीं।

—थोड़ी देर चुप भी रहो, भाभी ! मुझे बात को समझने दो। मँ
कलकत्ता में आकर दूसरी जगह ठहरे हैं। यानि रिटायर होकर दिल्ली
सारा घर-बार उठाकर चले आए हैं। लेकिन—यह बात अगर सच है
निस्संदेह ताज्जुब की बात है, पर यह अफवाह उड़ाई किसने ?

—अफवाह ! मायालता उत्तेजित हो उठी। अफवाह उड़ाने का श
चाहे और जिस किसी को भी हो, तुम्हारे बड़े भैया को बिलकुल नहीं
यह तो शायद मानोगे। और फिर इसमें अफवाह की क्या बात है। त
तो जाकर देख भी आया है। तुम कहना चाहते हो कि इन सब बातों
जानकारी तुम्हें है ही नहीं ?

—मुझे सचमुच ही नहीं मालूम और श्रीमान तपोधन ने आकर मु
नहीं बताया होगा, यह शायद तुम मानोगी।

मायालता मुँह बिचकाकर बोली—अहा ! तपोधन ने आकर तु
नहीं बताया, इसीलिए संसार की कोई भी बात जानने का जरिया तुम्ह
पास है ही नहीं ? मर्द आदमी कौनसी बात खुद-ब-खुद समझता है ? जि
बताना है वही बताती है, जिसे समझाना है वही समझाता है।

सुमोहन कौतुक से हँस पड़ा। बोला—किसे ध्यान में रखकर बातें
रही हो ? कहीं छोटी बहू से तो मतलब नहीं है तुम्हारा ?

—तो क्या मुहल्ले वालों की बहू को पकड़ने जाऊँगी। माया
नाराज होकर बोली।—तुम तो ऐसा दिखाते हो देवरजी, जैसे छोटी
से तुम्हारी बातचीत भी नहीं होती ?

सुमोहन बोला—नहीं। बातचीत नहीं होती है, ऐसा तो नहीं
सकता। बात तो है, पर चीत नहीं है।

—किधर जाऊं ? मायालता होंठ उल्टा कर भाभी की मर्यादा भूलकर बोली—अगर एक आध बार पकड़ा न गए होंगे तो [illegible] । और तुम दोनों के नाज-नखरे से तो मैं बाज आ गई ।

मायालता की इस तरह की बोली से उसका देवर पूरी भांति परिचित था, इसलिए वह भी बिना विचलित हुए बोला—तुम किसी भी बात में बाज नहीं आती, भाभी । खैर, फिलहाल बाकी बातों को [illegible] दो । मंझले भैया की बात हो रही थी, वही करो । अभी [illegible] है । [illegible] अगर खुद जाकर देख आता है तो [illegible] हूं । पर भैया दूसरी जगह क्यों ठहरे हैं ? बड़ी बुआ के मकान में क्यों नहीं ?

अब मायालता जोश में आकर बोली—तब तक रहे हो कि तुम्हें कुछ मालूम ही नहीं तो शुरू से ही सुनो । सुचिन्ता को याद कर सकते हो ?

—सुचिन्ता ! सुमोहन हंसकर बोला—सुचिन्ता, [illegible] इन बातों से मैं कोसों दूर हूं । जरा खुलासा कर बताओ ।

—अरे बाबा तुम लोगों के दिनाजपुर के घर के साथ वाले मकान के घोष चाचा थे न ? उन्हीं की लड़की—

—सुचिन्ता ! सुचिन्ता ! हां हां याद आया । सुचिन्ता दीदी, हर वक्त नाचती-फिरती थी, मुझे तो आंखों से ही नहीं दिखती थी । लेकिन जाता तो हर वक्त ईंटें ढोने या फल तोड़ने का काम थमा देती । पर भैया का प्रसंग छोड़कर एकाएक सुचिन्ता की बात कैसे छेड़ दी ?

मायालता रहस्यमय ढंग से हंसकर बोली—ये दो प्रसंग जुड़कर एक प्रसंग बन गए हैं देवरजी ! और फिर मैं यह भी बता रही हूं कि तुम्हारे मझले भैया आजकल सुचिन्ता के ही यहां ठहरे हैं ।

—आई सी ! मामला बड़ा रोचक है ! उसके बाद ?

—उसके बाद क्या ? तुम्हारे बड़े भैया न मालूम कहां से खबर लाए । मैंने तपो को वहां भेजा, पर देवरजी तो तपो को पहचान भी न सके।

—बात इतनी दूर तक पहुंच गई है ? तब तो भाई बड़ी [illegible] बात है । तब तो यही समझना पड़ेगा कि पिछली बार जब [illegible] उसी समय यह साधु संकल्प कर गए थे । और उनके ऐसा [illegible] भी है ।

मायालता थोड़ी पहले की मुस्कराहट छोड़कर गुस्से के मारे तिलमिला उठी। बोली—उनके घर छोड़ने की वजह शायद मैं ही हूं। यही कहना चाहते हो न ?

—वाह रे ! तुम अपने ऊपर क्यों ले रही हो ? वजह तो मैं भी हो सकता हूं। कोई और भी हो सकता है। लेकिन यह तो सच है कि उनको हम सभी लोग एक प्रकार से निचोड़ ही लेते थे।

—बात पलटने की जरूरत नहीं है, देवरजी। किस उद्देश्य से तुमने मुझसे यह कहा है मुझे मालूम है। पर क्या तुम्हारे लड़कों के लिए—। पर एकाएक मायालता ने बात आगे को बढ़ाना मुनासिब नहीं समझा और जम्हाई लेने लगी।

मायालता के ऐसी हरकत करने का कारण यह था कि अचानक वहां अशोका आ पहुंची थी। भगवान ही जानता था कि मायालता अशोका से इतनी क्यों घबराती थी। मायालता ने 'तुम्हारे लड़कों के लिए' इतना ही कहा था कि वहां अशोका आ धमकी। क्या मालूम उसने क्या सोचा होगा। खैर। मायालता ने अपने मन को बांधा। सोचा, 'उसने जो कुछ भी सोचा है, सोचने दो। मुझे फांसी पर थोड़े ही चढ़ाएगी ?'

पर अनगुनी बातों का जवाब देना अशोका शुरू से ही फिजूल समझती थी। मायालया इस बात के लिए भी जलती थी। सुशोभन के पैसों से सुमोहन के बच्चों के पूरे साल के कपड़े-जूतों का खर्च निकलता है, यह बात मायालता कह ही नहीं पाई। अशोका को देखते ही बोली—शाम को क्या बनेगा, यह पूछने आई हो ? एक काम करो, मछली अगर कम है तो शाम के लिए रखने की जरूरत नहीं। [illegible] के लिए एक दर्जन अंडे मंगवा लेना।

अशोका 'अच्छा' कहकर जाने लगी तो सुमोहन ने उससे पूछा—घर में जो कुछ घटता है, जो अफवाहें उड़ती हैं, मुझे क्यों नहीं सुनाई जातीं ?

सुमोहन के चेहरे पर कोई उत्सुकता नहीं थी, सिर्फ एक प्रश्न था। थोड़े गंभीर भाव से वह फिर बोला—मंझले भैया को लेकर घर में तरह तरह की बातें हुई हैं, मुझे क्यों कुछ नहीं मालूम ? मुझे सूचित करना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है ?

अशोका हँसी भी नहीं। नाराज भी नहीं हुई! उसने कोई प्रतिवाद भी नहीं किया। सीधे ढंग से बोली—अच्छी तरह से मुझे भी कुछ नहीं मालूम।

—सुना भाभी! सुशोभन ने मायालता के सामने अपना आक्रोश प्रकट किया।

—सुना क्यों नहीं? मायालता बोली—आजीवन यही देखती-सुनती तो आ रही हूं। पर कल सुबह-सुबह ही निकल जाऊंगी।

—अच्छी बात है। तुम जाकर सुचित्रा का अता-पता ले आओ।

मायालता बोली—वही तुम्हें सब कुछ समझा देगा। मायालता कमरे से डरी-डरी निकली कि कहीं सामने अशोका न दिख जाए। मायालता अन्दर-ही-अन्दर डरती थी, इसीलिए उसकी बोली भी इतनी धीमी थी।

□

सुबह-सुबह पिता को साथ लेकर घूमना नीता का रोज का नियम-सा था। आज भी घूमते-घूमते वह ऐसी जगह पहुंच गई थी जहां कारपोरेशन की योजना के मुताबिक बस्ती गिराई जा रही थी। नजदीक पहुंचकर सुशोभन व्याकुल होकर बोला—देख, देख नीता! वे मकान-दुकान सब तोड़-ताड़कर खत्म कर रहे हैं।

पिता की साधारण बातचीत के प्रति आकर्षित करते हुए नीता बोली—अच्छा ही तो कर रहे हैं, पिताजी।

—अच्छा कर रहे हैं? सुशोभन उत्तेजित होकर बोले—तू क्या बोल रही है नीता? गरीबों को बेघर किया जा रहा है, यह कोई अच्छी बात है?

—अच्छी बात हो भी तो सकती है पिताजी! तोड़ना ही तो अन्तिम बात नहीं। हो सकता है, इन्हें तोड़कर उन लोगों के लिए नए घर बनाए जाएं। अगर तोड़कर खत्म न किया जाए, तो नया कुछ कैसे बन सकता है? फिर तो आदमी गड़े हुए खूंटे से बंधा रह जाएगा।

थोड़ी दूर पर कुछ लोग आपस में बातचीत कर रहे थे। पास ही गरीबों की दीन-हीन गृहस्थी की चीजें पड़ी हुई थीं। माने साफ था।

मालिक को घर से बेघर करने की ही योजना थी। बेघर को घर देने की नहीं। सुशोभन उत्तेजित होकर उस तरफ उंगली से इशारा करते हुए बोले—नीता, तू तो बोल रही थी कि नए घर बनाए जाएंगे। तो फिर नए घर पहले बनाकर, फिर बस्ती क्यों नहीं तोड़ी जाती ? ये बेचारे अब कहां जाएंगे ?

अपनी बात छोड़कर, पिता को दूसरी दुनियां की बातें सोचते देखकर नीता के मन में बड़ी आशा बँधी। नीता को लगा, सुशोभन बुद्धि की दुनिया में लौट रहे हैं। वे परिचित दुनिया में किस हद तक लौट रहे थे, नीता ऐसी बातचीत के माध्यम से परखना चाहती थी। वह बोली—पिताजी, ये कहीं न कहीं तो रहेंगे ही।

—आजकल तू कितनी निष्ठुर हो गई है, नीता। 'कहीं न कहीं रहेंगे', इसलिए निश्चिन्त बैठने से कहीं काम चलता है ? क्या यह देखना उचित नहीं होगा कि इन्हें कहां जगह मिली, मिली है या नहीं, मिली तो कैसी मिली !

—इसे हम लोग कैसे देख सकते हैं, पिताजी ?

—क्यों नहीं देख सकते ? सुशोभन चिल्ला पड़े—गरीबों को हम नहीं देखेंगे तो और कौन देखेगा ? वे बेघर-बार सड़क पर घूमते रहेंगे और हम महलों में आराम करेंगे ? मैं जानना चाहता हूँ कि इनके घरों को तोड़ने का हुक्म किसने दिया है ?

सुशोभन की चिल्लाहट सुनकर लोग-बाग इधर-उधर से देखने लगे।

नीता घबरा कर बोली—कितनी मुश्किल है ! यह सब तो कार-पोरेशन की स्कीम के मुताबिक ही हो रहा है। इतना गन्दा माहौल, बीमारी का वातावरण—इन सब की उन्नति तो होनी ही चाहिए।

—तुम कह रही हो, उन्नति होगी ?

सुशोभन थोड़ा नरम पड़ गए। ठंडी बुझी-सी आवाज में बोले—यहां नयी बस्ती बन जाएगी तो क्या उन नए घरों में उन लोगों को बसाया जाएगा जिनको यहां से उजाड़ा गया है ?

नीता ढांढस बंधाती हुई बोली—हो सकता है, ठीक उन्हीं लोगों को न मिले, पर कोई-न-कोई तो आएगा ही। और इन्हें भी कहीं-न-कहीं

फुलाऊंगी। सोच रही हूं।—

—सोच रही हो? गरीबों की बात सोच रही हो?

—हां, पिताजी सोचती तो हूं।

—तो फिर उन्हें बर्बाद होने से बचा लो।

नीता चिन्ताशील मुद्रा में बोली—इसके लिए तो सभी को मिलकर कोशिश करनी पड़ेगी। पर गरीबों के बिना पैसे वालों का गुजारा भी तो नहीं। उनके बिना पैसे वालों के बर्तन कौन मांजेगा? कपड़े कौन धोएगा? जूते कौन साफ करेगा? बोझ कौन उठाएगा? रिक्शा कौन खींचेगा? पैसे वाले अपने ही स्वार्थ से इन गरीबों को टिका रखेंगे।

—तुम्हें यह सब किसने बताया? सुशोभन डांटकर बोले—तुम कुछ नहीं जानती हो। अभी तुम्हें बहुत दुनिया देखनी है। गरीब नहीं रहेंगे। मिट जाएंगे। समुद्र के पानी में नहीं तो बम से उन्हें खत्म कर दिया जाएगा। मशीन के जरिए उनका नाश कर दिया जाएगा।

—मशीन?

—और नहीं तो क्या? विज्ञान तो इसकी साधना में जुटा ही है। बड़े लोग अपना हर काम मशीन के जरिए पूरा कर लेंगे और गरीबों को मार डालेंगे।

नीता ने अनुभव किया कि बहुत सारे लोग उनकी तरफ घूर रहे थे। उसने सोचा, अब यहां से चलना चाहिए। पर सोच में डूबे हुए सुशोभन के मन को दूसरी तरफ खींचने का उसका मन नहीं कर रहा था। उसने सोचा, देखूं पिताजी, और कितना बोल सकते हैं।

नीता बड़े नरम स्वर में बोली—नहीं पिताजी, इस दुनिया में अधिक तो गरीब ही हैं। कितनों को मारेंगे?

—करोड़ों की तादाद में मारेंगे। दुनिया की अधिक से अधिक जमीन को अपने कब्जे में कर दुनिया में पैसे वाले और मशीनें, यही दो रह जायेंगे। आम आदमी का नाम कुछ नहीं रहेगा।

नीता पिताजी का हाथ पकड़कर बोली—नहीं पिताजी, उस समय तो गरीब भी पैसे वाले बन जाएंगे।

—नहीं नीता! तू मुझे गलत बात समझाने की कोशिश मत कर।

—चलिए पिताजी। हम घर पहुँच कर इस प्रश्न पर फिर से विचार करेंगे।

—क्यों? घर जाकर? यहीं पर फैसला हो जाएगा। बुला बस्ती के किसी आदमी को बुला। उनका कहना उन्हीं के मुँह से सुन।

—वे लोग क्या कहेंगे पिताजी? नीता ने विस्मय से पूछा।

—क्यों नहीं? उनकी बात उनसे अच्छा दूसरा कौन बता सकता है? मरते दम तक क्या वे पड़े-पड़े मार खाएंगे?

—ऐसा तो मैं भी नहीं कहती पिताजी! वे भी चुप नहीं रहेंगे। पड़े-पड़े मार नहीं खायेंगे। उनमें एकता नहीं है, इसलिए तो उनकी उन्नति नहीं होती। सब इकट्ठे होकर एक आवाज से बोलना नहीं जानते कि हमें घर चाहिए, खाना चाहिए, कपड़े चाहिए। वे बस बुदबुदा कर कहते हैं, हमें घर चाहिए, कपड़ा और खाना चाहिए। सोचते है, हमारा लड़का नाम कमाए, आदमी बने, पर मेरे भाई का लड़का मूर्ख और बेकार होकर घूमता फिरे। इसी में तो मजा है। वे देश के लिए नहीं सोचते हैं। यह भी नहीं सोचते कि एक के क्षोभ की आग सारे देश को जला डालेगी। क्षोभ पर काबू रख कर सभी अगर एक साथ सर उठाकर चिल्ला सकें तो उन्हें कोई नहीं मारेगा।

नीता क्या भूल गई थी सुशोभन बीमार थे। उनकी मानसिक स्थिति असन्तुलित थी, नासमझ बन गये थे। अब तक जो कुछ कहा है उसे वे दूसरे ही क्षण भूल जाएगें। नीता का तो काम ही है, हर क्षण पिता को संभाल कर ही चलना, इसीलिए विह्वल होकर नीता इतना कुछ बोल गई थी।

पर सुशोभन क्या सचमुच ही अच्छे हो गए? उनकी खोई हुई बुद्धि वापस आ गई?

शिकायत भरी आवाज में सुशोभन बोले—उनकी गलती पकड़ने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है नीता। वे लोग इतनी बात क्यों सोचने जाएंगे। उन्हें तो कब में इन सब बातों की शिक्षा दी जा रही है। उनकी बुद्धि अन्धकार में है और तुम्हारे तथाकथित बड़े लोग, पंडित लोग उच्च शिक्षा के अहंकार से लद कर देश का तो अमंगल ही कर रहे हैं।

वे यह नहीं समझ रहे हैं कि जब आग लगेगी, तो उनका घर भी नहीं बचेगा।

सूरज सर पर उठ आया था।

नीता ने अपने पिता को और उत्तेजित करना ठीक नहीं समझा। उसने सोचा, घर लौटते ही वह पिता की ये बातें लिख लेगी। और फिर डाक्टर को जाकर दिखाएगी। डाक्टर को इससे जरूर कोई नई दिशा मिलेगी।

नीता बोली—आपने ठीक ही कहा पिताजी! बड़े लोगों को उनके किए का दंड जरूर मिलना चाहिए। उन्हें यह समझा देना चाहिए कि यह दुनिया उनकी अकेली की नहीं है।

—अब तू ठीक रास्ते पर आई है। तेरी बुद्धि भी काम कर रही है। अब तक तो मुझे लग रहा था कि सुचिन्ता के ढेर सारे लड़कों के साथ मिलकर तू भी अपनी बुद्धि खो बैठी है। बेवकूफ बन गई है। अब एक काम कर। बस्ती में से किसी एक को बुला ला। जरा पूछूं तो सही कि वे लोग कहां जाएंगे?

नीता व्यस्तता का दिखावा कर बोली—अच्छा पिताजी, फिर कभी बुलाऊंगी। आज बहुत देर हो गई है। धूप कितनी तेज हो गई है।

—होने दो। उन्हें बुलाओ।

—नहीं पिताजी, किसी और दिन।

—क्यों, किसी और दिन क्यों? आज ही क्यों नहीं? सुशोभन ने जिद ठान ली। खुद ही पुकारा—अरे सुन रहे हो! जरा इधर तो आना।

बाप-बेटी की बातचीत पर लोगों की नजर काफी देर से थी। वे समझ भी गए थे कि वे लोग बस्ती और बस्ती के लोगों पर ही चर्चा कर रहे थे।

सुशोभन के पुकारते ही एक बूढ़ा-सा आदमी आगे आया।

पिता के कुछ पूछने के पहले ही नीता बोली—एक बात बताइए। सब तोड़-फोड़ क्या कारपोरेशन की तरफ से हो रही है?

उस बूढ़े ने अवहेलना से कहा—यह तो मेरा दुश्मन और कारपोरेशन

ही जानता है।

सुशोभन भारी आवाज में बोले—क्यों तुम लोग नहीं जानते ?

—नहीं। जानने की जरूरत भी क्या है ! हम तो अब यहां रह नहीं सकते। हमें तो कुत्ते-बिल्ली की तरह दुत्कार कर भगाया जा रहा है। हम तो इतना ही जानते हैं। बस !

—इसके बाद कहां जाकर रहोगे ? यह नहीं जानना चाहते ?

—क्या जरूरत है बाबू ? असली बात तो जानते ही है कि जब तक आयु है, हमें कोई जान से मार नहीं सकता, और आयु जब खत्म हो जाएगी, कोई हमें बचा नहीं सकता। बीच में जो कुछ भी हो रहा है, होता रहे।

सुशोभन एकाएक गरज उठे। बोले—नहीं, ऐसा नहीं होगा। यह मजाक यहां नहीं चलेगा। तुम लोगों को कहना पड़ेगा कि पहले हमें घर दो, फिर हमारा घर तोड़ो। नहीं तो…।

सुशोभन की बात खत्म होने से पहले ही वह आदमी ही ' ही…कर हंस पड़ा। बोला—रोज तो देखता हूं कि बाबू साहब बनकर हवा खाने को निकलते हैं। गाड़ी पर सवार होकर घूमने निकलते हैं। फिर एकाएक आज गरीबों के लिए इतनी हमदर्दी क्यों ? आने वाले चुनाव में खड़े हो रहे हैं क्या ?

नीता का चेहरा लाल हो उठा। सुशोभन भी सहम गए। असहाय होकर नीता का हाथ पकड़कर बोले—यह क्या कह रहा है नीता ?

—कुछ नहीं पिताजी। आप घर चलिए।

—चल। घर ही चलते हैं। सुशोभन डर कर बोले। यह आदमी मुझ पर नाराज हो गया है।

सुशोभन नीता का हाथ पकड़ कर जल्दी-जल्दी चलने लगे। पीछे से लोगों की हंसी और बुरे-बुरे शब्दों में उनके ताने सुनाई पड़ने लगे। उनकी हंसी सुन कर यह विश्वास करना कठिन था कि वे क्षण-भर बेघर-बार होने जा रहे हैं। उनके संजोए हुए घर तोड़े जा रहे हैं, और यह वे अपनी आंखों से देख कर भी सह रहे हैं, विश्वास नहीं होता था।

किसी साहब पर वे ताने कस सके थे, वे इसी से खुश थे।

जाकर सुशोभन धीरे-धीरे चलने लगे। बोले—वे लोग हमारा पीछा तो नहीं कर रहे हैं नीता?

—नहीं पिताजी।

—ठीक से देख रही हो न?

—नहीं कर रहे हैं, पिताजी।

—उफ! जान में जान आई। थोड़ी देर और रुकते तो वे लोग हमें पकड़ ही लेते।

नीता का मन एक क्षण में निराशा में डूब गया। थोड़ी देर पहले ही उसे उम्मीद बँधी थी कि पिताजी ठीक हो रहे हैं, पर यह क्या?

सुशोभन बोले—वह आदमी उस तरह हँस क्यों रहा था नीता?

—क्यों हँसा? नीता बेहिचक बोली—वह आदमी पागल है पिताजी।

—पागल है। तभी तो। तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया।

सुशोभन ठहाका मार कर हँस कर बोले—मैं उन्हें अच्छी बात समझाने गया, और वे मेरा ही मजाक उड़ाने लगे। पागल! आई सी। दुनिया में न मालूम कितनी तरह के पागल हैं।

—सो तो है ही पिताजी। चलिए, घर चलते हैं।

—पर नीता उस आदमी के साथ-साथ और भी तो लोग हँस रहे थे।

—हँसेंगे क्यों नहीं? नीता जोर देकर बोली—पागल के पागलपन पर हँस रहे थे।

—ओह! पर ताज्जुब की बात देख, यहाँ तो कोई नहीं है फिर भी मुझे हँसी की आवाज सुनाई पड़ रही है।

—यह तो मन का भ्रम है। चलिए पिताजी! कितनी देर हो रही है। सुचिन्ता बुआ कब से आपके लिए फल-वल लेकर बैठी हुई होंगी।

—बैठी होंगी? सुशोभन व्याकुल भाव से बोले—सुचिन्ता बैठी होंगी और तुमने मुझे बताया तक नहीं।

—बता तो रही हूँ।

—पहले बताना चाहिए था।

सुशोभन असन्तुष्ट हो गए। बोले—इतनी देर से बना रही हो। ठीक है, मुझे क्या? मैं भी सुचिन्ता से बोल दूंगा कि गलती तुम्हारी है। मैं कह दूंगा कि नीता ने मुझे एक पागल के पल्ले बांध दिया था।

नीता सहमी-सहमी सी बोली—बुआ को नहीं बताइएगा पिताजी नहीं तो वो मुझे खा जाएंगी।

—खा जाएंगी? तुम्हें? कितनी गन्दी बात करती हो? सुचिन्ता तुम्हें पीटेगी तो मैं क्या उसे छोड़ दूंगा। पर नीता, सुचिन्ता तो ऐसी नहीं है। तुम्हें तो वह बहुत प्यार करती है।

—मैं तो मजाक कर रही थी पिताजी! आप इसे सच मान बैठे?

—मजाक? तुम मेरे साथ मजाक कर रही थी? यह तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया? इधर मैं सुचिन्ता पर गुस्सा कर रहा हूं। यही तो मैं सोच रहा था कि सुचिन्ता ऐसी कैसी बन गई?

—हां पिताजी! बुआ बड़ी अच्छी हैं। घर जाकर सारे फल खा लीजिएगा तो बुआ बड़ी खुश होंगी।

—खुश होंगी? सच कह रही है?

—बिल्कुल सच कह रही हूँ, पिताजी।

ऐसी बातों से नीता कभी-कभी हिम्मत हार जाती थी। वह आखिर कब तक इस प्रकार का अभिनय कर सकती थी? बीच में उसे थोड़ी उम्मीद बंधती, पर फिर सारी उम्मीदों पर पानी फिर जाता। तो क्या अब नीता हार मान जाए? नहीं, कम से कम सागर के लौट जाने के पहले नहीं। रेत में अटके जहाज को फिर से चलाया जा सकता था, या नहीं, यह नीता अन्त तक देखना चाहती थी।

सागर! सागर! सागर!

आज ही रात को वह सागर को एक चिट्ठी लिखेगी।

घर के नजदीक आते ही सुशोभन ने पूछा—उस समय तू क्या बोल रही थी नीता? क्या करने से सुचिन्ता बड़ी खुश होगी? मुझे तो याद नहीं आ रहा है।

पर क्या नीता को ही कुछ याद था? वह कुछ बात बना कर बोलने ही जा रही थी कि तब तक वे लोग घर के दरवाजे तक पहुंच गए। दरवाजे

पर सुचिन्ता चिन्तित-सी खड़ी थी। इस चेहरे पर जल्दी मुस्कराहट खिलेगी, इसकी वैसे भी उम्मीद कम ही थी। इन लोगों के आते ही सुचिन्ता नाराजगी के साथ बोली—अब तक कहां घूम रही थी नीता ? तुम्हारे चाचा और तुम्हारी ताई आकर बैठे हैं।

—चाचा और ताई ?

नीता के चरण-स्पर्श करते ही मायालता भारी-सा चेहरा बना कर बोली—मैं कब से आकर बैठी हुई हूं। सुबह इतनी देर तक घूमना तुम लोगों का नियम है क्या ?

कैसा नियम ? नीता आशंका भरी दृष्टि से एक बार सीढ़ियों की तरफ देखा फिर बोली—घूमते-घूमते जिस दिन जैसा होता है।

सुशोभन धीरे-धीरे आ रहे थे। वह सोची, उनके पहुँचने से पहले ही ताई से कुछ प्रारंभिक बातें हो जाएं तो अच्छा है।

—ओह ! घूमने की सुविधा के लिए ही इधर रह रही हो क्या ? मायालता ओंठ दबा कर बोली।

नीता कुंठा छोड़कर बोली—आपने ठीक समझा है। सच बात यही है। पिछले कुछ दिनों से पिताजी की तबीयत ठीक नहीं चल रही थी···।

—इसीलिए पिताजी को चेंज के लिए यहां लाई हो ? मायालता क्रूर सी हँसी हँसकर बोली—चेंज में आने के लिए अच्छी जगह तुमने चुनी है। दिल्ली के लोग हवा बदलने के लिए यहां इस जगह ? लेकिन एक बार खबर करती तो कुछ बिगड़ता नहीं। तुम्हारी धन सम्पत्ति पर कौन-सी लूट मचती ?

—यह आप क्या कह रही हैं ताई ? नीता लाल हो उठी। बोली—बंगाल की ठंडी आबोहवा में थोड़ा एकान्त पिताजी के लिए लाभकारी होगा, यह जानकर ही···। कहते-कहते नीता चुप हो गई। वह समझ नहीं पाई कि ताई कितना जानती थी, कितना नहीं। क्या पता वह कितनी देर से आई हुई थी। सुचिन्ता बुआ से बातें कर रही होंगी। सुचिन्ता ने उन्हें क्या बता दिया होगा कि सुशोभन पागल बन चुके हैं। नीता को लगा, सुचिन्ता ने ऐसा नहीं किया होगा। अगर कहती तो मायालता इतना रुद्र रूप किए नहीं बैठी रहतीं। क्या थोड़ा उदार या नरम नहीं पड़तीं ?

ताज्जुब है ! आज तक तो वह मायालता के मीठे व्यवहार से ही परि-चित थी । आज ऐसा भयंकर रूप क्यों ? छोटे चाचा भी आए थे । पर वे थे कहां ? नीता ने इधर-उधर नजर दौड़ाई । निरंजन के कमरे से बातचीत की आवाज आ रही थी । शायद वहीं जम गए होंगे ।

मायालता कुछ बोलने जा रही थी कि चुप हो गई । सुशोभन रुक-रुक कर सीढ़ी से उठ कर विमूढ़ से खड़े थे ।

उनके पीछे सुचिन्ता थी ।

उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं था । लगता था सुचिन्ता ने अपने को संभाल लिया था । अपने आप में सिमट गई थी ।

मायालता क्या अंधी थी ?

सुशोभन की उस विह्वल दृष्टि को भी वह नहीं समझ सकी । मायालता झंकार के साथ बोली—क्यों मंझले देवरजी, आप शायद मुझे भी नहीं पहचान पा रहे होंगे ?

सुशोभन उसी विह्वल दृष्टि से देखते हुए बोले—पहचान ! पहचान तो नहीं पा रहा हूं ।

एकाएक मायालता ने अपना सुर बदल दिया । विगलित भाव से बोली—मुझे तुम चालाकी से नहीं लौटा सकते, देवरजी । मैं क्या चीज हूं, जानते ही होंगे । तुम्हें ले जाकर ही चैन की सांस लूंगी । सुचिन्ता, तुम बुरा मत मानना भाई । पर साथ में यह भी जरूर कहूंगी कि अपनों का घर रहते हुए पराए घर में रहने से लोग क्या कहेंगे, यह तुम्हें भी एक बार सोचना चाहिए था । और नीता…।

—ताई ! नीता ने प्रतिवाद की आवाज उठाई ।

पर मायालता ने उस पर ध्यान नहीं दिया । ऊंची आवाज में पुकारा —अरे ओ छोटे देवरजी ! आकर देखो, तुम्हारे मंझले भैया मुझे पहचान नहीं रहे हैं । यह किस नई विद्या का अभ्यास कर रहे हो, मंझले देवरजी ? या किसी ने कोई जड़ी-बूटी छुलाकर या सुंघाकर तुम्हें जड़ पदार्थ तो नहीं बना दिया ?

सुचिन्ता तो मानो पत्थर की मूर्ति बन गई थी ।

नीता का भी यही हाल था ।

मायालता की हँसी सुनकर सुमोहन बाबू निकल आया और बोला—बात क्या है ?

पर बात दूसरों को समझाने की जरूरत नहीं। सुशोभन एकाएक बच्चों की तरह खुशी से उछल पड़े। बोले—नीता, नीता, देख मेरा वह छोटा भाई।

नीता ने आगे बढ़ कर चाचा को प्रणाम किया और शान्त, निर्लिप्त भाव से पिता से बोली—छोटा भाई क्यों कह रहे हैं पिताजी ? नाम लेकर भाई से बातें कीजिए न !

—नाम लेकर ? हाँ हाँ नाम लेकर ही बातें करूँगा। पर नीता नाम ? नाम कहाँ गया ? नाम तो मुझे ढूंढ़े भी नहीं मिल रहा है। नीता मुझे नाम ढूंढ़कर दो न ! कह कर निराश हो सुशोभन कुर्सी पर बैठ गए।

मायालता थोड़ी घबरा सी गई। वह इधर उधर देखने लगी।

सुमोहन ने आँखों के इशारे से पूछा— कितने दिनों से यह हाल है ?

नीता ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। पिता की कुर्सी की बांह पकड़ कर निश्चल खड़ी रही।

सुचिन्ता धीरे से अपने कमरे में चली गई।

निरंजन भी सारी परिस्थिति पर नजर दौड़ा कर चला गया।

—भैया, मैं मोहन हूँ। नजदीक आकर सुमोहन धीरे से बोला। वह नीता की तरफ झुलसती आँखों से देख रहा था। आमतौर पर सुमोहन गुस्से में नहीं आता था, पर आज नीता पर उसे वाकई बड़ा गुस्सा आ गया जैसे नीता ही षड्यंत्र रचकर ताई-चाचा का अपमान करने पर तुली थी।

यह तो साफ जाहिर था कि सुशोभन का दिमाग उसके वश में नहीं है, पर सारे उत्तरदायित्व को अपना समझकर उसने क्यों घरवालों से यह सब छुपा कर रखा था।

बाप का भला-बुरा सोचने की मालकिन वही अकेली थी ? सुशोभन के भाई लोग कुछ भी नहीं ? हो सकता है, भाई लोगों ने अपनी तरफ से उनकी कोई खबर नहीं ली, लेकिन अच्छे-भले स्वस्थ आदमी के लिए यों ही रात-दिन कौन बेचैन रहता है ? 'पिताजी की तबीयत ठीक नहीं है, इसीलिए कलकत्ता आना मुश्किल है' पोस्टकार्ड पर इतना लिख देने से ही क्या

नीता का कर्तव्य मान हो गया था ? मन में न कोई डर, न दायित्व का बोध ! अकेली छोटी सी लड़की की जान, विचलित भी नहीं हुई ! एक खबर तक नहीं दी।

अब तक सुमोहन निरंजन के साथ बातचीत कर रहा था, पर उसने भी कुछ नहीं बताया।

—ये लोग कितने दिनों से यहाँ आए हुए हैं ? पूछने पर निरंजन टाल गया था। बोला—यही कुछ दिन हुए। तारीख और दिन याद ही कौन रखता है, कहिए ?

सुचित्रा ने भी सिर्फ कुशल मंगल पूछा और कहा था—वे लोग कहीं घूमने निकले हैं।

अभी तक बात समझ में आई, ये लोग सुचित्रा के किरायेदार नहीं थे।

किरायेदार रखने लायक घर में इन्तजाम नहीं था। नीता और सुशोभन भैया भी इनके घर के अन्दर ही तो आकर बैठे। किरायेदार इस तरह से तो नहीं आते। सुमोहन के दिमाग में फटाफट इतनी सारी बातें आईं गईं। फिर भी वह पास आकर बोला, मँझले भैया मैं मोहन हूँ।

मोहन सुमोहन के घर का नाम था।

सुशोभन फिर खुशी से उछल पड़े। बोले—ओ नीता, ओ सुचित्रा। सुना तुम लोगों ने—मोहन ! मोहन ! तुम लोगों ने तो नाम ढूँढ कर दिया नहीं। मोहन ने ही खुद ढूँढ दिया। मोहन ! मोहन ! कितना आश्चर्य है। यह-वहाँ न मालूम कैसे सब कुछ खो जाता है। सुमोहन मानापमान नहीं, टेढ़ापन भी नहीं। इसलिए उसने परिस्थिति के साथ चलने को मना लिया। धीरे से बोला—दिल्ली से कब आए भैया ?

—दिल्ली से ? सुशोभन उत्साहित होकर बोले—दिल्ली से हम कब आए नीता ?

—इस महीने की दो तारीख को हम आए पिताजी।

—मोहन, तुमने सुना। हम लोग इस महीने की दो तारीख को आए।

—कलकत्ते में अभी कुछ दिन रहेंगे न ?

सुशोभन स्वच्छन्द भाव से बोले—रहेंगे ही। सुचित्रा को फिर सुनते

थोड़े ही दूंगा ? दिल्ली में तो सभी मर जाते हैं। पर तुम ? तुम भी क्या दिल्ली में थे ?

— नहीं भैया, हम तो बराबर से यहीं हैं।

—तुम फालतू बहुत बकते हो मोहन। यहां तुम कब थे ? अभी-अभी तो तुम यहां आए हो। अभी तो तुम्हारा नाम खो गया था। तुमने फिर उसे ढूंढ़ दिया।

—पिताजी, आप अपने कमरे में चलिए। फल खाने का समय हो गया है। नीता बोली।

—फल खाने का समय हो गया है ? कह कर सुशोभन एकाएक गरम हो उठे। और मोहन ? उसके फल खाने का समय नहीं हुआ है ? तुम लोग सब कैसी हो नीता ? मोहन का घर-बार सब टूट गया। वह कुछ नहीं खाएगा ? कहां जाएगा वह ?

—क्या आलतू-फालतू कह रहे हैं पिताजी। नीता डांट कर बोली। चाचा का घर क्यों टूटने जाएगा, वह तो दूसरों का टूट रहा था। गरीबों का।

—गरीबों का ! हां-हां। ठीक बोल रही है। यह नीता मेरा सब कुछ ठीक कर देती है मोहन।

मायालता ने झट अपना बन्द मुंह खोला—नीता तो जिन्दगी भर तुम्हारा सब कुछ ठीक करने के लिए तुम्हारे पास बैठी नहीं रहेगी, देवर जी ! शादी देकर उसे ससुराल नहीं भेजना पड़ेगा क्या ? उस समय ?

— तुम क्यों बोल रही हो ? सुशोभन डांट कर बोले—तुम्हारे कहने से मैं नीता को ससुराल भेज दूंगा ? तुम्हारा हुक्म है ?

मायालता को उसी तरह मजा आ रहा था जैसे पागल को देखकर बाकी निन्नानवें आदमियों को मजा आता है। सुशोभन पागल हो गए थे, यह भयंकर सत्य फिलहाल मायालता को विमूढ़ नहीं बना रहा था। इस-लिए पैनी दृष्टि से देवर को देखते हुए बोली —हुक्म तो मैं दे ही सकती हूं। मैं उसकी ताई जो हूं ? मेरे ससुर कुल की लड़की है नीता। उसकी शादी नहीं करेंगे ? ऐसे ही बहती फिरेगी तो हम लोगों की बदनामी नहीं होगी क्या ?

यह बात मायालता किस उद्देश्य से बोल रही थी, यह नीता समझ गई। अविचलित भाव से बोली—आप थोड़ी देर बैठिए ताईजी। पिताजी को पहले थोड़ा खिला दूं। उसके बाद जितनी चाहे खुशी की बातें पूछ लीजिएगा। इस समय उन्हें कुछ खाने की आदत है।

मायालता नीता की बात हजम कर गई। आखें छलछला कर बोली—खुशी? खुशी की बातें करूं, भगवान ने वह दिन दिया ही कब? हैरान होकर तब से सोच रही हूँ—कैसे आदमी की क्या दुर्गत? फिर सुशोभन की ओर देखकर बोली—अच्छा देवरजी, एक बार अच्छी तरह देखकर बताना। मुझे वाकई नहीं पहचान रहे हो?

सुशोभन अचानक अपने ही ढंग से हा······हा······कर हँस उठे—पहचानूंगा नहीं? क्या मतलब? किसने कहा? तुम उन लोगों के घर की बड़ी बहू हो न?

☐

मायालता दिन भर छटपटा रही थी कि कब वह सुविमल को सारी रिपोर्ट देगी। फिर जब सुविमल अपने से ही पूछे—कैसा रहा तुम्हारा अभियान? आशा है सफल हुई होगी? तब मायालता गुम-सुम हो गई। शायद पति के इस प्रश्न में व्यंग्य की झलक थी।

—क्यों क्या बात है? अन्त तक गई नहीं थी क्या?

—जाऊँगी क्यों नहीं? भौं तानकर मायालता बोली—डर किस बात का है?

—हुआ क्या? तुम्हें पहचाना कि नहीं?

—हाँ हाँ! मेरा अहोभाग्य समझो। देखो, मैं तुम्हें बताए देती हूँ। छोटे देवरजी चाहे तुम्हें कुछ भी समझा बुझा जाएँ कि मँझले देवरजी का दिमाग खराब हो गया है, पर मैं यह बात नहीं मानती।

—दिमाग खराब हो गया है उसका? सुविमल चौंक उठे। ऐसा तो उन्होंने ही सोचा नहीं था। सुशोभन मनोज को नहीं पहचान पाए थे—इसमें सुविमल को न तो कोई तर्क दिखा था और न ही सुशोभन का स्वभाव वैसा था। फिर भी सुविमल ने इस तरफ नहीं सोचा था।

सुशोभन का दूसरी जगह टिकना, भाइयों के प्रति उसका बुरा रुख मान कर ही सुविमल चुप थे। पर सुशोभन का दिमाग खराब हो गया है, यह जान कर सुविमल के दिमाग पर पत्थर की चोट सी पड़ी। पर इस चोट को देखने की नजर मायालता के पास नहीं थी। इसके अलावा मायालता ने सुशोभन के प्रति सुविमल का छोटे भाई जैसा वात्सल्य-स्नेह भी कभी नहीं देखा था। सुविमल बराबर अपने से छोटे भाई को मंझला बाबू कह कर ही पुकारते थे।

मायालता ने अपनी बात जारी रखी। बोली—छिः छिः क्या ही शर्मनाक बात है। देख-सुनकर तो भाग आने का दिल कर रहा था। अच्छा, शुरू से ही बताती हूँ। हमने जाकर देखा, बाप-बेटी घूमने निकले थे। सुचिन्ता और उसके बेटे से बातें हुईं। मैं जितना उनसे पूछती, उन लोगों का तुम्हारे यहाँ रहने का क्या कारण है, वे बात टाल देते। दूसरा प्रसंग छेड़ देते। उधर छोटे देवरजी सुचिन्ता के लड़के के साथ गप-शप में मशगूल हो गए। काफी देर बाद बाप-बेटी लौटे।

—क्या कहूँ! भेंट होने पर भी वही नाटक। जैसे हमें उन्होंने देखा ही नहीं। फिर छोटे देवरजी को धीरे-धीरे पहचाना। मैं यह सब क्यों मानने वाली थी। मैंने आगे बढ़कर जैसे ही बातें कीं, वे बोले—पहचानूंगा क्यों नहीं? तुम तो उन लोगों के घर की बड़ी बहू हो। इतना पहचान सके और किस घर की बड़ी बहू, यह नहीं बता सके? सके क्यों नहीं? यह भी उनका एक नया तरीका है।

—जरा चुप भी रहो। कह कर सुविमल सुमोहन के कमरे में आए और उससे पूछा—बात क्या है मोहन?

—बात क्या होगी! मोहन निराशा की मुद्रा दिखा कर बोला—बिल्कुल पागलों की स्थिति है।

—अचानक ऐसा होने का कारण?

—कारण बताना तो मुश्किल है। बीमारी कब किस धागे का छोर पकड़ कर फैलती है, कौन जानता है? पर यह सब अचानक नहीं हुआ होगा। नीता से जितना मालूम पड़ा, इस बीमारी के आसार तीन साल पहले ही दिखाई पड़ गए थे। उसके बाद चिकित्सा के लिए ही कलकत्ता

मे—।

—और नीता देवी ने हम लोगों को इसके बारे में सूचित करना भी उचित नहीं समझा ! सुविमल चिल्ला पड़े ।

सुमोहन आगे क्या कहता, ईश्वर ही जानता है, पर पति-पथ-अनुगामिनी सती मायानता तब तक पति के पीछे आकर खड़ी हो गई थी। उसने अब अपने खास ढंग से अपने पति की बात का उत्तर दिया—मैं और क्या कह रही हूँ ? यह कभी सच हो ही नहीं सकता । मंझले देवरजी तो पागलपन का नाटक कर रहे हैं। सचमुच के पागल होते तो क्या लड़की खुद नहीं डरती ? हम लोगों को बिल्कुल ही अलग रख सकती थी क्या ? आजादी की भी हद होती है। इसमें बाप की भी 'हाँ' है, यह तो साफ जाहिर है ।

—नहीं भाभी। यह क्या कह रही हो ? सुमोहन बोला—मैं भी तो अपनी आँखों से देखकर आ रहा हूँ। बड़े भैया, क्या बताऊं ! देखकर वाकई में बड़ा दुःख हुआ। यह रही मनुष्य की महिमा। बड़ी नौकरी से और बड़े ओहदे पर रहने से भी क्या होता है ? बैंक में भी जमाई मोटी रकम किस काम आनी है ? एक मिनट में सब कुछ बेकार सिद्ध हो जाता है।

मायानता बात पर बात बढ़ाती गई । —यही तो बात है देवर जी, इसीलिए तुमने खुद कुछ भी कमाने की कोई जरूरत ही नहीं समझी, क्यों ?

सुमोहन स्थिर भाव से बोला—थोड़ा बहुत ठीक ही बता रही हो।

सुविमल नाराज होकर बोले—तुम फिर यहाँ क्यों पहुँच गई ? मुझे सारी बातें ठीक-ठीक सुनने दो न ?

—ओह ! यानि मैं सारी बातें सच-सच नहीं बताती हूँ ? ठीक है, मैं भी बता देती हूँ कि अन्त तक सभी को मेरी ही बात पर यकीन करना पड़ेगा। यदि वह पागल ही है तो सचमुच बड़ा सयाना पागल है। अपना भला-बुरा खूब समझता है। नीता को थोड़ी बड़ाई से कुछ कहा हो था कि उसने तुरन्त मुझे फटकार दिया। वाह रे वाह, दांतों की फुलझड़ी जला दी। 'नीता को तुम डांट रही हो, इसका मतलब ?' क्या अधिकार है तुम्हें

नीता को डांटने का ? नीता तुम्हारे घर से चली आई है, ठीक ही किया है। तुम्हारी तरह झगड़ालू गृहिणी के पास वह क्यों रहेगी ? जरा सुचिन्ता को देखो ? शी ईज ए लेडी। जिसे भद्र महिला कहा जाता है, नीता तो सुचिन्ता की तरह बनेगी, ऐसे-ऐसे कितना कुछ कह गया।

सुविमल थोड़ा उदास होकर बोले—यह सब कहा ?

—कहा या नहीं, अपने छोटे भाई से ही पूछो। हूँ:, मैं तो हर बात बढ़ा-चढ़ा कर बोलती हूं न। गवाह सामने हाजिर है उसी से पूछो। बढ़ा-चढ़ा कर बोल रही हूं या सच-सच बता रही हूं। मैं तो यही कहूँगी कि उस सुचिन्ता ने ही कुछ झाड़-फूंक किया है। और यह भी सच है कि छुपे छुपे दोनों में मेल-जोल था। भेंट मुलाकात थी। बचपन का प्यार दोस्ती।

—तुम चुप भी रहोगी ? सुविमल गरज उठे। पर डांटकर कब कौन पत्नी को चुप करा सका है ? सुविमल भी नहीं करा सके।

उनके कहते ही मायालता चिल्ला पड़ी—क्यों ? चुप क्यों रहूँगी ? सच्ची बात को जरूर कहूँगी। मैं तो किसी राजा से भी नहीं डरती। यह मेरी सीधी सपाट बातें हैं। अब तक मैं मंझले बाबू को सीधा, भोला ही समझती थी, पर मैं क्या जानती थी कि वे अन्दर कुछ और बाहर कुछ और हैं। मैं तो उन्हें कुछ अच्छा ही बोलने गई थी। यहां रहते हुए कई दिन हो गए हैं देवरजी, अब घर चलो। पर यह सुनकर तो मुझे मारने दौड़ा। जैसे उसका जहां जो अपना था, उन सब को मैंने ही मार डाला है। पर मैं भी छोड़ने वाली नहीं। मैंने भी कहा, चलो न ! चलकर ही देखो कि तुम्हारा कहीं कोई है या नहीं। आज मैं ऐसे ही नहीं लौट जाऊंगी ! तुम्हें साथ लेकर ही लौटूंगी। पर क्या कहूँ ? उसके बाद जो कुछ हुआ, उसे बताने में तो मैं शर्म से गड़ी जाती हूं। छोटे देवर जी ने ही अपनी आंखों से ही देखा है, नहीं तो वही बात मैं जबान पर नहीं ला सकती थी। जैसे ही मैंने घर चलने के लिए कहा, उसने दौड़कर जाकर सुचिन्ता को दोनों हाथों से जकड़ लिया और आंखें मूंद कर आर्तनाद कर उठा, 'सुचिन्ता, उस घर की बड़ी बहू को तुरन्त निकाल दो। वह तुम्हारे पास से मुझे छीनने आई है। उसे फिर कभी घुसने मत देना।' छि: छि:। वह दृश्य देख-

कर तो शर्म से मेरा सर कट गया। भाग आने का रास्ता ही नहीं मिल रहा था। पर सच में है तुम लोगों की वह सुचिन्ता बधाई लायक पात्र। वह हिली भी नहीं शर्म से मरी भी नहीं। उल्टे मुझे साफ-साफ बोली—हालत तो देख ही रही हो भाभी, ज्यादा उत्तेजित कर नुकसान ही करोगी। फायदा कुछ नहीं होगा। आज वापस घर जाओ। मैं भी सुना आई, 'सिर्फ आज ही क्यों? मैं हमेशा के लिए ही जा रही हूं। तुम्हारे घर तो मैं कभी पैर धोने के लिए भी नहीं आती, अगर हमारा अपना यहां नहीं रहता तो। खैर जब अपना ही आदमी मूक बना बैठा है तो किसके पास आऊंगी? सुना कर खट्-खट् कर मैं चली आई। पर नीता भी कितनी कड़ी किस्म की लड़की है। एक बार दौड़कर नीचे नहीं उतरी, बोली भी नहीं कि 'ताईजी, पागल की बात का बुरा मत मानना।' 'पागल, है, यह तो उन लोगों ने बताया भी नहीं —।

अब इतनी देर के बाद मायालता की बातों का प्रतिवाद सुनाई पड़ा न जाने कब, अशोका कमरे में आ गई थी। प्रतिवाद की यह आवाज उसकी थी।

हालांकि यह अशोका के स्वभाव के विपरीत बात थी फिर भी।

शायद आज परिस्थिति अशोका के लिए भी असह्य हो गई थी। मायालता धुआंधार बोले जा रही थी। एक भाई बिस्तर पर पड़ा-पड़ा और दूसरा काठ समान बैठा गूंगे बकरे की भूमिका निभा रहे थे।

अधिक और ऊंचा बोलना अशोका के स्वभाव में नहीं था। धीमी आवाज में ही बोली—पागल का परिचय पागल खुद ही दे देता है दीदी। उसके लिए दूसरे लोगों को बताने की मेहनत नहीं करनी पड़ती। बड़े भैया, आइए आपका खाना परोस दिया है।

कचहरी से लौटते ही थोड़ा भारी नाश्ता लेने की आदत थी सुविमल की, और अशोका बड़े यत्न से उन्हें खिलाती थी। जेठ को 'जेठजी' न कहकर बड़े भैया ही कहती थी, इसलिए मायालता को लगता था, अशोका में बड़ों के प्रति आदर का भाव नहीं है। अशोका भी दूसरों की बातों में पड़ी थी, कुछ बोली थी, यह देखकर सबसे ज्यादा तो सुमोहन अवाक रह

सुबह ही उस घर से लौट कर उसने सुशोभन के हाल और अपने अभियान के बारे में पत्नी को बताना चाहा था पर उसके सारे उत्साह पर पानी फेर कर अशोका बोली थी,—ये बातें मुझे बताने से क्या फायदा ? सुमोहन चुप हो गया था। खिन्न होकर बोला—पति-पत्नी के बीच की बातचीत भी क्या हमेशा घाटे मुनाफे को ध्यान में रखकर करनी पड़ेगी ?

—जिस विषय पर बोलने जा रहे हो, क्या वह गप-शप करने की चीज है ? कहकर अशोका ऊन की बिनाई लेकर बैठ गई थी।

अब अशोका अपनी तरफ से ही इस विषय पर बोली थी, यह देखकर मायालता को लगा, यह और कुछ नहीं, जेठ की नजर में अच्छे बनने की कोशिश है। उसे इतना घमंड जेठ के ही बढ़ावे के कारण तो हुआ था। पर सामने मायालता कुछ बोल नहीं पाती थी। इस समय भी वह बुदबुदा कर ही बोली —हूँः—! चले आइए। जेठ को मानों हुक्म दे रही है। क्यों आदमी क्या कोई मशीन है कि घोड़े पर बैठ कर दौड़ेगा ? आपस में दो पल सुख-दुख की बातें भी नहीं करेंगे ?

—सुख की बात ही कहाँ है, बड़े भैया ? आइए, खाना ठंडा हो रहा है। कहकर अशोका चली गई।

अशोका के चले जाने के बाद मायालता झल्ला उठी—देखा न ? अपनी चार आँखों से दोनों भाइयों ने देखा न ! छोटी होकर भी छोटी बहू किस तरह से मेरी अवहेलना करती है ?

सुविमल जाते-जाते बोले—छोटा-बड़ा क्या सिर्फ उम्र के हिसाब से ही होता है बड़ी बहू ?

मायालता स्वाभिमानवश बैठी नहीं रही। यह क्षमता उसमें थी ही नहीं। छोटी बहू ने जेठ को ढंग से खाना दिया या नहीं, यह देखने के लिए वह भी पति के पीछे-पीछे चल पड़ी। लेकिन चलते-चलते बोलती गई—मन, बुद्धि और विवेक के माप के लिए तो कोई सेर-बटखरे मिलते नहीं कि वजन करके यह पता किया जाए कि कौन छोटा है कौन बड़ा ? युगों से तो उम्र के जरिए ही छोटे-बड़े का हिसाब होता आया है।

कहना फिजूल है कि मायालता की बातों का किसी ने जवाब नहीं दिया। अनर्गल और मतलब-बेमतलब की बातें करके मायालता अपना

सारा सम्मान खो बैठी थी। उसके अपने बेटे बेटियाँ भी कहते थे 'तुम्हारी तरह इतनी असीम शक्ति हम में नहीं है माँ! हम क्या कर सकते हैं बताओ। तुम्हारी हर बात का जवाब देना हमारे लिए संभव नहीं है।'



अल्पभाषी अशोका जो थोड़ी बहुत बातें होती, सिर्फ अपने जेठ से ही करती। मायालता इसके लिए अशोका की बुरी तरह आलोचना भी करती पर आलोचना से घबरा कर अपनी आदत बदलने वाली लड़की अशोका नहीं थी। अपने बच्चों के स्कूल के लिए किताब-कापियाँ, फीस या कपड़े लत्ते, अशोका को जिस चीज की भी जरूरत होती है, वह बेहिचक सीधे आकर अपने जेठ से माँग लेती। मायालता को जब पता चलता तब वह बन्द कमरे में दीवार के सामने ही बड़बड़ाती—न मालूम आदमी इतना तेज कैसे होता है? हमेशा तो यही सुनती आई हूँ कि माँगते समय आदमी का सर झुका रहता है, गला काँप जाता है, पर यहाँ तो सब कुछ उल्टा है। कैसी अजीब लड़की है बाबा!

अशोका उल्टी तरफ बैठी पान बनाती रहती। वह सब कुछ सुनती पर देखती तक नहीं। जब मायालता चुप होने का नाम ही नहीं लेती तब वह एकाएक बोली—दीदी, जरा सुपारी तोड़ दीजिए। बातें करते-करते एक काम भी हो जायेगा।

मायालता सुनकर गुस्से में तिलमिला उठती। फिर दूसरे ही दिन देखती कि अशोका सुविमल से बोल रही होती—बड़े भैया, जाते समय चारेक रुपये देकर जाइएगा। आज स्कूल में पंखे के लिए बच्चों से पैसे माँगे गए हैं।

अशोका का बात करने का ढंग ऐसा ही सीधा था। कुंठा उसे छूती तक नहीं।

आज भी अपने उसी सहज तरीके से बोली—बड़े भैया! आज आप मंझले भैया को देखने जाएँगे क्या?

सुविमल चौंक उठे। बोले—अभी तक तो कुछ तय नहीं किया है। सोचता हूँ इसकी प्रतिक्रिया अच्छी होगी या नहीं। पर क्यों बेटी?

—अगर आप गए तो मुझे भी साथ ले चलिएगा।

—तुम्हें ? तुम जाना चाहती हो ? पर वहां जाकर तुम···।

सुविमल थोड़ा हकचका गए।

—आपको क्या लगता है, मुझे वहाँ नहीं जाना चाहिए ?

—नहीं नहीं ! उचित अनुचित की बात नहीं है बेटी। वहाँ जाकर कहीं तुम्हें अटपटा-सा न लगे। यानी शोभन तो किसी को ठीक से पहचान नहीं पा रहा है।

—यह तो मुझे मालूम है। पर बड़े भैया उन्हें उतना नहीं, मुझे तो एक बार आप लोगों की उस सुचिन्ता को देखने का मन कर रहा है।

—सुचिन्ता को ?

—हां, बड़े भैया।

—पर क्यों बेटी ?

—यों ही।

८।

'अनुपम कुटीर' के पड़ोसियों के बीच फिर हलचल मच गई। पर अब वे अपने बीच वहम न करके सीधे अनुपम कुटीर के लोगों से ही पूछते थे।

लाल मकान की ललाई लिए लड़की जिसका नाम कृष्णा था, उसने बीच रास्ते में इन्द्रनील को रोककर पूछा—ऐ ! तुम्हारे घर पर कल कौन आया था ?

इन्द्रनील गंभीर होकर बोला—यह भी कोई पूछने लायक प्रश्न है ?

—क्यों नहीं ! एक वयस्क महिला और प्रौढ़ सज्जन अचानक तुम्हारे घर पर क्यों आए, यह जानना मेरे लिए इसलिए जरूरी है ताकि कहीं कोई बिनब्याहे कुंआरे लड़के की मां लड़की ढूंढ़ने के लिए कहीं तुम्हारे यहां न घुस आए—।

इन्द्रनील बोला—इससे तुम्हें क्या ? घुसने पर वे तुरन्त समझ जाएंगे कि गलत घर में पहुंच गए हैं।

—ऊं हूं। बेवकूफ लोग लड़के के माथे पर डिग्री की दो छाप देखकर उसे बढ़िया लड़का समझ बैठते हैं।

—तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं। डिग्री की छाप वाला लड़का तो मेरे ऊपर है। मैंने तो इस बार तय कर लिया है कि मैं एम० ए० में फेल करूँगा।

—तुम्हें कौन गिन रहा है? कृष्णा अवहेलना से बोली—तुम अपने को गिनती में क्यों ले रहे हो? मैं तो तुम्हारे दोनों भाइयों के लिए कह रही थी।

—मानता हूँ मेरे भाई लोग बड़े अच्छे पात्र हैं, पर उनके लिए अगर कोई जाल बिछाता है तो तुम्हें क्यों सरदर्द हो रहा है? मेरी तो समझ में नहीं आ रहा है।

—समझोगे कैसे? आँखें होते हुए भी अंधे जो ठहरे। नीता दीदी के लिए शायद कभी सोचा ही नहीं होगा न?

इन्द्रनील एकाएक गला खोलकर हँस पड़ा। बोला—बालिके! तुम अब भी बच्ची ही हो। नीता की नजर इन नीची डालों के फूलों पर नहीं है। उस लड़की ने बहुत पहले ही पेड़ की ऊँची-सी डाल को हाथ बढ़ाकर उसे झुकाकर मुट्ठी में बन्द कर लिया है।

—क्या मतलब?

—मतलब सीधा है। हर सप्ताह उसके नाम विलायत से चिट्ठी आती है।

—क्या कह रहे हो? सच?

—शत-प्रतिशत सच। एक सौ पाँच बार सच।

—इसका माने उसका भावी पति किसी लम्बी पूँछ की साधना करने के लिए गया हुआ है। कृष्णा अपनी चोटी को हिलाती हुई बोली।

—ऐसा ही लगता है। इन्द्रनील बोला।

—तुम पूछते क्यों नहीं?

—ना बाबा! दूसरे के निजी मामलों में दखल देने का बुरा ख्याल मुझमें नहीं है।

—पर मुझमें है। मैं आज ही इस मामले की पूरी छानबीन करूँगी।

इन्द्रनील घबराकर बोला—ऐ! खबरदार! कुछ मत पूछना। उसका मन होगा तो खुद ही बता देगी।

कृष्ण भौं तानकर बोली—उसके लिए तुम्हारे मन में बड़ा सम्मान है। हमेशा मुझे रोकते हो। तुम क्या समझते हो, तुम्हारा यह भाव मुझे अच्छा लगेगा ?

—मेरा हर आचरण तुम्हें अच्छा ही लगे और इसके लिए मैं अपनी आदतें बदलूं, यह कोई जरूरी है ?

—है। गर्व की हँसी हँसी कृष्णा।

—यह तुम्हारी गलत धारणा है। इन्द्रनील बोला—सागर पार के सागरमय की चिट्ठियां अगर आंखों में न पड़तीं तो तुम्हारी तरफ ताकता भी क्या ?

—यह बात है ? यानी नीता तुम्हारी मनोनीता होती ?

—बिल्कुल ! क्या लड़की है !

—उम्र में तुमसे बड़ी है।

—उससे क्या ?

—कुछ नहीं ?

—अरे कुछ वुछ को मारो गोली। मेरी इच्छा तो खाक में मिल गई न।

—बड़ा दुख हो रहा है। उम्र में बड़ी लड़की खूब अच्छी लगती है न ?

—इसमें न लगने का क्या है ? उम्र में बड़े दूल्हे को तो लड़कियां खूब पसन्द करती हैं।

—वह तो स्वाभाविक है। किरण की नाक में रस्सी डालने से क्या सुख है। रस्सी तो शेर की नाक में डालने में मजा है।

—हां। तुम जैसी इस मुहल्ले की लड़कियां दूसरों की नाक में रस्सी को अच्छी तरह पहचानना जानती हैं।

—क्या बकते हो ? कृष्णा आंखें गोल कर बोली—किसकी नाक और किसकी रस्सी की बात कर रहे हो ?

—क्यों ? तुम्हारी प्यारी सहेली विनीता और अपने अभागे पड़ोसी अमल की बात कर रहा हूं।

—ओ ! उनका मामला तो बहुत दिनों से फिट है।

—घर वालों को आपत्ति नहीं है ?

—आपत्ति किस बात की ? चपटी नाक वाली लड़की की मुफ्त में शादी हो रही है इसमें बुरा क्या है ? फिर लड़के के पास मकान भी है, गाड़ी भी।

—सो तो है। पर चपटी नाक तो तुम ईर्ष्यावश बना रही हो।

—इंचटेप से नापकर देख लो। पर चलो, रहने दो। सागर पार की बात बनाकर तुमने तो मुझे मुश्किल में डाल दिया। मैं तो दूसरी तरफ का हिसाब फिट बैठा रही थी। पर अब मानना पड़ेगा कि नीता दीदी अच्छी खिलाड़ी है।

—छि कृष्णा ! उनके लिए अपशब्द मत बोलो।

—ओ बाबा। कृष्णा स्वाभिमान भरी आवाज में बोली—बड़ा सम्मान है उनके लिए मन में। लेकिन मैं सच बोलने से घबराती नहीं। नीतादी के लिए तुम्हारे भैया पागल नहीं हैं, तुम यह कहना चाहते हो ?

—मंझला भैया इस टाइप का लड़का नहीं है।

—ईस्स् ! मर्द की भी कोई टाइप होती है ? लाइनो मशीन के टाइप की तरह पिघलाकर उन्हें बिल्कुल नए टाइप का बनाया जा सकता है।

—तुमने इतने मर्दों को कब देखा ?

—जन्म से ही देख रही हूँ।

—यह बात है तभी तो। पर चाँद देखकर कोई यदि पागल हो तो अपराध चाँद का तो नहीं।

—देखो ! हमेशा नीतादी की तरफदारी कर रहे हो, मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।

—और मुझे भी लग रहा है कि सड़क पर खड़े-खड़े हम लोगों का प्रेमालाप सड़क चलने वालों को अच्छा नहीं लग रहा होगा।

—प्रेमालाप ! इसका माने ?

—प्रेमालाप नहीं है ? इन्द्रनील मासूम-सा बनकर बोला—मुझे तो कुछ-कुछ ऐसा ही लग रहा था।

—अपनी धारणा को बदलो।

—अच्छी बात है।

फिर कृष्णा नाटकीय ढंग से बोली—उफ! मुझे भी क्या कम
ारणाएँ बदलनी पड़ी हैं।

—किसके बारे में ?

—यही तुम्हारे बारे में। बाप रे बाप! पहले तो कैसे ही थे जनाब।
ाड़क पर से चलते थे, तो लगता था मानों कोई रेगिस्तान पार कर रहा
ो। इधर-उधर किसी तरफ नजर नहीं। सड़क पार करना ही एकमात्र
ाक्ष्य होता था।

—यह वाकई में सच था। यही हमारे घर की रीत भी थी। अब
तक यही समझता आया था कि इधर-उधर ताक-झांक करना बुरी बात
है। अभद्रता है।

—यह धारणा बदली कैसे ?

—सच बात बताने पर नाराज तो नहीं होगी न ?

—यानी नाराज होने लायक बात है ?

—नहीं! पर तुम्हारी तरह तुनक मिजाज लोगों के लिए नाराजगी
की बात हो सकती है। सच बात तो यह है कि नीतादी ने आकर मानों
हमारे घर के सारे दरवाजे खिड़कियाँ खोल दीं।

कृष्णा मुंह फेरकर बोली—अपने भविष्य के लिए एक योजना बनाई
थी। ऐसा लगता है जैसे उसे तोड़ना पड़ेगा।

—क्यों ?

—जिन्दगी-भर मैं नीता की महिमा नहीं सुन सकती।

—उफ! इसीलिये तो कहता हूँ कि औरतें बड़ी ईर्ष्यालु होती हैं।

—औरतें यानी हम-जैसी ओछी औरतें न! नीतादी की तरह
महिमामयी औरतें तो नहीं ?

—मेरे दिमाग में भी एक योजना थी। लगता है उसे तोड़ना
पड़ेगा।

—क्यों ?

क्योंकि जिन्दगी-भर मैं ताने नहीं सुन सकता।

कृष्णा हँस दी। बोली—अच्छा बोलो तो हम लोगों की यह योजना
कब बनी ?

—क्या पता ?

—कितने दिनों की जान-पहचान है हमारी ?

—फिलहाल तो लगता है जन्म-जन्मान्तर से है, पर धुलाई में टिकेगी या नहीं, क्या पता ?

—नहीं पता ?

—नहीं। मालूम कैसे होगा, बताओ। लगता है नदी की तरह—।

—सब की बात नहीं, सारी लड़कियों के लिए तुम ऐसा नहीं कह सकते। अपनी माँ को ही देखो न ! मैं तो देख रही हूं—।

इन्द्रनील अचानक गंभीर हो गया, बात रोककर पूछा,—क्या देख रही हो ?

—देख रही हूं, जीवन का पहला प्यार ही अमर होता है।

—कितने दिन आई हुए हो हमारे घर ? उसी में इतना कुछ देख लिया ?

—आंखें हों तो एक पल में देखा जा सकता है, और औरत औरत को देखने में गलती नहीं करती। पर तुम क्या नाराज हो गए ?

इन्द्रनील थोड़ा उदास होकर बोला,—नहीं। इसमें नाराज होने की क्या बात है ? सच को झूठा बताऊं फिर भी तो वह रहेगा सच ही। पर यह प्रसंग उत्साहजनक नहीं है।

—अच्छा चलो रहने दो। तुम बुरा मत मानना इन्द्रनील।

—अच्छा चलता हूं।

दोनों दो तरफ चल दिए।

कृष्णा सोचती गई, यह प्रसंग अगर वह नहीं उठाती तो अच्छा होता, कुछ भी हो, है तो उसकी माँ ही।

और इन्द्रनील सोच रहा था, गंभीर हो जाना मेरे लिए और भी लज्जाजनक बात साबित हुई। कुछ भी हो, हम आधुनिक युग के लड़के हैं। पर न मालूम क्यों मन को मुक्त नहीं किया जा सकता। माँ मेरी है। पर नीता के भी तो वे पिता हैं। फिर भी नीता कितनी सहज है। उसका मन कितना खुला हुआ है। कितने स्वच्छन्द विचार हैं उसके। पिता के लिए उसके मन में कितनी ममता, कितना स्नेह है।

इन्द्रनील भी कोशिश कर रहा था, पर मन को सहज नहीं वना पा रहा था। जीवन भर दो स्नेह-वंचित प्राणियों को नीता की तरह उदार स्नेह से नहीं देख पा रहा था। इन्द्रनील ऐसा नहीं देख सकता। उन दोनों के लिए उसके मन में अनुराग नहीं; विराग ही आता था।

उस तरफ से आंखें फेर लेने की इच्छा होती। मन उस चिन्ता से मुक्त हो जाना चाहता। व्यवहार में अपने को आधुनिक वनाना आसान है पर मन और विचारों में आधुनिक वनना उतना आसान नहीं।

अच्छा ; अगर इन्द्रनील के पिताजी अभी जीवित होते और उनके जीवन में इन्द्रनील ऐसा कुछ देखता ? इन्द्रनील ने अच्छी तरह से सोचा। क्या वह अपने पिता की इस कमजोरी को मान ले सकता था।

शायद दुनिया में सवकी कमजोरी माफ की जा सकती थी। सिर्फ मां की कमजोरी माफ नहीं की जा सकती।

नीता भी शायद अपनी मां को माफ नहीं कर पाती थी। इन्द्रनील की यह धारणा पक्की थी।

लेकिन क्यों ? यह इन्द्रनील नहीं वता सकता था।

शायद इसलिए कि आदमी स्वभाव से मां को सवसे अधिक श्रद्धा का पात्र देखना चाहता है।

संभवतः मां को हर आदमी दुनिया की धूल और मिट्टी से ऊपर देखना चाहता है। पर संसार में वंगाल के अलावा भी तो देश हैं। हिन्दू समाज के अलावा भी तो समाज हैं। प्रथा, पद्धति, रीति-रिवाज में भेद होगा तो क्या वहां मातृभक्ति नहीं होती होगी ?

इन्द्रनील का मन इन प्रश्नों का जवाव नहीं दे पाता था।

□

नीता भी अपने मन से प्रश्न कर उत्तर नहीं पा रही थी।

वह सोच रही थी कि उसे ताई की वात माननी चाहिए या नहीं। मायालता ने कहा था—यदि पागलखाने में देने लायक पागल न हो और घर में हो, हलका अधिक लगे तो घर के आसपास कोई छोटा-सा मकान किराए पर लेकर वाप-वेटी तुम दोनों वहां रहो। हम लोग देखभाल करेंगे।

पर यह क्या हो रहा है ?

नीता को ढंग का कोई जवाब नहीं सूझा था इसीलिए बोली—आजकल फ्लैट मिलना बड़ा मुश्किल है।

मायालता मुंह बनाकर बोली थी—शायद इस सुचित्रा बुआ के मकान के अलावा कलकत्ता शहर में और कोई मकान नहीं ?

अन्त में नीता बोली थी—अच्छा डाक्टर से पूछती हूं, यदि वे कहेंगे तो—।

उस समय कुछ कहना चाहिए इसलिए नीता बोल गई थी, पर अब सुचित्रा के दुरूह कष्ट को देखकर वह गंभीर रूप से सोच रही थी।

सचमुच ही सुशोभन ने सुचित्रा को दोनों हाथों से कस कर पकड़ लिया था। मायालता के इस इच्छा पत्र में अकेली वापस जाने के लिए नहीं आई है। सुबह खबर ही जाऊंगी' सुशोभन आर्तनाद कर उठे थे। सुचित्रा के पास आश्रय के लिए छूटना चाहते थे। उन्होंने देखा भी नहीं कि मायालता सुशोभन नीता या निरंजन कौन उन्हें देख रहा था, कौन नहीं।

और सुचित्रा? वह तो बिल्कुल अविचलित थी। पत्थर जिस तरह अपनी जगह पर पड़ा रहता है पत्थर की बनी पुतली सुचित्रा भी उसी प्रकार खड़ी थी। हां, सुचित्रा की आंखों में दो बूंदें छलक उठी थीं। उसकी आंखों की शिराएं फटकर लाल हो उठी थीं। लगता था वह भी दर्द से आर्तनाद कर उठेगी पर उसने अपनी तमाम वेदना को दोनों आंखों में बांध लिया था। नीता ने उन आंखों को पढ़ा था इसलिए वह सोच में डूबी हुई थी।

सोच रही थी वे लोग अगर उनसे इसी तरह की सुविधाएं लेते रहें तो उसका क्या हाल होगा? नीता का क्या हक था उन पर?

सुचित्रा जी तो उसी मकान में रहती थीं, जिस मकान में [illegible] की तरह वे सोच दें।

□

सुचित्रा कोई किताब पढ़ रही थी। नीता पास [illegible]

निकट बड़ी रोचक है क्या ?

सुचिन्ता चौंककर बोली—नहीं तो, क्यों ?

—दो एक बातें करनी थीं।

—बोलो।

—मैं कह रही थी, हमने आपके ऊपर बड़ा अत्याचार किया है। अब शायद पिताजी को लेकर चला जाना ही ठीक रहेगा।

सुचिन्ता मुंह उठा कर बोली—ठीक रहेगा, यह किसकी तरफ से बोल रही हो ?

—शायद हर तरफ से।

सुचिन्ता मृदु पर तीक्ष्ण भाव से बोली—हां, तुम्हारे पिताजी को वहां ले जाने से तुम्हारी ताई की गृहस्थी का कुछ कल्याण तो होगा ही।

सुचिन्ता के इस मनोभाव का अंदाज नीता को नहीं था। संकुचित होकर बोली—वह मैं जानती हूं। पर आपकी तकलीफ को मैंने अपनी आंखों से देखा है। ताई वगैरह को जब एक बार पता लग गया है तो वे लोग बार-बार आकर तंग करेंगे।

—अच्छी बात है। असली हालत को समझ सकेगी।

नीता कातर भाव से बोली—यह आप नाराज होकर बोल रही हैं बुआ ?

—नाराज ! सुचिन्ता हंस पड़ी। हंस कर ही बोली—नाराज-वाराज मैं नहीं हूं।

—यह आपका बड़प्पन है। इसके अलावा मैंने सोचा था कि—खैर छोड़िए। अब मैं समझती हूं, लोक-लज्जा का इतना बोझ उठाना बड़ा कठिन काम है। पिताजी को लेकर मैं वापस दिल्ली ही चली जाऊंगी। और आठेक महीने के बाद सागर विलायत से वापस आ जाएगा। मुझे हिम्मत मिलेगी, सहायता मिलेगी।

सागर के बारे में सारी बातें सुचिन्ता को सुशोभन ने ही बताई थीं। एक बार सुचिन्ता ने नीता की शादी की बात उठाई थी। सुशोभन खुशी से उछलकर बोले थे—तुम क्या समझती हो सुचिन्ता, नीता के लिए मैंने लड़का नहीं ढूंढ़ा है ? राजकुमार जैसा लड़का है। नीता, तू सच-सच बता, तूने तो उसे देखा है, राजकुमार समान है न ?

—क्या कहते हैं, पिताजी ? काला तो है। नीता मुस्करा कर बोली थी।

सुशोभन तुरन्त भन्ना उठे थे—काला है तो क्या हुआ ? काले लोग क्या आदमी नहीं होते। सुचिन्ता के उन गोरे लड़कों से बहुत अच्छा है।

—उफ पिताजी ! इस बीच सुचिन्ता बुआ के लड़कों की बात कैसे आई ?

सुशोभन तुरन्त नरम पड़ गए, बोले—नहीं उठानी चाहिए क्या ?

—नहीं।

—अच्छी बात है। उस लड़के का नाम क्या है नीता ?

—आप ही सोचकर बताइए न ?

सर हिलाकर सुशोभन बोले,—याद नहीं आ रहा है।

उसके बाद सुचिन्ता ने सारी बातें नीता से पूछी थी। सुनकर सुचिन्ता का चेहरा खिल उठा था।

नीता हैरान रह गई थी। सुचिन्ता की इतनी खुशी का कारण वह समझ नहीं पा रही थी। सुशोभन की लड़की का भविष्य इतना उज्जवल था, यह जानकर वह प्रसन्न हुई थी, या और कुछ ?

सुचिन्ता भी खुद नहीं समझ सकी कि नीता का रिश्ता तय हो गया है, यह जानकर उसकी छाती से पत्थर जैसा भार क्यों उतर गया था। सुचिन्ता के लड़के इस मायावी लड़की से बच निकले, इसलिए सुचिन्ता खुश थी या वह खुद भी मुखर्जी और मित्र के द्वन्द्व से पीड़ित हो रही थी ? क्या वह सोच रही थी कि उनके अलौकिक प्रेम को इस प्रकार का स्थूल रूप देने से बढ़कर कुत्सा चीज और नहीं होगी। सुशोभन और सुचिन्ता समधी-समधिन बनें, इससे कुत्सित और क्या हो सकता था ?

इसलिए नीता के जीवन की यह नई खबर उसे मुक्ति के स्वर समान सुनाई दी। किसलिए क्या हुआ, यह सुचिन्ता या नीता किसी को नहीं मालूम था। सिर्फ सुचिन्ता पहले से भी अधिक शान्त और स्थिर बन गई थी। पर थी वही स्नेह और ममता की बात भी [illegible] थी। इसलिए नीता अब स्नेह [illegible] नहीं—[illegible] के आगे [illegible] हिम्मत किसकी।

पर सुचिन्ता नीता की [illegible]—[illegible] के [illegible] होता, उसे [illegible] नहीं किया [illegible]

मगर सुशोभन किसके भरोसे दिल्ली जाएंगे ?

नीता विस्मय से बोली—लेकिन पहले तो पिताजी दिल्ली में ही थे। किसके भरोसे थे ? उस समय तो इससे भी खराब हालत थी।

सुचिन्ता दृढ़ता के साथ बोली – उस हालत को दुबारा न्यौता देने की क्या जरूरत है ? इसके अलावा यहां इलाज चल ही रहा है। नया इंजेक्शन अभी-अभी शुरू हुआ है। इस समय मैं सुशोभन को नहीं जाने दे सकती।

सुचिन्ता क्या अपने अधिकार का इस्तेमाल कर रही थी ? क्या सुचिन्ता लज्जा की चोट सहकर पत्थर हो गई थी, या पागल के साथ रह कर पागल ?

नीता सुचिन्ता के इस रूप से डरती थी। इसलिए रूखे स्वर में बोली —और अगर यहां रहना मुझे ही अच्छा न लगे ?

—दुनिया का हर काम किसी एक से अच्छा लगने के लिए नहीं होता है।

नीता बोली—मैं तो आपके लिए ही ऐसा कह रही थी।

सुचिन्ता भन्ना पड़ी—मेरे लिए ? तुम मेरे लिए सोच रही हो ? इसकी अब मुझे जरूरत नहीं नीता। मैंने अपना रास्ता खुद चुन लिया है। सुशोभन को मैं ठीक करूंगी, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

—इसी प्रतिज्ञा को लेकर मैं भी आई थी बुआ—नीता म्लान स्वर में बोली।—बीच बीच में बड़ी उम्मीद भी बँध रही थी, पर अब लगता है सब बेकार है। और इसके लिए आप जो चुका रही हैं—।

सुचिन्ता स्थिर भाव से बोली—चुकाना तो पड़ेगा ही नीता, दुनिया में कौन सी चीज यों मिलती है कहो ? पर यह बात सही है कि किस वस्तु की क्या कीमत है, यह हम हमेशा तय नहीं कर पाते। किसी कठिन परीक्षा में पड़ने पर ही चीजों की असली कीमत का पता लगता है। ऐसी ही एक परीक्षा मेरे सामने आई है। मैं झूठ नहीं बोल रही हूँ नीता। एक पल के लिए तो मेरी आंखों के सामने अँधेरा छा गया था। जो हाथ व्याकुल होकर मुझसे सहारा मांग रहे थे, उन्हें धक्का देकर एक बार मैंने हटाना भी चाहा था। पर एक क्षण के लिए ही। तुरन्त झूठी शर्म का मेरा पर्दा हट गया और मैं सच को पहचान गई।

नीना धीरे से बोली—उस समय यदि धक्का देकर बाप हटा देती तो उस धक्के से इतने दिनों की साधना चकनाचूर हो जाती। पिताजी के अच्छा होने की उम्मीद हमेशा के लिए टूट जाती। इतनी बड़ी मानसिक चोट पिताजी—।

—हाँ नीना ! ठीक यही बात मेरे दिमाग में भी आई। उस समय उन्हें धक्का देना ठीक उतना ही निष्ठुर काम होता जितना अपने को बचाने के लिए सड़ी नाव से दूसरे यात्री को धक्का देना। असल में किसी भी काम का कुछ भी नाम क्यों न दो, नीना, अगर उसकी जड़ पकड़ कर सोचो तो देखोगी कि वहाँ भी स्वार्थ है। मैं क्यों समाज विरोधी कोई काम नहीं कर सकती ? समाज से मुझे प्यार है इसलिए ? नहीं नीना यह बात नहीं। हम नहीं कर सकते क्योंकि हमें स्वयं से अधिक प्यार है। ऐसा करने से हमारी बदनामी होगी, इसलिए हम चुप बैठ जाते हैं।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद नीना लम्बी साँस छोड़ कर बोली—फिर भी बुआ, शायद दिल्ली चला जाना ही ठीक रहेगा। अगर श्यामपुकुर से वे लोग अक्सर आते रहे तो पिताजी की हालत और भी बिगड़ जाएगी। सुबह तो वे इतने डर गए कि अभी तक सो रहे हैं।

—नींद तो अच्छी बात है। डाक्टर भी नींद की दवा देते हैं।

—वो दूसरी बात है। यह तो मानसिक थकावट है।

—ठीक है। मैं सुविमल दा वगैरह को समझा कर कह दूंगी।

नीना बोली—आप लोग अच्छे-भले थे। ख्वामख्वाह मैंने पुष्पन तारे की तरह आकर सारा कुछ तहस-नहस कर डाला।

—अपने को निमित्त समझ कर कष्ट पाने से कोई फायदा नहीं है नीना ! जो होना होता है, होकर ही रहता है। भाग्य अपनी गति पर आप ही चलता है।

—नींद से उठकर पिताजी क्या खाएँगे बुआ ? धीरे धीरे सुनील की सम्पूर्ण सेवा का भार सुचित्रा ने अपने हाथों में ले लिया था।

—फल खाने से इधर वे कतराने लगे हैं। इसलिए आज एक और किस्म का नाश्ता बना कर रखा है।

—और किस्म का ?

—हां, प्लेन डोसा और खीर।

—अरे! आप यह सब बनाना जानती हैं? पहले जब पिताजी ठीक थे, वे इस तरह के खाने की बातें किया करते थे। कहते थे, उनकी बुआ ये सब चीजें बड़ा अच्छा पकाती थीं। एक बार दशहरे के समय पिताजी श्यामपुकुर आए तो उन्होंने भाभी से कहा—भाभी! बुआ की तरह डोसा और चावल की मिठाई बनाना। पर ताई ने उनकी बात हंस कर उड़ा दी। बोली, यह सब खेतों में चरने वाले लड़के को अच्छा लगता था। अभी केक और पुडिंग खाओ।

—पिताजी के अल्हड़पन को तो आप जानती ही हैं। वे फिर भी अड़े ही रहे। बोले—नहीं भाभी, तुम्हें बनाना ही पड़ेगा। देखना मुझे कितना पसन्द आएगा।

ताई बोली—जब से गांव से यहां आई हूं, वह सब कुछ भूल चुकी हूं।

—मुझे बड़ा मन था कि मैं खुद सीख कर बना कर पिताजी को खिलाऊं पर किससे सीखती, कहिए? अब मैं आपसे सीख लूंगी बुआ।

सुचिन्ता थोड़ा मुस्करा कर बोली—असल में बहुत सी चीजों को हम अच्छा लगने के भाव से पालते हैं। किसी चीज के अच्छा लगने के बाद उसे स्मृति के डिब्बे में सुख के रस में भिगो कर रख छोड़ते हैं और सोचते हैं ऐसा तो और कहीं होता ही नहीं। जब तक वह चीज डिब्बे में बन्द रहती है, उसका रूप भी बना हुआ रहता है। उसका रोमांच बना रहता है, पर जैसे ही हम उसे निकाल कर नए सिरे से उसका उपभोग करना चाहें तो सारा का सारा ही टूट कर बिखर जाता है, विकृत हो जाता है। बचपन की याद भी ऐसी ही एक चीज है। हालांकि हर क्षेत्र में यह बात लागू नहीं होती। दुबारा उपभोग कर पाना भी एक कला है। यह कला जिसे मालूम है, वह सब कुछ को सुन्दर बना सकता है।

दोनों की बातचीत के बीच अचानक एक डरावनी सी आवाज गूंजी—नीता! नीता!

नीता और सुचिन्ता दोनों ही दौड़े। जाकर देखा तो सुशोभन बिस्तर पर बैठ गर्दन तक एक चादर लपेट कर पहले की तरह व्याकुल, असहाय

दृष्टि से देख रहे थे।

—क्या बात है? सुचिन्ता ने पास आकर सहज भाव से पूछा।

—वे लोग चले गए? सुशोभन फुसफुसाए।

—कौन? कौन लोग चले गए?

—वे लोग, जो मुझे पकड़ कर ले जाने के लिए आए थे।

नीता कुछ कहने जा रही थी, उसके पहले ही सुचिन्ता खिलखिलाकर हँसकर बोली—तुम्हें कौन पकड़ने आया था? कैसी बातें करते हो सुशोभन! इतनी उम्र हो गई है और मजाक भी नहीं समझते?

—मजाक? सुशोभन हतप्रभ-सा देखते रहे।

—बिल्कुल मजाक था। वह तुम्हारी भाभी होती है न! और भाभी मजाक नहीं करेगी? पूछो नीता से। इतनी सी लड़की, वह भी जानती है।

सुशोभन ने धीरे से चद्दर उतारी। फिर बोले—नीता, सुचिन्ता ठीक बोलती है। है न?

—हाँ पिताजी! बुआ हमेशा ठीक बोलती हैं।

—तो फिर वे लोग मुझे पकड़ कर नहीं ले जाएंगे?

—कतई नहीं।

—वे लोग चले गए?

—कब के।

—गुस्सा करके तो नहीं गए? सुशोभन फिर व्याकुल हो उठे।

—लो, कितने आश्चर्य की बात है। गुस्सा क्यों करेंगे? सुचिन्ता बोली—देखा नहीं! वे लोग हमसे कितनी अच्छी बातचीत कर रहे थे।

—नहीं! उस घर की बड़ी बहू तुम्हें डाँट रही थी।

—तुम न जाने क्या क्या कहते हो, सुशोभन। बड़ी बहू की बातचीत करने का ढंग ही वैसा है। तुम्हें याद नहीं? सबसे तो चिल्ला-चिल्ला कर ही बातें करती है। मोहन ने क्या तुम्हें डाँटा?

—मोहन! मोहन! मेरा वह भाई? सुशोभन चिल्लाकर बोले—वह बड़ा अच्छा लड़का है।

—इसीलिए तो कह रही थी। वे लोग सभी बड़े अच्छे हैं।

—नहीं ! यही यह अच्छी नहीं है। वह मुझे पकड़कर ले जाएगी।

इस बार सुचिन्ता गम्भीर हो गई। बोली—मेरी बात पर तुम्हें भरोसा नहीं है सुशोभन ? मैं जो तुम्हें कह रही हूँ। मेरे पास से तुम्हें कोई छीन कर नहीं ले जा सकता।

—नहीं ले जा सकता ? कोई भी नहीं ले जा सकता ?

—नहीं। कोई नहीं ले जा सकता। मेरी बात का यकीन करो। फिर धीरे से सुशोभन की पीठ पर हाथ रख सुचिन्ता और भी गहराई के साथ बोली—सिर्फ यदि तुम खुद हो—।

पर उसकी मृदु बात सुशोभन के कानों में नहीं पहुँची। अचानक वे बोले— सुना तुमने नीता ?

—हाँ, पिताजी सुना।

—उफ ! मैं इतना डर गया था। मुझे क्या मालूम था कि मेरे साथ कोई मजाक कर रहा है। मुझे क्या मालूम कि सुचिन्ता की ताकत से कोई नहीं छीन सकता। मुझे खाने के लिए कुछ दो सुचिन्ता। कब से भूख लगी है। डर के मारे किसी को बुला नहीं पा रहा था। चद्दर में छुपकर बैठा था।

आतंक से छुटकारा पाते ही सुशोभन खुशी से विह्वल हो उठे। खाने की चीजें देखकर कुर्सी टेबल ठोक-पीट कर और भी खुशी जाहिर करने लगे। बोले—नीता ! नीता ! दौड़ कर आकर देख। कहाँ है सुचिन्ता के से लड्डू ? कहाँ गये सब के सब ? जिन्दगी में कभी देखा भी है ऐसा खाना ? ये हमारे दिनाजपुर की चीज है। यह सिर्फ मैं और सुचिन्ता जानते हैं। लेकिन सुचिन्ता तुम बताओ तो, और भी शायद कोई जानता था ?

—तुम्हारी बुआ, दादी, ताई सभी जानती थीं।

—ठीक ! ठीक ! तुम ठीक कहती हो। उत्साह के मारे सुशोभन चिल्लाने लगे—सुचिन्ता, सब जानती है। इसलिए तो मैं सुचिन्ता को इतना प्यार करता हूँ।

—और मुझे प्यार नहीं करते पिताजी ? नीता ने पूछा।

सुशोभन घबरा कर बोले—यह कैसी बात है ? तू कहती क्या है

नीता ? असल में तू समझ नहीं रही है। तू माने तू तो···।

—हाँ पिताजी, मैं समझ गई हूँ। अब आप खाइए। अभी तो आप कह रहे थे कि बड़ी भूख लगी है।

—लगी तो है ही। देख न ! कितना खाता हूँ। खाने पर बैठते ही पूरा का पूरा एक प्लेन डोसा मोड़ कर मुँह में भर कर चबाते हुए बोले —बिल्कुल वही स्वाद। देख सुचिन्ता, अब मैं कुछ भी नहीं भूल रहा हूँ। मुझे सब याद है। वो जो दादी थी, जो हमें—क्या तो नाम से पुकारती थी—?

—तुम्हारी दादी 'भानु' 'भना' कहकर तुम्हें पुकारती थी।

—आह ! तुमने क्यों कहा सुचिन्ता ? मैं तो कहता ही, तुम चुपचाप सुनती रहो। मैं सब ठीक-ठाक बताता जाऊँगा। दादी मुझे 'भना', 'भानु' कह कर पुकारती थी। छत से पुकार कर कहती थी 'भानु, मोहन को लेकर एक बार आना। मैं मिठाई बना रही हूँ।' सुनते ही मैं छलांग लगा कर पहुँच जाता था। और मोहन को बुलाने में भी देर करता था। पर मोहन कौन है नीता ?

—वाह ! छोटे चाचा हैं न हमारे। आपके छोटे भाई।

—हाँ ! हाँ ! सुचिन्ता के जैसे ढेर सारे लड़के हैं उसी तरह हमारे दिनाजपुर के घर में बहुत सारे लड़के थे। पर मैं क्या कह रहा था ?

सुचिन्ता थोड़ा जोर देकर बोली—तुम खुद सोचो न, तुम क्या बोल रहे थे। अभी तो कह रहे थे कि सब कुछ तुम्हें याद आ रहा है।

—आ तो रहा ही है, पर नीता मैं क्या बोल रहा था—?

नीता हँसकर बोली—जब छोटे भाई को छोड़ कर आप अकेले ही पेटू की तरह दादी के पास मिठाई खाने के लिए भागते थे।

—ओ···हो···हो ! सुशोभन हँस पड़े। हँसी रुकती ही नहीं थी। बहुत देर के बाद आँख-मुँह लाल कर बोले—पेटू तो मैं था ही। चावल भी भरपेट खा नहीं सकता था। बुआ को तंग करता था, तिल के लड्डू दो, चिवड़े की चक्की दो। ऐसे कुछ-कुछ माँगता ही रहता था। बुआ कहती 'भना एक लड़का पैदा हुआ घर है मे।'

नीता हँस-हँस कर लोट-पोट हो रही थी।

—घर में इतना खाकर भी जो दादी मुझे 'भानु' कह कर पुकारती थी, उसे जाकर तंग करता था।

नीता बोली—आप तो खूब अच्छी तरह कहानी सुना सकते हैं पिताजी?

—सकता तो हूँ ही। अब तो मैं कुछ भूलता नहीं।

—आप फिर कभी कुछ भूलेंगे भी नहीं पिताजी।

—अच्छा! अच्छा! पर सुचिन्ता, तुम कुछ क्यों नहीं बोल रही हो?

—सुन रही हूँ।

—लेकिन उस समय तो तुम खूब चहकती थीं। दादी बोलती थी 'तू जरा चुप रह चिन्ते! चुप रहने का क्या लेगी बोल?' बोलती थीं, 'लड़की नहीं यह तो गाने की मशीन वाला बक्सा है। हरदम चाभी भरी ही रहती है।'

—हाँ, कहती थी। तुम गलत नहीं बोल रहे हो सुशोभन।

—सुचिन्ता! तुमने कब मेरी पीठ पर हाथ रखा? सुशोभन ने पूछा।

—मिठाई खाने पर पर बातें हो रही थीं। सुचिन्ता सहम कर बोली।

—वो तो हो रही थीं। पर जब तुमने मेरी पीठ पर हाथ रखा तब एकाएक मानों दरवाजा खुल गया। एक गुत्थी सुलझ गई। ऐसा क्यों हुआ, बोलो तो?

सुचिन्ता शान्त भाव से बोली—ऐसा होता है। वह मेरी इच्छा-शक्ति की ताकत है।

—अब तक तुम अपनी इच्छा-शक्ति को काम में क्यों नहीं लाई सुचिन्ता? मेरी पीठ पर हाथ क्यों नहीं रखा? तुम तो जानती हो, दादी जब पुकारती थी, मैं सिर्फ लड्डू खाने के लालच से वहाँ नहीं जाता था। मैं तुम्हारे लिए जाता था। तुम्हें देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ता था। लगता था मैं मर जाऊँगा। तुम्हें तो सब कुछ मालूम है।

सुचिन्ता बोली—भूल गई थी सुशोभन! उसे भूलकर ही मैंने भूल की थी। पर अब याद रखूँगी। अब जो ठीक है, वही करूँगी।

सुचिन्ता ने धीरे से सुशोभन की पीठ पर फिर हाथ रखा। इसमें यौवन की ताप नहीं थी, क्या इसलिए यह स्पर्श व्यर्थ था?

मां जब छूती है तो क्या यह स्पर्श अनुभूति के गहनतम स्तर तक नहीं पहुंचता? और प्रिया के मन में क्या मां का हृदय नहीं होता?

□

कोई चार दिन के बाद सुविमल आए। साथ में अशोका भी थी। उनके आने पर सब लोग घबरा गए थे। पर सुशोभन शान्त बने रहे। नीता और सुचिन्ता हैरान रह गए। सुविमल के बैठते ही सुशोभन बोले—लोग जिन्हें बड़े भैया कहते हैं, ये वही हैं न?

सुविमल हंस कर बोले—सिर्फ लोग क्यों, तू भी तो कहता है।

—हां, हां! मैं भी तो कहता हूं। है न नीता?

—हां पिताजी!

—भैया दुबले हो गए हैं। सुशोभन बोले।

—दुबला तो हूंगा ही। बूढ़ा जो हो रहा हूं।

—बुड्ढे क्यों होओगे? सुशोभन नाराज हुए। बूढ़े होने की जरूरत क्या है? सुचिन्ता भी यही कहती है। एक दिन मैंने कस कर डांट दिया। तब से डर गई है। फिर नहीं बोलती।

सुचिन्ता इस बार सकुचित नहीं हुई। सहज भाव से बोली—भैया को भी डांट दो न। फिर नहीं कहेंगे।

—नहीं, नहीं! बड़े भैया को थोड़े ही डांटा जाता है? फिर अशोका की तरफ देख कर बोले—यह क्यों चुपचाप बैठी है?

नीता हंस कर बोली—यह कौन है, पिताजी?

सुशोभन सबको हतप्रभ बनाकर बोले—तूने मुझे क्या पागल समझ रखा है नीता? यह कौन है, मैं नहीं जानता? यह तो छोटी बहू है। बड़ी भली लड़की है। समझी सुचिन्ता! उस घर की बड़ी बहू की तरह नहीं है।

सुनकर अशोका शर्म से लाल हो उठी। सुचिन्ता और नीता भी सकुचित हुईं, पर सुविमल निर्विकार बने रहे।

सुचिन्ता थोड़ा मुस्कराकर बोली—बातचीत बड़े लापरवाह ढंग से

करते हैं।

सुभिमल बोले—वो तो होगा ही। पर संसार में एकाध के लापरवाह और पागल रहने पर बाकी लोगों की असलियत पकड़ में आ जाती है। तुम्हारा क्या कहना है सुचिन्ता? हां, तुम्हारा भी तो एक पुकारने का नाम था न?

सुचिन्ता बोली—सभी मुझे चिन्ता कहकर पुकारते थे। 'सु' छोड़ कर पुकारते थे। शायद मेरे गुणों के कारण। आपकी बुआ तो मुझे 'दुश्चिन्ता' के नाम से पुकारा करती थीं।

—ठीक! ठीक! मुझे भी ऐसा ही कुछ याद आ रहा है।

—बुआजी कहती थीं, 'लड़की नहीं डाकू है। उसे देखकर मुझे दुश्चिन्ता होती है।'

नीता हँस कर बोली—सच में बुआ, आप ऐसी थीं?

—गवाह तो सब सामने हैं। पूछ ले।

—पर आपको देखकर विश्वास करना कठिन है।

—उस 'मैं' के साथ इस 'मैं' का क्या रिश्ता है, बोल? वह सुचिन्ता तो कब की मर चुकी है। जन्मान्तर को तुम लोग नहीं मानती होगी, पर मैं मानती हूँ। कितनी बार जन्म लेकर और कितनी बार मर कर मैं यहां आकर पहुँची हूँ। न मालूम और कितनी बार जन्मूंगी और मरूंगी। पर लोग सुविधा के कारण यही बोलेंगे, 'यह सुचिन्ता है।'

सुशोभन झल्ला उठे—मरने की बात क्यों करती हो सुचिन्ता! यह तुम्हारा बड़ा दोष है। देखो तो, ये लोग तो ऐसी बातें नहीं करते।

—ये लोग अच्छे लोग हैं। सुचिन्ता हँस पड़ी।

—और तुम खराब हो? कौन कहता है, जरा मैं भी तो देखूं।

—तुम ही तो कह रहे हो।

—क्या आश्चर्य है। मैं तुम्हें क्यों खराब बताऊँगा। छोटी बहू सामने है। वह झूठ नहीं बोलेगी। वह कहे कि मैंने तुम्हें खराब कहा है?

अचानक अशोका बोली—मैं झूठ नहीं बोलूंगी, यह बात आपसे किसने कही मंझले भैया?

—कहेगा कौन? सुशोभन उत्तेजित हो उठे—मैं क्या तुम्हें नहीं

जानता ? पर मंझला भैया कौन है, छोटी बहू ?

—वाह ! आप ही तो मंझले भैया हैं ?

—मैं ? मैं मंझला भैया हूं ? अब तुम गलत बोल रही हो, छोटी बहू। मझले भैया तो उस घर में, उस बड़ी बहू के घर में रहते थे।

सुविमल हल्के मजाक से बोले—उस घर का मंझला भैया वह क्या करता है ?

—क्या करता है ? सुशोभन उदास हो गए। बोले—क्या करता है नीता ?

नीता गम्भीर होकर बोली—मैं क्यों बोलूंगी ? कहने पर तो आप नाराज होते हैं। अब आप खुद ही सोचकर बताइए।

—ठीक है। मैं जाता हूँ। अकेले बैठ कर सोचूंगा।

—ऊँहूँ ! जाने नहीं दिया जाएगा। हम लोग क्या और कहीं जाकर सोचते हैं ? यहीं पर बैठकर सोचिए न पिताजी।

सुविमल बोले—रहने दो। नाहक दिमाग पर जोर पड़ेगा।

नीता धीमी आवाज में बोली—नहीं ताऊजी, डाक्टर ने कहा है कोशिश करवाने के लिए। जिस तरह तालाब में काई जम जाती है, उसी तरह ऐसी बीमारी में विस्मृति की एक परत सी पड़ती है। उसे ही जोर देकर दिमाग से हटाना पड़ेगा। जितने दिन गुजरेंगे, दिमाग सड़ना नहीं चाहेगा। जड़ होता जाएगा। दिमाग को मेहनत करवाने के लिए कभी-कभी जोर देना ही पड़ता है।

—पहले से तो थोड़े अच्छे हैं ?

—बहुत बहुत। जमीन-आसमान का फर्क है। यहां तक कि उस दिन भी जिस दिन ताईजी यहाँ आई थीं।

सुशोभन नाराजगी के साथ बोले—तुम लोग इस तरह धीरे-धीरे क्यों बातचीत कर रहे हो, मुझे डर लगता है।

—डर ? डर क्यों लगेगा ?

—वाह ! तुम लोग धीरे-धीरे बातें करोगी और मुझे भी डर नहीं लगेगा ?

सुचिन्ता बोली—तुम भी तो उनकी नहीं सुन रहे उन लोगों का

मंझला भैया क्या करता है, तुमने बताया नहीं ?

—क्यों नहीं बताऊँगा ? बता तो रहा हूँ। मंझला भैया सभी नटखट बच्चों को लेकर गाड़ी में सवार होकर घूमने जाता है और…।

अशोका रुक-रुककर बोली—और उन बच्चों को आप चाकलेट खरीद कर खिलाते थे, गुड़िया खरीद देते थे, सरकस दिखलाने ले जाते थे।

—ठीक ठीक ! यू आर राइट। और भी बोलती जाओ छोटी बहू। मंझला भैया मुझे बहुत पसन्द आ रहा है।

—पर उस समय तो आप ही हमारे मंझले भैया थे।

—मैं ?

—हां, आप ही तो थे हमारे मंझले भैया। गाड़ी से उतरते ही कहते थे, 'छोटी बहू तुम्हारे बच्चे तो डाकू हैं डाकू, सिर्फ डाकू।'

अचानक सुशोभन टेबल पर घूंसा मार कर खुश होकर बोले—मैं जाऊँगा।

—जाएँगे ? कहां पिताजी ?

—कहां ? उनके घर ! उन बच्चों को मैं प्यार करता हूं। नीता, मेरी साफ धुली हुई कमीज कहां है ? जल्दी से लाकर दो। छोटी बहू चलो, जल्दी चलो—।

फिर अचानक वे अशोका के पास आकर बोले—छोटी बहू, चलो भाग चलें। नहीं तो ये लोग हमें जाने नहीं देंगे।

—ठीक है, चले जाना। पहले इन लोगों को चाय पीने दो। बैठने दो। गपशप करने दो।

—नहीं नहीं। सुशोभन एकाएक चिल्ला उठे—तुम्हारा मतलब खराब है, सुनिन्दा। तुम मुझे उन लोगों के पास नहीं जाने देना चाहती। पर मैं भी तुम्हारी एक नहीं सुनूंगा। जाऊँगा ही। नीता गाड़ी बुलवाओ, जल्दी करो नहीं तो मुश्किल हो जाएगी। कह कर टेबल पर कस कर एक मुक्का मारा सुशोभन ने।

सुनिन्दा झट से बोले—पर उस घर में जो बड़ी बहू रहती है सुशोभन। वह तुम्हें पकड़ लेगी।

—नहीं वह तो मजाक था। मजाक नहीं समझते बड़े भैया ?

फिर चप्पल डालकर सुशोभन फटाफट नीचे उतरने लगे।

—यह तो बड़ी मुश्किल है। पहले तो लगा'''।

नीता बोली—किस बात से क्या हो जाता है। पर बुआ, पिताजी तो नीचे उतर ही गए। अब क्या होगा?

सुचिन्ता उठा। दो-चार सीढ़ियाँ नीचे उतर कर कठोर होकर बोली—तुम यहीं रहोगे। और कहीं नहीं जाओगे।

सुशोभन रुक गए। बोले—मैं यहीं रहूँगा? और कहीं नहीं जाऊँगा?

—हाँ, मेरी यही मर्जी है।

—तुम्हारी यही इच्छा है तो फिर क्या है? नीता, गाड़ी वापस कर दो। धप् धप् करते हुए सुशोभन वापस ऊपर आ गए। धम् से बैठ कर बोले—इतनी जल्दी गाड़ी बुलवाने के लिए तुम्हें किसने कहा था नीता? देख रही हो न, सुचिन्ता की मर्जी नहीं है।

□

मायालता एक तरह से सड़क पर खड़ी होकर उनकी राह देख रही थी। सुविमल के वापस आते ही पूछा—क्यों छोटी बहू, इच्छा पूरी हुई?

—हुई दीदी। अशोका बोली।

—बड़ा समय लगा भाई। सुचिन्ता बाला ने खूब खिलाया-पिलाया होगा।

—हाँ।

—उसके बाद? 'मुझे पकड़ने आ रही है' कहकर तुम्हारा मंझला भैया चिल्लाया-विल्लाया नहीं?

अशोका अपने जेठों को 'भैया' पुकारती थी, इसलिए मायालता ताना कसे बिना नहीं छोड़ती।

—बड़े भैया भी तो थे दीदी। क्या बातचीत हुई, यह उनसे सुन लीजिएगा। मुझे तो अभी उन टर्रेंत बच्चों को संभालना है। कहकर अशोका आगे बढ़ गई।

—देखा! मायालता क्षोभ के साथ व्यंग्य मिलाकर बोली।

सुविमल जम्हाई लेकर बोले—हां, देखा।

—वह हर वक्त मेरी अवहेलना करती है।

—अवहेलना नहीं करे, ऐसा मंत्र वह कहां सीखेगी, बड़ी बहू ?

—मंत्र-तंत्र, झाड़-फूंक की मुझे जरूरत नहीं। वह तुम्हारी सुचिन्ता सीखे, जिसे झाड़-फूंक करके गैर मर्द को आंचल में बांधने की इच्छा इस उम्र में भी है।

सुविमल सूक्ष्म हंसी हंस कर बोले—गैर मर्द न सही, घर पर भी तो एक—।

—हां, वैसा पुरुष हो कि आंचल में बांध सकूं ?

—कौन कैसा आदमी है, इसका हिसाब आसानी से नहीं होता बड़ी बहू। कभी-कभी तो तमाम जिन्दगी भर पता नहीं चल पाता। वैसा आंचल मिलता तो क्या होता, क्या नहीं होता, बताना बड़ा मुश्किल है।

—फिर घुमा-घुमाकर बातें कर रहे हो ? इससे तो अच्छा कि किसी मूर्ख किसान से शादी होती। कम से कम दो चार सुख-दुख की बातें तो कर सकती। मायालता तुनक उठी —जाकर तीन घंटे बिता आए। भाई को कैसा देखा, यही बताओ।

—बहुत बढ़िया। उनसे तो मुझे ईर्ष्या होने लगी है।

—ईर्ष्या ?

—हां, ईर्ष्या।

—पागल बनने का मन कर रहा है ? मायालता कड़वी सी हंसी हंसी।

—इसमें बुरा क्या है ? सुविमल भी व्यंग्य से बोले।

—पर ऐसे वैसे पागल होने से थोड़े ही चलेगा। प्रेम में पागल बनना पड़ेगा, तभी तो कोई सुख है।

—तुमने बिल्कुल ठीक कहा। मैं तो यों तुम्हें बेवकूफ समझता रहा था।

—यो तो समझोगे ही। खैर, फालतू बातें छोड़कर अब काम की बातें करो।

—कहो ?

—मामला क्या समझ में आया ? रुपये-पैसे सब उस सुचिन्ता की तिजोरी में जा रहे हैं, हैं न ?

—अरे ! यह तो पूछना ही भूल गया । बड़ी गलती हो गई ।

—ठीक है ! अभी जितना चाहो मुझ पर व्यंग्य कस लो । बाद में समझोगे । सुचिन्ता के इतने लाड़ का कारण तुम लोग भले ही न समझो पर मैं खूब समझती हूं । मंझले देवरजी की वही तो इकलौती एक लड़की है । उसे अगर पटा कर वह अपने घर ले आई तो देवरजी का सब कुछ उसी घर को जाएगा । और तुम मुंह फाड़े देखोगे कि तुम्हारे घर की लड़की कायस्थ सास के पैर दबा रही है ।

—यह तुम गलत कह गई, बड़ी बहू । इस युग में इसका रिवाज नहीं रहा । न सास और न ही सास के बेटे के, पैर कोई नहीं दबाता ।

—चलो मान लिया कि पैर नहीं दबाएगी । पर कायस्थ दामाद होने पर तुम लोगों का सर बड़ा ऊंचा होगा न ?

—सर ऊंचा रहे, ऐसी घटना हर समय घटती कहाँ है, कहो ?

—न होने दो । फिर भी । उफ ! कितने जेवर थे मंझली बहू के । कितने रुपये हैं, देवरजी के पास । सारा कुछ खाक में मिल जाएगा । पर तुम जान खोकर कैसे रहोगे, मैं तो यही सोच रही हूं । खैर, सुचिन्ता ने किस बेटे के साथ लड़की को पिरोया है ? बड़ा, मंझला या छोटा ? सुनने में तो आया है कि लड़की तीनों ही के साथ गुल्ली-डंडा खेल रही है ।

—अच्छा ! कहाँ से सुनी इतनी बातें ?

—हूं : । बुद्धि रहने पर मांगकर खाना नहीं पड़ता । नौकरानी को 'मिठाई खाओ' कहकर एक रुपया थमाया फिर टो-टो कर एक-एक बातें जान ली ।

—अच्छा । तुम वकील क्यों नहीं बनी, यही सोच रहा हूं । पर इतना समय तुम्हें मिला कैसे ?

—अगर यह पूछो तो यही कहूंगी भाग्यवान का बोझ भगवान् उठाता है । मैं जैसे ही उस घर से निकली तो देखा कि नौकरानी भी काम करके निकली । इशारे से उसे पास बुलवा लिया ।

सुविमल बोले—जब इतना कुछ जान लिया तो इतना भी क्यों नहीं

कर रखी थी। उसने सोचा था, वह शादी के बाद नीता को लेकर ही विदेश चला जाएगा। पर सुशोभन की बीमारी से सब कुछ गड़बड़ा गया था। सागर को अकेले ही विदेश जाना पड़ा। वहां जाकर उसने लिखा कि वह निर्दिष्ट समय के बाद ही भारत लौट सकेगा। सुशोभन की बीमारी जिस तरह की थी, उस तरह के मानसिक रोगी के बारे में कुछ नई चिकित्सा पद्धति सीखकर ही वापस लौटेगा। वहां से परामर्श और दवा आदि सागर भेज ही रहा था। सिर्फ जिस आश्रय तक सुशोभन को पहुंचाने के लिए सागर ने कहा था, पहले-पहल नीता को वह असंभव-सा काम लगा था।

एक असंभव, अस्वाभाविक, असामाजिक काम करने के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए। इसलिए नीता पहले पिता को दार्जिलिंग ले गई ताकि ठंडे शहर में उनकी हालत थोड़ी सुधर सके। पर वहां जाकर सुशोभन का डर और भी बढ़ गया था। हर समय नीता को कहते—देखो, देखो, गिर जाओगी। पहाड़ देखने के डर से अपनी आंखों को हाथों से ढककर रखने लगे।

उधर से सागर बार-बार लिख रहा था। लिख रहा था—महिला जब विधवा हैं तब घर की मालकिन वह खुद हैं, फिर क्यों इतना डर रही हो। जाकर देखो भी तो। मुझे तो नहीं लग रहा है कि इतनी व्याकुलता इतना प्यार केवल एकतरफा होगा। और भी बहुत-सी बातें लिखी थीं सागर ने।

अन्त में नीता ने मन में निश्चय कर लिया और एक दिन सुबह-सुबह अनुपम कुटीर के दरवाजे पर पहुंच ही गई।

पर नीता के जीवन की गाड़ी क्या यहीं रुक जाएगी? इस अनुपम कुटीर के अहाते में ही खत्म हो जाएगी?

सुशोभन की दशा में सुधार देखकर नीता के मन में थोड़ी आशा बंधी थी।

इस खबर को पाते ही सागर ने लिखा था—आशा है कि जब तक मैं लौटूंगा, तब तक तुम्हारे पिताजी बिल्कुल स्वस्थ होकर कन्यादान के लिए तैयार रहेंगे। डाक्टर पालित की राय के मुताबिक ही चलना। मानसिक

चिकित्सालय में भर्ती न करने का सुझाव देकर उन्होंने बुद्धिमानी की है। जिस रोग से दूसरों को कोई खतरा नहीं, वैसे रोगी को वहाँ भी डाक्टर अस्पताल में रखने के पक्ष में नहीं हैं।

सागर की चिट्ठी पढ़कर नीता ने सोचा था, खतरा क्या मारने-काटने वाले पागल से ही होता है? तनिक पागल भी क्या दूसरों के लिए अहितकर नहीं होता?

उस दिन नीता ने बहुत सोचा था। कई बार उसके दिमाग में आया था—सुचित्रा, बुआ को बड़ी हानि पहुँच रही है। और यह नुकसान मैं ही पहुँचा रही हूँ। फिर सोचती थी, थोड़े ही दिनों की तो बात है। फिर सब ठीक-ठाक हो जाएगा।

पर ठीक होने के बजाए सब गड़बड़ा गया।

टेलीग्राम निरंजन ने लाकर दिया था।

हाथ बढ़ाकर लेते समय नीता ने सोचा था, डरने की क्या बात हो सकती है। जरूर सागर ने मानसिक चिकित्सा सम्बन्धी कोई नई जानकारी या कोई दवा का नाम तार द्वारा सूचित किया होगा। फिर सोचा, हो सकता है, सागर लौट रहा है, इसी के लिए उसने तार दिया है। पर तार पढ़कर नीता पसीने-पसीने हो गई थी। अचानक मानो वह पढ़ना ही भूल गई हो। अक्षर अस्पष्ट-से दिखाई देने लगे। एक असहाय भाव उसकी दृष्टि से झलकने लगा।

नीता के नाम विदेशी टिकट की चिट्ठियाँ आती थीं, यह निरंजन को अब तक पता नहीं था। नीता के चिट्ठियों के बक्से की एक चाभी शुरू दिन से उसने अपने पास ही रखी थी। अचानक विदेश का तार देखकर वह एक बार तो चौंका, पर सोचा, जरूर किसी दवाई की कम्पनी का तार होगा। नीता ने कुछ जानकारी के लिए लिखा होगा और यह तार उसी का जवाब में आया होगा।

पर टेलीग्राम आज भी आम आदमी के मन में एक तो घबराहट पैदा करता ही है। इसलिए आते-आते वह नीता का चेहरा देखकर आ नहीं पाया। जिस मुखड़े को छूकर न जाने उसने कितने हजारों दाग कभी तीक्ष्ण तो कभी भूखी नजरों से देखा था।

कभी-कभी निरंजन की यह दृष्टि विद्रोही बनकर दुस्साहस का कोई काम करना चाहती थी। पर अनुपम कुटीर की शिक्षा व्यर्थ की नहीं था। इसलिए नीता निरंजन की उस दृष्टि को कभी नहीं पकड़ पाई थी। आज भी नीता की नजर उस पर नहीं पड़ी। उसने नहीं देखा कि कोई कितने आग्रह और उद्वेग से उसका चेहरा और चेहरे के भावों को पढ़ रहा था और हैरान हो रहा था।

टेलीग्राम पढ़कर नीता का पसीना-पसीना होना भी निरंजन ने हैरत-भरी नजरों से देखा। उसने गौर किया कि तार थामे नीता की उँगलियां थर-थरकर कांप रही थीं। निरंजन अवाक् हुआ, उत्कंठित हुआ, फिर भी कुछ पूछा नहीं।

पर नीता मान-मर्यादा, शर्म सब कुछ भूलकर बोली—देखिए तो यहाँ क्या लिखा है। ठीक से समझ में नहीं आ रहा है।

तार की भाषा साफ और सीधी थी, फिर भी नीता समझ नहीं पा रही थी। अर्थात् नीता विश्वास नहीं कर पा रही थी। उसे कष्ट हो रहा था, क्योंकि अब भी वह बच्ची ही थी। वह नहीं जानती थी कि प्यासे के पास से पानी छीन लेना ही विधाता का प्रिय खेल है।

तार पढ़कर निरंजन सूखी आवाज में बोला—सागर कौन है?

—है कोई। अधीर होकर नीता बोली—उसके बारे में क्या लिखा है वही कहिए।

निरंजन तीखी नजरों से नीता को देखते हुए बोला—आपने जो पढ़ा है ठीक ही पढ़ा है। मोटर दुर्घटना से बुरी तरह घायल होकर—।

—यहां पर क्या लिखा है?—हमेशा की हँसमुख नीता आर्तनाद कर उठी—सेन्स कभी नहीं लौटेगा?

निरंजन स्थिर भाव से बोला—बिल्कुल नहीं लौटेगा, ऐसा तो नहीं कहा है। सन्देह है, यही बताया है। पर सागर कौन है? शिशिर राय कौन है? आपकी सहेली और उसका पति?

—क्या बक रहे हैं पागलों की तरह? नीता निरंजन के हाथ से टेली-ग्राम छीनती हुई बोली—सागर मेरा दोस्त है, उसके साथ मेरी शादी पक्की हो चुकी है।

—फायदा ? आप इस समय अपने फायदे की बात सोच रहे हैं ?

—हां, सोच रहा हूं। फायदे नुकसान की बात सोचने का ऐसा मौका मुझे पहले कभी नहीं मिला। हमेशा हर पल मैं अपने लाभ का हिसाब ही बैठाता रहा। अब अचानक देखता हूं कि मेरे लिए लाभ नामक कोई शब्द ही नहीं था। शुरू से आखिर तक सिर्फ नुकसान ही नुकसान—।

—आप क्या कह रहे हैं, यह समझने की हिम्मत इस समय मेरे पास नहीं। अगर आप नहीं जा सकते तो फिर मैं अकेली ही जा रही हूं। कहकर तेज कदमों से नीता आगे बढ़ गई।

निरंजन ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। पीछे-पीछे चलते हुए बोला—अपने पिताजी की तरह पागल मत बनिये। इससे अच्छा होगा कि एक ट्रंक काल कर लीजिए।

—सलाह के लिए आपको धन्यवाद।

नीता सुचिन्ता के पास आकर खड़ी हो गई।

पर अकेले निरंजन ने ही नहीं, सुचिन्ता, निरुपम, इन्द्रनील सभी ने एक ही बात दुहराई।—जाओगी कैसे ? पागल हो गई हो क्या ?

पागल की लड़की भी पागल होगी, इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं थी। शायद भाग्य की निष्ठुरता से और आदमी के फायदे-नुकसान के हिसाब-किताब से नीता सच में पागल हो गई थी।

—मैं जाऊंगी ही। नीता अटल रही।

सुशोभन भी हैरान होकर बोले—कहां जाएगी ?

—सागर के पास।

—सागर ! सागर के पास ? सुशोभन निराश होकर बोले—वो कौन है ?

—पिताजी ? पिताजी, आप तो जानते ही हैं कि सागर कौन है। आप उसे कितना प्यार करते थे। कितनी बातें करते थे उससे। बातें करते-करते देर हो जाती थी। आप कहते थे, 'सागर खाना खाकर जाना।' आजकल आप इतनी बातें याद करते हैं और सागर को याद नहीं कर सकते ? आप सोचिए, पिताजी और'''और'''सोचिए।

सुचिन्ता पास आकर बोली—मैं तुम्हें बताती हूं सुशोभन। सागर

यह लड़का है जिसके साथ तुम—।

सुशोभन सुचिन्ता को रोककर बोले—तुम चुप रहो सुचिन्ता ! याद आ गया। सागर वह लड़का है जो नीता के साथ दूकान पर आ था, सूटकेस खरीदता था, बहुत सारी चीजें खरीदता था, वही सा सागर है।

—हाँ पिताजी ! वही सागर बीमार हो गया है।

सुशोभन विह्वल होकर बोले—पर सागर तो न मालूम कहाँ च गया है नीता ! अब तो वह आएगा नहीं।

—आएगा पिताजी। मैं उसे लिवा लाने के लिए ही तो जाना चा हूँ।

सुशोभन उसी भाव से बोले—पर मैं उतनी दूर नहीं जा स नीता।

—आप ? आप नहीं जाएँगे पिताजी। आप सुचिन्ता बुआ के रहेंगे।

—सुचिन्ता के पास। ठीक-ठीक। सुचिन्ता तो है। पर नीता, सुचि मुझे अकेली कैसे सँभाल सकेगी ?

सुचिन्ता बोली—सकूँगी सुशोभन। अकेली ही सँभाल सकूँगी। नीता—।

—अब और नहीं बुआ ! मैं जाऊँगी ही।

थोड़ा चुप रहकर सुचिन्ता बोली—यद्यपि तुम्हारा इस प्रकार का संकल्प मुझे एक पागलपन ही लग रहा है। नीता, मैं तुमसे झूठ बोलूँगी। मुझे तुम्हारा यह हठ बहुत अजीब-सा लग रहा है, पर हर देख रही हूँ कि तुम लोग इस आधुनिक युग की लड़कियाँ, रोज ही अस को संभव कर रही हो। और तुम लोगों की इस जिद और हिम्मत कारण पुरानी गाड़ियाँ भी कीचड़ में फँसे अपने पहियों को खींचकर नि लने की साधना में जुट गई हैं।

—बुआ, सिर्फ इस युग की बात क्यों करती हैं। सावित्री तो यम तक पहुँची थी, यह तो हमने आप ही लोगों से सुना है।

—सावित्री ! सुचिन्ता बोली—पर नीता, समाज ने सावित्र

सत्यवान के लिए दौड़ने का अधिकार दिया था।

नीता दृढ़ भाव से बोली—हर समय समाज हाथ पर कुछ डाल देगा, इस पर भरोसा कर बैठने से काम नहीं चलता बुआ ! कुछ अधिकार भगवान से छीनना पड़ता है।

—अधिकार भगवान से छीनना पड़ता है। सुचिन्ता ने यह वाक्य पहली बार इस उम्र में सुना था। पर भले ही उसने यह पहले नहीं सुना हो, पर सुचिन्ता को अपना अधिकार भगवान से अर्जित करने के लिए किसी ने अब तक मना तो नहीं किया था।

सुचिन्ता की सारी जिन्दगी एक अपराध बोध की भावना मन में लिए ही कट गई थी। बोझ से लदे उस आत्मा का ध्यान कर आज उसका सारा मन हाहाकार कर उठा। अचानक उसे नीता के प्रति एक अजीब ईर्ष्या-सी हुई। ईर्ष्या से पीड़ित उस मन से सुचिन्ता ने सोचा—बाप के पास पैसे होने से आदमी किसी भी लोक में जा सकता है।

बैंक में अगर कई हजार रुपए न रहते तो नीता में कहाँ से इतनी हिम्मत आती ? असंभव को संभव किस बल पर करती ?

इसके बाद एकाएक सुचिन्ता ने अपने आपको नीता से ईर्ष्या करते हुए पाया। सुशोभन की लड़की नीता ?

सुचिन्ता ने संसार को बहुत कम देखा था। इसलिए वह हैरान हो रही थी। ईर्ष्या अपने घर से ही शुरू होती है। सुशोभन की लड़की न होकर यदि वह सुचिन्ता की लड़की होती तो भी क्या ईर्ष्या उसे छोड़ती ?

आकाश में उड़कर नीता अपने प्रेमी की रोग पीड़ित शैय्या के पास जाकर खड़ी होगी, और सुचिन्ता उससे थोड़ी ईर्ष्या भी नहीं करेगी, ऐसा कैसे हो सकता था ?

नीता ने असंभव को संभव करके ही सांस ली। रुपयों को पानी की तरह बहा कर, बड़े पापड़ बेल कर कभी निरंजन, तो कभी निरुपम को साथ लेकर नीता ने पासपोर्ट का इन्तजाम कर ही लिया।

ईर्ष्या की बात होने पर भी बात तो सच ही थी। यदि रुपए न होते तो असंभव की हठ कौन-सी फसल पैदा कर सकती थी ? रुपए तो चाहिए ही। मांग कर नहीं, भीख के पैसे नहीं। अधिकार के रुपए।

आर्थिक आजादी नहीं रहने से हृदय की नैतिक आजादी मूल्यहीन है।

नीता आने की तैयारी में जुटी रही और उधर निरंजन ट्रंक काल पर ट्रंक काल किए जा रहा था—रोगी कैसा है, हाल बताइए। अगर कोई यहाँ पहुँचे तो मरीज से भेंट हो सकती है या नहीं?

पर निरंजन क्यों इतना परेशान था?

क्या वह प्रार्थना कर रहा था कि खबर यह मिले कि अब किसी को आने की कोई जरूरत नहीं। सब खत्म हो चुका है।

या वह नीता के दुःख से पीड़ित था? वह मुट्ठी भर-भरकर रुपए खर्च कर वहाँ से खबरें मँगवा रहा था, पर वह खबरें नीता तक पहुँचा तो नहीं रहा था।

इस घर के भाई-भाई में न तो कोई विरोध था, न ही कोई आत्मीयता। असल में उनके बीच हृदय का कोई योग ही नहीं था। एक घर में रहकर भी सुचित्रा के लड़के एक-दूसरे के लिए पड़ोसियों से अधिक निकट नहीं थे।

सुचित्रा की सारी जिन्दगी अपने मन को बाँधने की कोशिशों में ही खत्म हो चुकी थी फिर भी वह अपनी गृहस्थी नहीं बाँध पाई थी। जिस अपनत्व की भावना से एक भाई दूसरे से झगड़ता है, बहस करता है, डाँट-डपट करता है, उसी भावना को अपने तीन बच्चों में जन्म देने का मौका ही वह नहीं निकाल पाई थी।

इन्द्रनील खुशी के मारे अपनी सहेली के साथ इधर-उधर घूमता रहता था। सड़क चलते अगर निरंजन की नजर पड़ जाती तो वह सिर झुकाकर चला आता। निरंजन की आँखें पड़ती तो वह भौं तान कर रूखी नजरों से देखता हुआ आगे बढ़ जाता। पर आखिर कोई भी छोटे भाई से यह नहीं पूछता—यह लड़की कौन है? या फिर डाँटकर यह नहीं कहता—इस तरह से सड़क पर क्यों घूमता है?

जरूरत पड़ने पर भाई-भाई एक-दूसरे से विशुद्ध भाषा में एक-दो बातें कर लेते थे। फिर भी आज निरंजन ने बड़े भाई को बुलाकर बातें की। 'भैया' कहकर पुकारने की आदत ही नहीं बनी थी इसलिए बिना सम्बोधन ही बोला—खामखा पागलपन क्यों कर रहे हो? नीता

विलायत भेजने से क्या फायदा है ?

निरंजन इस तरह के प्रश्न के लिए तैयार नहीं था। फिर भी शान्त भाव से बोला—किसके फायदे की बात कह रहे हो ?

—सबके लिए कह रहा हूँ। मान लो तुम्हारे ही लिए—।

—मेरी बात रहने दो।

—ठीक है। पर नीता का भी इससे क्या फायदा है ? उसके पहुँचते-पहुँचते तो उसका प्रेमी मर-खप गया होगा।

—इतनी गन्दी जबान से बातें करते हो ?

—ठीक है ! अच्छी भाषा ही बोलता हूँ। तुम्हें विश्वास है कि वहाँ जाकर वह अपने दोस्त को देख पाएगी ?

—उसी विश्वास के बल पर तो जाने की तैयारी हो रही है।

—मैं कह रहा हूँ, जाने का कोई फायदा नहीं।

—नहीं है, ऐसी बात पहले क्यों सोची जाए। वह देश तो यहाँ का देश नहीं। वहाँ की चिकित्सा पद्धति यहाँ से कहीं अच्छी है। इसके अलावा ट्रंक काल पर सुबह ही खबर मिली है कि हालत कुछ अच्छी है।

—हालत में सुधार है। यह खबर कल शाम को निरंजन को भी मिली थी, तभी तो वह इतना जल-भुन गया था।

ताज्जुब है। कहानी के हीरो की तरह मरते-मरते भी बच निकला यह अभागा आदमी। सागर निरंजन के लिए एक आकस्मिक दुष्ट ग्रह के समान था। इसलिए वह उसका नाम तक नहीं सहन कर पा रहा था। यह तो उसके लिए ऐसा ही था, मानो नींद से उठते ही खिड़की खोलकर कोई देखता है कि सामने रोशनी छेंककर कोई विशाल काला पहाड़ खड़ा है। इन्द्रनील की तरह इतने सस्ते ढंग से प्रेम करने की क्षमता निरंजन की नहीं थी। पर शुरू से ही नीता के प्रति उसने एक तीव्र आकर्षण का अनुभव किया था। यही अनुभव उसे अब पीड़ित कर रहा था।

सहज ढंग से इस आकर्षण और पीड़ा को व्यक्त करने में उसकी मर्यादा में ठेस पहुँचती थी, इसलिए धीरे-धीरे उसे सारी दुनिया पर यहाँ तक कि नीता पर भी गुस्सा आने लगा। वह इन्द्रनील से जलने लगा था। उसने ईर्ष्या से कुटिल आँखों से सुचिन्ता को देखा था और हर पल सोचा

था कि वह कैसे नीना के सामने सहज हो पाएगा।

पर अचानक ही सब कुछ पलट गया। निरंजन के सारे भविष्य पर एकाएक अँधेरा छा गया।

नीना दूसरे की बन चुकी थी।

पहली चोट मिलते ही उसने मन में एक कुत्सित आशा भी पाल ली थी कि सागर मर कर निरंजन का रास्ता साफ कर देगा। इसलिए वह बार-बार ट्रंक काल कर जानना चाहता था कि सागर कैसा है? अर्थात् वह मरा या नहीं। कल सुबह तक उम्मीद थी कि निरंजन का भाग्य अच्छा है, पर शाम को हवा उल्टी तरफ बह चली।

शाम को खबर मिली—मरीज की हालत बेहतर है।

यह खबर नीना के पास भी पहुँच सकती थी। स्वार्थी निरंजन की वासना से अंधी दृष्टि इसे सहन नहीं कर सकती थी। अब इस कोशिश में था कि निरुपम के साथ मिलकर किसी तरह नीना का वहाँ जाना रोक दे।

निरंजन बोला—इस 'बेहतर हालत' से कुछ खास अन्दाज तो नहीं लगता है। यह कोई काम की बात नहीं।

—कौन-सी बात काम की है, कौन-सी नहीं, इसका विचार करने वाले हम कौन होते हैं। निरुपम बोला।

—नीना के कितने रुपए बर्बाद जाएँगे। सोचा है?

—रुपए नीना के हैं। हमारा इस विषय में सोचना ही फिजूल है।

—तुम्हारी इतनी मदद के बिना उसका जाना संभव नहीं था।

—तुम्हारा यह ख्याल गलत है। कैसे भी हो वह जाती जरूर।

—लेकिन मान लो, उसके जाने के बाद उसका प्रे···दोस्त। चलो दोस्त ही सही। मान लो, उसके जाने के बाद उसका दोस्त यदि मर गया तो उसका क्या हाल होगा, कभी इसकी कल्पना की है? तुम तो बड़े हितैषी बनकर—।

—तुम्हें और कुछ कहना है?

—नहीं। फिर जाते-जाते निरंजन व्यंग्य से बोला—इतना हितैषी बनकर शायद भविष्य के लिए अपनी जमीन मजबूत कर रहे हो, क्यों?

निरुपम शान्त होकर बोला—तुम्हें एक बार फिर अच्छी तरह बात

करने के लिए याद दिला रहा हूँ।

—दिला सकते हो। फिर भी एक बात यह भी याद रख लो कि तुम्हारे मन की बात मुझसे छुपी नहीं है।

—जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

निरंजन पैनी दृष्टि से भाई की तरफ ताक कर निकलने ही जा रहा था कि पर्दे के उस पार से धक्का-सा लगा।

—बड़े भैया, आप जरा डाक्टर पालित के साथ—नीता की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि वह बीच में ही बोली—आप यहाँ? बड़े भैया कहाँ हैं?

—मुझे नहीं मालूम।

—आप अकेले ही यहाँ खड़े थे?

—अगर था तो आपको कोई आपत्ति है? मान लीजिए कि आपकी ही प्रतीक्षा में खड़ा था तो?

—तो आप गलत कह रहे हैं। क्योंकि इस समय मैं यहाँ आऊँगी, यह आपको मालूम नहीं था।

—मालूम नहीं था, पर मालूम भी था। निरंजन कुटिल आँखों से देखकर बोला—इसमें कोई शक नहीं कि आप बड़ी बुद्धिमान हैं।

—सुनकर खुशी हुई। कह कर नीता दरवाजे की तरफ बढ़ी ही थी कि निरंजन एकाएक उनके कंधे पर एक हाथ रख कर गरज कर बोला—रुकिए।

—इसका क्या माने? क्या कहना चाहते हैं आप?

—माने समझने की बुद्धि आप जैसी बुद्धिमती लड़की के पास अवश्य ही होगी। एक निर्बोध आदमी की कमजोरी का फायदा उठाकर आप अपना काम निकाल रही हैं, और मैं क्या कह रहा हूँ यह नहीं समझतीं?

पिछले दो दिनों से नीता के चेहरे पर मुस्कराहट बिल्कुल नहीं थी। चेहरा बिल्कुल काला स्याह-सा गया था। पर अब एकाएक उसके चेहरे पर एक व्यंग्य की हँसी खिल गई। गुस्से से नहीं, चिल्ला कर भी नहीं, हँसकर ठंडी आवाज में बोली—आप क्या मुझसे प्रेम करना चाहते हैं?

गाल पर एक थप्पड़ खाने सा चेहरा बनाकर निरंजन बोला—मान

लो यही कहना चाहता हूँ।

—आप हर चीज को लाभ और हानि के तराजू पर तौलते हैं। मैं आप ही के हिसाब से पूछती हूँ, उसमें फायदा ?

निरंजन गरज उठा। बोला—तुम लोगों के भगवान से मैं प्रार्थना करूँगा कि मेरे रास्ते का रोड़ा दूर हो। लाभ मेरी मुट्ठी में आ जाए।

—हमारे भगवान शायद आपकी बात न सुनें। हटिए, मुझे जाने दीजिए।

—नहीं। मेरी बात तुम्हें सुननी पड़ेगी। बात नहीं, एक सवाल ही पूछूँगा। अगर तुम्हारा वह होने वाला पति मर जाए तो उसके बाद क्या मैं उम्मीद कर सकता हूँ ?

—आप इतने भयंकर हैं, मुझे मालूम नहीं था। हटिए।

—नहीं, नीता देवी, मैं हट नहीं सकता। उत्तर लिए बिना हटना मेरे लिए मुश्किल है। जवाब मुझे चाहिए ही।

नीता हँस कर बोली—चाहने पर ही सब कुछ मिल पाता है क्या ?

—मिलता है। कम से कम मेरा यही विश्वास है।

—अच्छी बात है। विश्वास में दृढ़ता और भी अच्छी बात है। पर मैं सोच रही हूँ, आपकी यह असहाय हालत हुई कब से ?

एकाएक निरंजन के चेहरे में दीनता झलक उठी। बोला—कब से हुई नीता, सच में तुम्हें पता नहीं चला ? जिस दिन तुम पहली बार मेरे घर पर आई उसी दिन से मैं···। पर तुमने क्यों गन्दी लड़कियों की तरह मेरे साथ तमाशा किया ? क्यों नहीं पहले बताया कि तुमने अपना रिश्ता तय कर रखा है।

'गन्दी लड़की' इस सम्बोधन को सुन कर नीता लाल हो उठी, फिर भी संयत होकर बोली—इस बात की जोर-जोर से घोषणा करनी चाहिए थी, पहले मैं समझी नहीं थी।

—नहीं समझ सकी थी, ऐसी बात नहीं। जानबूझ कर समझना चाहती नहीं थी। यह खबर एकाएक जिस दिन फैलेगी, किसी के लिए वह कितनी मर्मान्तक होगी, शायद तुम कहना चाहोगी कि यह भी तुम्हारे दिमाग में कभी नहीं आया था।

नीता गंभीर होकर बोली—हां, यही कहूंगी, क्योंकि दुनिया के तमाम हृदय मेरे ही लिए सूने पड़े हैं यह मेरी धारणा से परे था।

—बातों को घुमा-फिरा कर सच को दूसरे रूप दिये जा सकते हैं, पर मैं यही कहूंगा कि जान बूझ कर ही तुमने यह बात अब तक छुपा रखी थी।

—शायद मेरे दिमाग में कोई बहुत बड़ा षड्यंत्र रहा होगा, यही न ?

—दिमाग में कोई अच्छा ख्याल रहा होगा यह भी मैं नहीं कह सकता। कड़ुवेपन से निरंजन का चेहरा कुत्सित हो उठा—असल में विरही मन विच्छेद का फायदा उठा कर प्रेम का थोड़ा नाटक खेलना चाहा होगा इसलिए तुमने असली बात छुपा रखी थी। खैर, अपने खेल में तुम सफल हुई हो, क्योंकि मजे तुमने किसी एक के साथ ही नहीं, बहुतों के साथ लूटे हैं। निरुपम मित्र को कठपुतली बना कर अपने इशारों पर उठा रही हो। इन्द्रनील बाबू ने भी संभवतः निराश होकर ही दूसरी जगह आसरा ढूंढ़ा है और···।

—और आपने शायद तय किया है कि बदन की ताकत से प्रेम का रोब जमाएंगे। खैर, बढ़िया बात है। बलं बलं बाहू बलं। हाथ में ताकत है, तो डरना किस बात का। पर मेरे पास वक्त नहीं है। आशा है, आपको जो कुछ कहना था कह चुके।

—कह तो गया हूं, पर अभी तक उनका जवाब नहीं मिला है।

—जवाब ? ओ···हो···हो···। हां, आपने कहा तो था कि दुश्मन यदि आपके सहायक बनें और हालत आपके अनुकूल बन जाए तो मुझ पर आपका हक पहले होगा। इस दस्तावेज पर मैं दस्तखत कर दूं, यही न ?

—छींटाकशी जितनी मर्जी कर लो। पर कम से कम इतना जरूर ध्यान में रखना कि मैंने अपने किसी पालतू को भेजकर सागर की दुर्घटना नहीं करवाई थी।

—जो जो कहना था, आपने कह लिया ?

—हां। पर तुमने भी खूब खेल दिखाया नीता देवी !

नीता ने उत्तेजित होने से अपने को रोका। शान्त भाव से बोली, "बात क्या है, जानते हैं ? दोष आपका भी नहीं और मेरा भी नहीं। दोष हमारे

देश की मानसिकता का है। कोई लड़की अगर किसी लड़के के साथ जरा हँस कर बात कर ले तो समझ लिया जाता है कि यह प्रेम का खेल है। और जान बूझ कर भी बनावे लड़के प्रेम में पड़ते हों, यही यहाँ का अमोघ अनिवार्य नियम है। इसलिए आपने भी अपने मन में निश्चय कर लिया कि आपके बड़े तथा छोटे भाई, दोनों एक ही देवी की साधना में जुटे हैं। और आपका तो कहना ही क्या? पर क्यों, जरा मुझे समझाइए तो। लड़कियों को क्या दोस्त के रूप में नहीं माना जा सकता? सहज रास्ते पर सहज तरीके से उनके साथ नहीं चला जा सकता?

—नहीं। नहीं चला जा सकता। निरंजन शेर की तरह गरज उठा। किताबी आदर्श की बातें छोड़ो। ये बातें रक्त-मांस का शरीर धारण करने वाले आदमियों के लिए नहीं होतीं। प्रकृति ने अपना व्यापार समेट लिया है क्या?

—उत्तर देने लायक मेरे पास भी बहुत सी बातें हैं। पर आपके साथ प्रकृति के तत्वों पर आलोचना करूँ, इतना समय मेरे पास नहीं है। पर आपके लिए वाकई मुझे बड़ा दुख हो रहा है। बड़े भैया की तरह सहज ढंग से मुझे छोटी बहन की तरह अगर आप भी मुझे मान सकते तो शायद···।

—सहज ढंग से? निरंजन तीव्र हो उठा। छोटी बहन की तरह! ये सारी बढ़िया बातें अपने बड़े भैया के लिए उठा कर रख लो। वह आदमी डरपोक है, कायर है, इसलिए सोचता है कि बड़े भाई का ताज अगर यहीं टूट जाए तो शायद पूरा का पूरा ही खोना पड़े। उससे तो यह थोड़ी-सी नजदीकी, यही क्या बुरी है। इस तरह के आदमियों को मैं खूब समझता हूँ।

—औरत और मर्द के बीच एक ही एक रिश्ता हो सकता है, यही आपकी अन्तिम धारणा है?

—सिर्फ मेरी धारणा नहीं है। दुनिया के सभी बुद्धिमान लोगों की भी धारणा यही है। 'भैया' कहकर पुकारने से ही यदि बहन के प्रति स्नेह उमड़ आए तो सर दर्द किस बात का? श्रीमती सुचिन्ता देवी भी, तो सुना है, सुशोभन मुखर्जी को "भैया" कह कर पुकारती थीं।

—और एक बार कह रही हूँ कि आपके लिए दुख होता है—कह कर नीता कमरे से निकल गई।



नीता की विदेश यात्रा की खबर श्यामपुकुर में भी पहुँची। खबर और आग दोनों हवा में फैलते हैं।

मालती सुमोहन के पास दौड़ी हुई आई। बोली—हाँ, तो छोटे देवरजी! नीता के जाने आने में सुना है दस बारह हजार रुपए लग जाएँगे।

—इतने तो लगेंगे ही। ज्यादा भी लग सकते हैं।

—एक बात पूछती हूँ, उसका बाप तो मान लिया कि पागल है, पर लड़की भी पागल हो गई है क्या?

—कोई असम्भव बात नहीं। सुमोहन पैर हिलाते हुए निर्विकार भाव से बोला।

—और तुम लोग? उसके जेठ, चाचा, भैया, तुम लोगों का भी दिमाग खराब हो गया है क्या? इसलिए लड़की को नहीं रोक रहे हो?

—जाने की बात तो वह तुम लोगों से भी कहने आई थी। तुमने क्यों नहीं रोकने की कोशिश की?

मालती अपनी बात भूलकर बोली—तुम्हारी राय के लिए बैठी थोड़े ही थी। सोचते हो मैंने कोशिश नहीं की?

—बस, बस, भाभी। जहाँ तुम्हारी कोशिश नहीं चली वहाँ हमारी कौन सुनेगा? हम तो कीड़े-मकोड़ों की तरह हैं।

—कीड़े-मकोड़े तुम क्यों होने लगे भाई। वो तो मैं हूँ, नहीं तो सबसे बड़ी होकर भी सबसे हेय समझी जाती? नहीं तो बेशर्म बन कर नीता मुंह पर बोलती कि 'शादी करने में भी तो पिताजी के बहुत पैसे लगते।' और तुम्हारे बड़े भैया ने उसकी बातों का समर्थन भी किया।

—तुम्हारी बात काटना तो भैया की हमेशा की आदत है।

—लेकिन घर की लड़की जो मर्जी बेहूदापन करेगी, किसी की परवाह नहीं करेगी? घर से इस पर रोक नहीं लगाई जा सकती? शादी

कभी हुई नहीं है। पति नहीं, कुछ नहीं, बस थोड़ा प्यार-व्यार हुआ कि उसे देखने के लिए विलायत दौड़ पड़ी। इस दुनिया में ऐसा कभी किसी ने सुना भी है? मान लिया कि बाप के पास पैसा है, पर लोक-लाज नाम की भी तो कोई चीज है।

—नहीं। बिलकुल नहीं। इन दोनों का रिश्ता धूप और बारिश की तरह है। एक के रहने से दूसरा अवसर नहीं होता। रुपया रहने पर आँख की शर्म चली जाती है और यदि आँख में शर्म है तो रुपया नहीं रहता।

—तुम चाहे कुछ भी बोलो, देवरजी! ऐसी तेज लड़की कभी नहीं देखी। शादी होने पर भी कोई कभी बीमार पति को देखने के लिए विलायत जाते सुना है?

—धत् भाभी! शादी की ऐसी की तैसी। सुमोहन पलंग के हत्थे पर थप्पड़ मारते हुए बोला—शादी ही प्रेम का एकमात्र मापदण्ड है क्या?

मायालता मुँह बनाकर बोली—आजीवन तो यही सुनती आई हूँ।

—हमेशा से जो जानती आई हो भाभी, सब गलत है। अपने ही घर की छोटी बहू को देखो न। उसके साथ तो मेरा···।

अचानक बोलना छोड़कर सुमोहन कोई गाना गुनगुनाने लगा।

—क्या हुआ? कह कर मायालता ने कुछ पूछा नहीं क्योंकि उसे मालूम था कि क्या हुआ। क्योंकि अक्सर ऐसा ही होता था। बात कुछ और नहीं थी, छोटी बहू का आँचल दिखाई पड़ा था।

हाँ, अशोका इस तरफ ही आ रही थी। नाश्ते की प्लेट टेबल पर रखकर वह कोने में रखी सुराही से पानी ले आई। यह पानी खासकर सुमोहन के लिए मुहल्ले के किसी हैंडपम्प से मँगवाया जाता था।

— यह सब क्या है? सुमोहन ने मुँह बनाकर पूछा।

अशोका कुछ बोली नहीं। जवाब मायालता ने दिया। बोली—देख नहीं रहे हो क्या?

—देख तो रहा ही हूँ। सुमोहन व्यंग्य की हँसी हँसकर बोला—अहा! क्या अपूर्व नाश्ता है। हलुआ और नमक डला पापड़। वाह! वाह!

मायालता सुनकर उठी—गृहस्थ घरों में रोज-रोज नए किस्म का नाश्ता कहाँ से बनेगा? बाजार की मँहगाई देखते नहीं?

—बाजार ? सुमोहन दार्शनिक ढंग से बोला।

—इस दुनिया में तो आदमियों का बाजार देखते-देखते ही हांफ गया हूं। तुम्हारे नमक, तेल, लकड़ी, मिर्च के बाजार को देखने की फुर्सत कहां है ?

—फुर्सत कैसे रहेगी। फुर्सत सिर्फ दूसरों पर टीका टिप्पणी करने के लिए मिलती है। राजकीय ठाट-बाट से रहने के लिए रोका किसने था देवरजी। अपने मंझले भैया की तरह नामी अमीर आदमी भी तो बन सकते थे।

—सकता था, पर बना नहीं। सुमोहन बोला—कुछ भी न करके भी दिन काटे जा सकते हैं या नहीं, इसी पर मेरा शोध कार्य है। उसी पर काम कर रहा हूं।

—हूं:। भोला भैया मिला है इसलिए न—नहीं तो शोध-बोध सब निकल जाता।

—वो तो मुझे मिलता ही। यह स्वाभाविक बात है। दुनिया में जिस तरह ठण्ड है, उसी तरह भेड़ के शरीर पर बाल भी तो हैं। पर विधि निर्दिष्ट है।

मायालता गुस्सा कर बोली—हो रही थी एक बात, और तुम दूसरी बात पर उतर आए। छोटी बहू तो यहीं है। बड़ी बुद्धिमती, विदुषी है। जरा वह खुद ही बताए कि रुपयों को पानी में बहा कर नीता जो नाच-नाचकर विलायत जा रही है यह कोई अच्छी बात है ?

अशोका कमरे की दूसरी तरफ कुछ जँचा रही थी। बोली—मुझे जवाब देने के लिए कह रही हैं ?

—हां, कह रही हूं। तुम्हारे जेठ तो उठते-बैठते तुम्हारी ही बुद्धि की व्याख्या करते हैं। तुम्हीं कहो, यह जो हो रहा है, अच्छा है ? लोग सुनकर वाह, वाह करेंगे ?

—लोगों की बात तो बतानी बड़ी मुश्किल है, दीदी। पर मुझे तो लगा कि यही उसका प्राप्य है।

—प्राप्य है। इसके लिए तो उसे वाहवाही मिलनी चाहिए। और वह लड़का, भगवान न करे पर यदि वह न बचे तो नीता का क्या होगा ?

परदेश का मामला, अनजान जगह।

—परदेस और अनजान जगह में कइयों के पति मर जाते हैं दीदी।

—पति और प्यार का वह आदमी, एक है? मायालता भंकार उठी।

—नहीं, एक तो नहीं हैं। कहकर मुस्करा कर अशोका चली गई।

मायालता मुंह बना कर खड़ी रही।

पापड़ चबाते हुए सुमोहन बोला—समभीं भाभी। 'पति' और 'प्यार' इन दोनों का भी सम्बन्ध धूप और बारिश की तरह है। समभ गईं न!

—खाक पड़े तुम्हारे नखरों में। मैं तो सिर्फ रुपयों के बारे में सोच रही थी। दस-ग्यारह हजार रुपये। उफ!

मायालता के लड़के भी बोले—उफ! नीता कितने मजे से आकाश में उड़ कर विलायत जा रही है। हम तो सोच भी नहीं सकते। बहाना बना कर कैसे जा रही है। कब तक पागलपन रहेगी। बीमार को देखने के बहाने उड़ भागी।

मायालता भी 'हां' में 'हां' मिला कर बोली—ताज्जुब की कोई बात नहीं। दुनिया में सब कुछ सम्भव है। वो जो दोस्त है, न जाने वह लौंडा है ही कैसा।

तपोधन बोला—मुझे भी कुछ रुपये दो न बाबा। एक बार घूम आऊँ। पासपोर्ट मिलने में मुझे कोई दिक्कत होगी नहीं, क्योंकि बहन का मार्ग-निर्देशक बन कर चला जाऊँगा।

—एक दो रुपयों की बात है न जो तुम्हें दे दूं। मायालता बोली। तपोधन अपने छोटे चाचा की तरह मुंह [illegible] बोला—विलायत, अमरीका, जापान, जर्मनी जाना आजकल [illegible] की तरह आसान बन गया है समझी मां? मेरे दोस्त लोग [illegible] कहीं न कहीं घूम [illegible] हैं। हमारे जैसे अभागे इस युग में [illegible] है। [illegible] कहते हैं तेरे पिता जी को प्रैक्टिस तो [illegible] है, फिर [illegible]—

मायालता उसे रोक कर बोली—[illegible] कहते हैं कि [illegible] लड़के जो विदेश जाते हैं, सब [illegible]। [illegible]

जाते हैं—।

—छोड़ो भी माँ इन बातों को। बाप के पास पैसा न हो, तो सब बेकार है।

इधर-उधर ताक कर धीमी आवाज में मायालता बोली—क्या बोलूं बोल? जैसा तुम लोगों का भाग्य है, घर पर अगर इतना बोझ न लदा रहता तो क्या तुम लोगों को मैं विलायत और अमरीका नहीं भेजती? मंझले देवर भी तो भूत के अवतार बने बैठे हैं, नहीं तो मैंने तो मन ही मन तय कर रखा था कि तू पास वास कर ले, फिर कम से कम एक के लिए तो उन पर दबाव डाल ही सकती थी। कहती, लड़का और भतीजा तो एक समान हैं। तुम्हारे तो लड़का है नहीं। इन लोगों को आदमी बनाओ, तुम्हीं को फायदा है। पर अपने गुणों से तू दो-तीन बार फेल होता रहा, उधर मंझले देवर भी—।

—अच्छा माँ, नीता तो जा रही है। मंझले चाचा के रुपयों-पैसों का क्या हिसाब होगा?

—उस सुचिन्ता को सब कुछ का मालकिन बना रहा होगा।

तपोधन नाराज होकर बोला—क्या बोलूं? चाचा बड़े बुजुर्ग हैं पर खूब खेल दिखाया, मानना ही पड़ेगा।

—तूने तो सुना ही है। बड़े भाई को पहचान सके, छोटी बहू को पहचाना, सिर्फ इन ही लोगों के···।

—सब कुछ समझ गया हूं। मैं सोच रहा था कि नीता जा रही है, इस बहाने यदि चाचा को एक बार यहां लाया जा सकता तो मैं उन्हें किसी तरह पटा लेता। कुछ रुपये तो जरूर हड़प लेता।

—यह नहीं हो सकता। सुचिन्ता से पार पाना कोई आसान काम नहीं।

—उनके लड़के भी न मालूम सब कैसे हैं? कैसे सहन करते हैं?

—लड़कों की बात पूछ रहा है। मायालता बिद्रूप-सी हंसी हंसकर बोली—लड़के गुण ही रहे होंगे। घर गृहस्थी को तो फायदा ही पहुंच रहा है। समझा क्यों नहीं?

तपोधन माँ की इस तरह की आलोचना का एकमात्र साथी था, क्योंकि

वह मरोने का था। पर सुशोभन माँ की इस प्रकार की आलोचना में शामिल नहीं होता था। वह तो कहता फिरता था कि माँ-बाप में चेतना के अभाव में ही उनका भी कुछ भला नहीं हुआ। कहता—पैसा खर्च किए बिना लड़के को तैयार नहीं किया जा सकता। फिर तो वे बछड़े, बकरे और भेड़ ही बनते हैं। सिर्फ खाने और पहनने के लिए देने से ही माँ-बाप का कर्त्तव्य पूरा नहीं हो जाता। अब वह जमाना नहीं रहा।

जमाना पलट गया है, इसे नीता को देखने के पहले, ये लोग भी नहीं समझे थे। जब भी वे सोचते थे कि नीता के पिता उन्हीं के पिता के सहोदर भाई हैं तो गुस्से से उनका अपना ही सर फोड़ने का मन करता था।

अपने ही लोग यदि अपनों से बढ़ जाएँ तो कौन सहन कर सकता है?

सुविमल ने अपने बच्चों के प्रति अपना कर्तव्य नहीं निभाया था, इस बात को नीता ने आँखों में उंगली डालकर समझा दिया था।

आखिर सुशोभन के घर का वातावरण भी तो यही था। यही उनका घर था, ये ही लोग उनके अपने थे जिन्होंने सुशोभन को कभी हृदय से अपना नहीं सोचा था, आज वे ही लोग सुशोभन हाथ से निकल गया जान कर सर ठोंक रहे थे।

मायालता बेवकूफ हो सकती थी, उसके लड़के भी बेवकूफ हो सकते थे, पर क्या सुविमल के मन में यह कभी नहीं आया कि पिछले तीन सालों में उन्हें भी एक बार दिल्ली जाना चाहिए था। 'पिताजी की तबियत ठीक नहीं है' नीता के इस पत्र को पाने के बाद भी उनका निश्चित होकर उन्हें नहीं बैठना चाहिए था। आना-जाना रहता तो सुशोभन की लड़की आज इस तरह अलग हो जाती?

और फिर पास पड़ोस के लोगों के सामने भी छोटा नहीं बनना पड़ता।

उसी दिन की तो बात थी। फुफेरे भाई लोग भेंट करने आए थे और कितनी बातें पूछ गए थे। बड़ी बहन ने बुलावा भेजा था पर सुविमल गए नहीं थे। जाने पर बहन भी यही सवाल-जवाब करती। यह सब कुछ भी नहीं होता, यदि सुविमल को पहले से कुछ भी पता होता।

पर कोई भी चीज जब तक पास होती है, कौन उसकी कीमत समझता

है ?

सुमोहन तो हर चीज को व्यंग्य भरी नजरों से देखा करता था। पर आज वह भी सोच रहा था कि जीवन के शुरू में ही उससे गलती हो गयी थी। देश के विभाजन के बाद बड़े भैया की गृहस्थी में सर न छुपाकर यदि वह अपने विधुर मंझले भैया के आश्रय में चला गया होता तो अच्छा रहता। नीता भी उस समय बच्ची थी। अशोका की तरह कर्मठ चाची के मिलने पर वह भी तर जाती। पर सब गलतियों की जड़ तो अशोका ही थी। वह पति से कभी राय-विचार भी तो नहीं करती थी पर दिखती यह थी मानों उनका कितना कहना मानती थी। इससे तो अच्छा रहता कि वह रात-दिन झगड़ती रहती। सुचिन्ता भी तो कैसे पति का घर संभालती थी। देखने पर साफ जाहिर होता था कि मन कहीं और बंधा था।

अचानक सुमोहन के मन ने दूसरी गति पकड़ ली। सोचा, कहीं अशोका का भी कोई छुपा हुआ इतिहास तो नहीं है। लड़के-बच्चे की माँ है, फिर भी क्या। औरत के मन का कोई भरोसा नहीं। सुचिन्ता ने तो यह सिद्ध भी कर दिया था।

ताज्जुब है। उम्र ढलने पर भी क्या मुहब्बत, प्रेम मन में जिंदा रहता है ? अब तो ऐसा ही लगता था कि रहता है। सुमोहन अपने सभी भाई बहनों में मंझले भैया को ही सबसे अधिक बेवकूफ समझता था, पर अब उसे उसी भैया से ईर्ष्या होती थी। पागल बन चुका था, फिर भी ईर्ष्या होती थी। 'बेवकूफ लोग ही प्रेमी बनते हैं,' ऐसा कह कर वह मन को भले ही कितना समझाता पर उसे सन्तोष नहीं मिल रहा था।

जीवन में बेकार व्यक्ति शायद इसी तरह से सोचता है। सारी दुनिया पर छींटाकशी कर वह अपने मन के कड़वेपन को दूर करना चाहता है। 'मैं उन लोगों की तरह बेवकूफ नहीं हूँ, कहकर अपने मन को ढाढ़स बंधाना चाहता है, पर ईर्ष्या के हाथ से अपने को बचा नहीं पाता।

☐

गृहस्थी का पहिया अपने किस्म से चल ही रहा था। पर नीता ने मानो इस गृहस्थी के सर पर पत्थर की चोट दे मारी थी, नीता के विला-

मत जाने के कारण बहुतों को सिरदर्द हो रहा था।

किसी ने नीता के जाने के कारणों पर गौर नहीं किया। उसका जाना ही उसके लिए मुख्य बात थी। और इस कसौटी पर मायालता से अति अधिक आधुनिका कृष्णा, निप्रा और माधुरी में फर्क क्या था ? नीता यदि शादीशुदा होती, और फिर उसके पति की दुर्घटना की खबर आती तो ये सारे लोग सहानुभूतिपूर्वक मामले पर विचार करते, पर होने वाला पति ? ताज्जुब है ? कुछ भी कह लो कितने मजे से जा रही है। कृष्णा की इस टिप्पणी पर इन्द्रनील भौं तान कर बोला—मजे से जा रही है ?

—और नहीं तो क्या ?

—जिसे प्यार किया जाता है उसके बारे में तुम्हारा दृष्टिकोण बड़ा मोह मुक्त लगता है।

—इसमें मोह मुक्त की क्या बात है ? यह देश कौन-सा है, यह भी तो देखना पड़ता है। जिस देश में उड़ना चाहने पर हाथ पैर तोड़कर लकड़ी के हाथ-पैर लगवा कर चलाया जाता है, लड़की के दिल को प्लास्टिक का समझा जाता है कि चाहे कहीं भी जोड़ दो, अगर वह दूसरों के दिमाग से नहीं चलती तो समझा जाता है कि उसका दिमाग खराब हो गया है, उस देश में इस बात के लिए लोग सोचेंगे ?

—यह हुई कोई बात !

—चलो न उससे भेंट कर आऊँ।

—जरूरत क्या है ? वह इस समय व्यस्त होगी।

—नीता दी अपने पिता के लिए क्या इन्तजाम कर रही हैं ?

—क्या मालूम ?

—कोई नर्स वर्स रखेगी ?

—नहीं।

—तुम्हारी माँ को ही सब कुछ करना होगा ?

—और नहीं तो क्या ? इन्द्रनील मुस्करा कर बोला—नीता दीदी का हाल देख कर तो लगता है सब कुछ जल्दी-जल्दी कर लेना ही ठीक है। आदमी का जीवन तो कमल की पंखुड़ियों पर ओस की बूँद के समान है। कब है, कब नहीं, कौन जाने ?

—फिर भी दो-दो भाइयों को लांघ कर घास खाओगे क्या ?

—देख रहा हूं, ऐसा ही करना पड़ेगा। ज्यादा दिन धैर्य नहीं धर पाऊंगा।

—इतने अधीर हो गए हो ?

—धैर्य बेजरूरत की चीज है इसलिए अधीर हो रहा हूं। भूख लगी है, सामने बढ़िया खाना मौजूद है फिर धैर्य करना क्या बेवकूफी नहीं है ?

—तुम्हारी तुलना भी कितनी आपत्तिजनक है। भूख, खाना, छिः !

—छिः थिः मैं नहीं जानता। जो सच है वही कहता हूं।

—सोच रही हूं, तुम कितने बदल गए हो। क्या थे पहले और अब ?

—रिएक्शन ! प्रतिक्रिया ! अब समझता हूं कि पिताजी का स्वभाव मुझ पर भी काम कर रहा है। मेरे पिता भोगवादी थे।

—तुम्हारी मां से लेकिन मुझे डर-सा लगता है, कैसे तो ताकती हैं।

—तुम्हारी मां से भी मुझे कुछ कम डर नहीं लगता।

कृष्णा हंस पड़ी। बोली—फिर भी हम एक-दूसरे की तरफ देखना नहीं छोड़ सकते। आश्चर्य है !

—आश्चर्य नहीं, परम आश्चर्य है।



दमदम एयरपोर्ट पर नीता को विदाई देने कई लोग गए। इस घर के, उस घर के मिलकर कई लोग थे। किसी एक उपलक्ष्य पर थोड़ा हो-हंगामा और क्या ! एक खास उम्र के लड़के-लड़कियां एक साथ जुट कर कुछ करने का मौका या सिर्फ आपस में मिलने का मौका अक्सर छोड़ते नहीं। झुंड में फिल्म देखना, और झुंड में साधु दर्शन के लिए जाना, दोनों में ही बराबर का आग्रह होता है।

इन्द्रनील नीता के हाथ पर थोड़ा दबाव डाल कर बोला—कब लौट रही हो, कहो ? तुम्हारे आए बिना शादी वादी नहीं होगी।

—आना मेरी इच्छा पर तो नहीं है।

—वहां जाकर कहां ठहरोगी ?

—उसका इन्तजाम शिशिर राय करके रखेगा। पर मेरे लौटने की

प्रतीक्षा मे तुम क्यों बैठे रहोगे ?

इन्द्रनील थोड़ा चुप रहकर बोला—चाँद को हथेली पर न रख पाने पर भी चाँद की तरफ की खिड़की खोलने का दिल तो करता ही है। तुम्हारे क्यों का यही जवाब है।

बड़े भैया, पिताजी का ख्याल रखना—कहते-कहते नीता के गालों पर झर-झर कर आँसू टपक पड़े। गालों से लुढ़क कर आँसू के बूँद निरुपम के हाथों पर पड़े जिन हाथों को नीता ने व्याकुल होकर पकड रखा था ?

—बड़े भैया, मुझे पिताजी के एक-एक दिन की खबर वहाँ मिलनी चाहिए।

—खबर नही मिलेगी, ऐसी आशंका ही क्यों मन में रख रही हो।

—नही आशंका नही। सोच रही हूँ, आप लोगो पर···और यह बात नही कहूँगी, पर बुआ पर बहुत भार छोड़ जा रही हूँ। उन्हें भी जरा देखिएगा।

नीता की बुआ पर निरुपम की कोई विशेष सहानुभूति नहीं थी, फिर भी शान्त भाव से बोला—तुम चिन्ता मत करना।

—डाक्टर पालित ने तो कम [illegible] की बात कही।

—हाँ, यही तो।

—क्या ऐसा नहीं हो सकता कि [illegible] देखूँ कि [illegible] ठीक हो गए हैं ?

—कोई असम्भव बात [illegible]

हवाई जहाज उड़ने [illegible] मच गई। रोना-धोना [illegible] छोड़ने के पहले [illegible]

और नीता ?

उसके तो [illegible]

क्या मालूम [illegible]

उसे पहचान [illegible]

क्या वह [illegible]

[illegible]

जाए।

पिताजी क्या अच्छे हो जाएँगे ? सागर क्या बच पाएगा ?

आकाश और धरती दोनों ही नीता की तरफ कातर दृष्टि से देख रहे थे।

नीता किसके लिए अधिक सोचे ?

धीरे-धीरे विमान धरती को छोड़कर आकाश की तरफ उठा। जमीन बहुत नीचे छूटती जा रही थी। आकाश अपनी तरफ खींच रहा था। सुशोभन की चिन्ता धूमिल पड़ती जा रही थी। 'वे लोग तो हैं ही। सुचिन्ता बुआ हैं। इन दिनों में आखिर करती भी क्या थी ?' सोच-सोच कर नीता अपने मन को सान्त्वना पहुँचा रही थी।

सागर ! सागर ! कितने दिनों से मैंने तुम्हें देखा नहीं है।

तुम्हें जाकर देख तो पाऊँगी न ? सागर तुम मुझे डाँटोगे क्या ? क्या तुम भी कहोगे, मैंने अन्याय और दुस्साहस का काम किया है ?

सागर तुम मुझे पहचानोगे न ?

मुझे मालूम भी नहीं, तुम अब कैसे बन गए हो सागर।

नीता की एकाकी यात्रा के संगी ये ही व्याकुल प्रश्न थे।

पिता और पति, लड़की के जीवन के यही दो प्रिय देवता हैं। दो परम आकर्षण, फिर भी इन दोनों में से एक को छोड़े बिना दूसरे का सान्निध्य पाने का भी कोई उपाय नहीं। नारी जीवन का यह एक परम दुर्भाग्य है। छोड़ना पड़ेगा। बहुत छोड़ना पड़ता है।

छोड़ना पड़ता है बचपन के प्रिय परिचित, स्नेह नीड़ को, छोड़ना पड़ता है जन्मसूत्र से पाए हुए वंश परिचय को, छोड़ना पड़ता है आजन्म की रीति, पद्धति और संस्कार को।

छोड़ पाने में ही सौन्दर्य है।

'छोड़ नहीं सकती' कहने से तो जीवन बर्बाद हो जाएगा।

क्या यह सिर्फ इसी देश में है ? नहीं, हर देश में लड़कियों के जीवन की परीक्षा त्याग की ही परीक्षा है। कुछ छोड़े बिना कुछ पाने का कोई उपाय नहीं उनके पास। सागर यदि जीवित रहकर भी पंगु बना रहे ? हमेशा के लिए अपाहिज हो जाए तो नीता किसे छोड़ेगी ? असहाय पागल

वार को या असहाय अपाहिज प्रेमी को ? दोनों को ढो सके, इतनी हिम्मत है उसमें ? सागर तुम जी उठो। अच्छे हो जाओ। पहले की तरह मेरे जीवन में चमक उठो। तुम मुझे मत तोड़ो सागर, मुझे चूर-चूर होने से बचा लो।

आदमी का शरीर भी किस अजीब धातु से बना है ? अन्दर की बेचैनी और दुश्चिन्ता बाहर से दिखाई नहीं पड़ती। चुपचाप हर प्रकार का दुख-दर्द शरीर अपने में छुपा लेता है।

नहीं तो निरुपम इतना शान्त बुझा-बुझा-सा क्यों दिखता ?

बड़े भैया ! बड़े भैया !

इस सम्बोधन का भार ढोना पड़ेगा।

निरुपम कितना निरुपाय है।

उसके हाथ का चमड़ा अब तक जल रहा था। क्या आँसुओं में भी कोई दहन शक्ति होती है, जो चमड़े को जला सकती है। रूमाल से पोंछने पर भी जलन गई नहीं। नल के नीचे पानी की धार में हाथ रखा निरुपम ने। नीना ने निरंजन से कहा था, दुनिया के तमाम हृदय उसी के लिए सूने पड़े थे, यह बात उसे मालूम नहीं थी, लेकिन शायद ऐसा ही था। जिसमें आकर्षण शक्ति होती है, वह क्या कि ो एक को ही आकर्षित कर चुप बैठ जाता है ? उज्ज्वल शमा में क्या लाखों पतंगे आकर जान निछावर नहीं करते ?



—हाथ पकड़कर उससे इतनी क्या बातें कर रहे थे ? कृष्णा मुँह बनाकर बोली।

—अगर कहूँ कि वह जाने के पहले अपने पिता के लिए चिन्तित हो रही थी और मैं उसे ढाढस दे रहा था।

—मुझे विश्वास नहीं होगा।

—तो मैं ऐसा कहूँगा भी नहीं।

—मुझे तो गुस्सा आ रहा था।

—थोड़ा गुस्सा आना अच्छी बात है। इन्द्रनील ने कहा—इससे प्रेम

बढ़ता है।

—पुरानी सड़ी गली बातें हैं। नीता दी से क्या बातें हो रही थीं, जरा सुनूं तो ?

—नहीं बताऊंगा।

—नहीं बताओगे ?

—नहीं। जीवन में जिससे भी जो कुछ कहूँगा, सब तुम्हारे आगे पेश करना पड़ेगा, ऐसी शर्त के पक्ष में मैं नहीं हूँ।

—जिसके साथ जितनी बातें नहीं, कहो न कि जितनी लड़कियों के साथ जो जो बातें···।

—नहीं, वो भी नहीं। कृष्णा हर व्यक्ति के मन में एक एकांत का कमरा होता है। उस कमरे की खिड़की में से अन्दर नहीं झाँकना चाहिए।

—मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। कृष्णा उदास होकर बोली।

इन्द्रनील हँसकर बोला—मेरा सब कुछ यदि तुम्हारे को अच्छा लगने लायक हो तो तुम मुझे ज्यादा दिन पसन्द नहीं कर पाओगी।

—इसका मतलब ?

—मतलब कोई कठिन नहीं है। घर जाकर सोचना। समझ जाओगी।

कृष्णा तुनक उठी। —यह सब मैं नहीं जानती। मुझे छोड़कर तुम और किसी की तरफ नहीं देखोगे, उससे नहीं बोलोगे, मुझे छोड़कर और किसी की बात भी नहीं सोचोगे, यह मेरी शर्त है।

—मैंने तो पहले ही कह दिया कि मैं किसी शर्त के पक्ष में नहीं हूँ।

कृष्णा की आँखें छलछला उठीं। बोली—तम जानते हो न कि तुम्हें छोड़कर मैं और किसी को—। इसलिए तुममें इतना अहंकार है।

इन्द्रनील बोला—अगर थोड़ा अहंकार न रहा तो आदमी के पास रहा क्या ? अहंकार ही तो आदमी को बनाता है।

सच भी शायद यही है।

अहंकार ही आदमी होता है।

नम्रता का अहंकार, संयम का अहंकार, रुचि का अहंकार, उदासीनता का अहंकार, इन्हीं सब के सहारे तो आदमी अपने आप को खड़ा

रखता है।

इसी अहंकार को छोड़ नहीं सकने के कारण निरुपम आज रात को जाग कर नीता को लिख रहा था। 'प्रिय नीता' से शुरू कर उसने नीचे दस्तखत किए 'शुभैषी, बड़े भैया।' पर नहीं। निरुपम यह चिट्ठी नहीं भेज सका। आज ही चिट्ठी लिखे, निरुपम इतना पागल नहीं था।

रात भर जाग कर वह केवल चिट्ठी का ड्राफ्ट तैयार कर रहा था। चिट्ठी लिखने की तो उसे आदत ही नहीं थी, पर नीता कह कर गई थी, 'आपकी चिट्ठी के लिए मुंह फाड़े प्रतीक्षा करूंगी। पिताजी का हाल-चाल विस्तारपूर्वक लिखियेगा। आप पर ही मैं इस काम का भार सौंप रही हूं।

निरुपम विस्तार से सुशोभन की बात लिखना चाह रहा था, पर भाषा ही मन माफिक नहीं हो रही थी।

नए कागज पर नए ढंग से उसने फिर शुरू किया—प्रिय नीता'''पर चिट्ठी की भाषा मन मुताबिक होती कैसे ? लिखने लायक बातें ही कहां थी ? नीता मात्र आज ही तो गई थी।

कितना आश्चर्य था ?

लगता था कितने दिन बीत गए।



—लगता है, मैं बहुत दिनों तक और कहीं चला गया था। फिर लौट आया हूं। ऐसा क्यों लगता है' कहो तो सुचिन्ता ? सुशोभन बोले—मैं कहीं गया था क्या ?

सर हिलाकर सुचिन्ता बोली—नहीं तो।

—अच्छा तो फिर ऐसा क्यों लगता है कि बहुत लोगों के साथ मेरी भेंट हुई थी, कितने लोग थे। न जाने क्या-क्या कहा था। बहुत शोरगुल हुआ था। वे लोग कौन थे, बताओ न ?

सुचिन्ता उदास भाव से बोली—कहां, कहीं तो कोई नहीं है। तुम कहीं नहीं गए थे।

—नहीं गया था ? कहीं नहीं गया था ? सुशोभन उत्तेजित हो उठे,

या था, तुम्हारे कहने से ही मान लूंगा। जरूर तुम मुझे कहीं ल
ा।

सुचिन्ता उसी उदासी के साथ बोली—मुझे याद नहीं पड़ रहा है।
हीं बताओ न, किसने तुम्हें क्या कहा है?

सुशोभन नाराजगी के साथ बोले—वही तो पूछ रहा हूं। दिमाग में
तनी बातें इकट्ठी हो गई हैं, सब गड़बड़ा रहा है। अच्छा वे सारे लोग
कहाँ गए हैं कहो तो?

सुचिन्ता के सर पर दुश्चिंता का पहाड़ था। बेचारी अथाह समुद्र में
पड़कर किनारा नहीं पा रही थी। इसके बाद क्या होगा, यह चिन्ता उसे
खाए जा रही थी।

नीता यहाँ थी तो लगता था पैरों के नीचे जमीन है। पर जमीन पर
पैर रहने से ही क्या सच्चाई की परीक्षा हो सकती है? हिम्मत की परीक्षा
हो सकती है?

सुशोभन अधीर होकर फिर बोले—इतना क्या सोच रही हो
सुचिन्ता? वे सब लोग कहाँ चले गए?

सुचिन्ता थकी-थकी-सी बोली—कौन लोग?

—क्या आश्चर्य है? कौन लोग, नहीं जानती? जो लोग यहाँ रहते
हैं।

वे लोग कहाँ गए, सो तो तुम्हें बताकर ही तो गए हैं सुशोभन। नीत
विलायत चली गई। मेरा बड़ा और छोटा उसे हवाई जहाज तक छोड़
गए हैं।

—नीता चली गई? सुशोभन व्याकुल होकर बोले—सुचि
नीता क्यों चली गई? क्या वो गुस्से में आकर चली गई?

—नहीं। गुस्सा क्यों करेगी! सुचिन्ता आहिस्ते से बोली—
बातें तुम्हें बताकर ही तो गई है। वह लड़का, जिसके साथ नीता की
होने वाली है, वह इस समय बीमार है। नीता उसे देखने गई है।

सुशोभन थोड़ा चुप रहकर बोले—ओ, समझ गया।

—क्या समझ गए?

—नीता मुझसे नाराज होकर चली गई है। सुशोभन उ

बनाकर बैठे रहे ।

सुचिन्ता धीरे से सुशोभन के मोटे बलिष्ठ हाथ पर अपना एक हाथ रखकर बोली—नीता सचमुच तुम पर नाराज क्यों होगी? तुमने क्या किया है?

सुशोभन आज उस स्पर्श के प्रभाव से विचलित नहीं हुए। अनमने से बोले—क्या मालूम? लगता है, मैंने बहुत सारी गलतियाँ की हैं। मुझे जोर-जोर से रोने की इच्छा हो रही है सुचिन्ता।

—छिः ऐसा नहीं कहते। सुचिन्ता बोली—थोड़े ही दिनों में नीता वापस लौट आएगी।

सुशोभन अपना सर हिलाकर बोले—नहीं, वह वापस नहीं आएगी।

—मैं कह रही हूँ न कि नीता वापस आएगी।

सुशोभन हैरान होकर बोले—तुम कह रही हो कि वह लौटेगी? तुम सारी बातें समझ सकती हो सुचिन्ता?

—हाँ। मैं समझ सकती हूँ। सुचिन्ता हल्के मन से बोली—देखो न, जैसे अब समझ रही हूँ कि तुम्हें इस समय भूख लगी है।

—नहीं तो?

—वाह! तुम खुद ब खुद थोड़े ही समझ सकते हो?

सुशोभन सर हिलाकर बोले—मैं नहीं समझ सकता पर नीता समझ जाती है। पर इस समय मैं जानता हूँ कि मुझे भूख नहीं लगी है।

—कोई किताब पढ़ कर सुनाऊँ, सुशोभन?

—नहीं।

—नहीं क्यों? थोड़ी देर पढ़ती हूँ।

—आह! सुचिन्ता! तुम बहुत जबर्दस्ती करती हो।

—ठीक है, अब से नहीं करूँगी।

—सुचिन्ता, तुम नाराज हो रही हो?

—हाँ! तुम मेरी बात जो नहीं मान रहे हो?

सुशोभन थोड़ा विषण्ण हुए। बोले—सुनूँगा क्यों नहीं? सुनूँगा। लेकिन सुचिन्ता—।

—क्या? क्या कहना चाहते हो? सुचिन्ता भी मन ही मन विच–

ा, तुम्हारे कहने से ही मान लूंगा। जरूर तुम

न्ता उसी उदासी के साथ बोली—मुझे याद नहीं पड़ रहा है।
ताओ न, किसने तुम्हें क्या कहा है?

शोभन नाराजगी के साथ बोले—वही तो पूछ रहा हूं। दिमाग में बातें इकट्ठी हो गई हैं, सब गड़बड़ा रहा है। अच्छा वे सारे लोग गए हैं कहो तो?

सुचिन्ता के सर पर दुश्चिता का पहाड़ था। बेचारी अथाह समुद्र में कर किनारा नहीं पा रही थी। इसके बाद क्या होगा, यह चिन्ता उ ाए जा रही थी।

नीता यहां थी तो लगता था पैरों के नीचे जमीन है। पर जमीन पर पैर रहने से ही क्या सच्चाई की परीक्षा हो सकती है? हिम्मत की परीक्षा हो सकती है?

सुशोभन अधीर होकर फिर बोले—इतना क्या सोच रही हो सुचिन्ता? वे सब लोग कहां चले गए?

सुचिन्ता थकी-थकी-सी बोली—कौन लोग?

—क्या आश्चर्य है? कौन लोग, नहीं जानती? जो लोग यहां रहते हैं।

वे लोग कहां गए, सो तो तुम्हें बताकर ही तो गए हैं सुशोभन। नीता विलायत चली गई। मेरा बड़ा और छोटा उसे हवाई जहाज तक छोड़ने गए हैं।

—नीता चली गई? सुशोभन व्याकुल होकर बोले—सुचिन्ता, नीता क्यों चली गई? क्या वो गुस्से में आकर चली गई?

—नहीं। गुस्सा क्यों करेगी! सुचिन्ता आहिस्ते से बोली—सा बातें तुम्हें बताकर ही तो गई है। वह लड़का, जिसके साथ नीता की शा होने वाली है, वह इस समय बीमार है। नीता उसे देखने गई है।

सुशोभन थोड़ा चुप रहकर बोले—ओ, समझ गया।

—क्या समझ गए?

—नीता मुझसे नाराज होकर चली गई है। सुशोभन उदास

बनाकर बैठे रहे।

सुचिन्ता धीरे से सुशोभन के मोटे बलिष्ठ हाथ पर अपना एक हाथ रखकर बोली—नीता शायद तुम पर नाराज क्यों होगी? तुमने क्या किया है?

सुशोभन आज उस स्पर्श के प्रभाव से विचलित नहीं हुए। अनमने से बोले—क्या मालूम? लगता है, मैंने बहुत सारी गलतियाँ की हैं। मुझे जोर-जोर से रोने की इच्छा हो रही है सुचिन्ता।

—छिः ऐसा नहीं कहते। सुचिन्ता बोली—थोड़े ही दिनों में नीता वापस लौट आएगी।

सुशोभन अपना सर हिलाकर बोले—नहीं, वह वापस नहीं आएगी।

—मैं कह रही हूँ न कि नीता वापस आएगी।

सुशोभन हैरान होकर बोले—तुम कह रही हो कि वह लौटेगी? तुम सारी बातें समझ सकती हो सुचिन्ता?

—हाँ। मैं समझ सकती हूँ। सुचिन्ता हल्के मन से बोली—देखो न, जैसे अब समझ रही हूँ कि तुम्हें इस समय भूख लगी है।

—नहीं तो?

—वाह! तुम खुद ब खुद थोड़े ही समझ सकते हो?

सुशोभन सर हिलाकर बोले—मैं नहीं समझ सकता पर नीता समझ जाती है। पर इस समय मैं जानता हूँ कि मुझे भूख नहीं लगी है।

—कोई किताब पढ़ कर सुनाऊँ, सुशोभन?

—नहीं।

—नहीं क्यों? थोड़ी देर पढ़ती हूँ।

—आह। सुचिन्ता। तुम बहुत जबर्दस्ती करती हो।

—ठीक है, अब से नहीं कहूँगी।

—सुचिन्ता, तुम नाराज हो रही हो?

—हाँ! तुम मेरी बात जो नहीं मान रहे हो?

सुशोभन थोड़ा विचलित हुए। बोले—सुनूँगा क्यों नहीं? सुनूँगा। लेकिन सुचिन्ता—।

—क्या? क्या कहना चाहते हो? सुचिन्ता भी मन ही मन विचलित

हो रही थी।

क्या सुशोभन बदल रहे थे ?

नीता के सामने क्या सुचिन्ता हार जाएगी ? पर सुचिन्ता ने अपने मन में शपथ ली कि वह हार नहीं मानेगी। बोली—हाँ, सुशोभन, मेरी बात तुम्हें माननी ही पड़ेगी। कल से हम और तुम घूमने चलेंगे।

सुशोभन बड़े खुश हुए, बोले— अभी चलो न सुचिन्ता। जिनके घर तोड़े जा रहे थे, उन बस्ती वालों से जाकर मिल आएँ, वे लोग कहाँ गये होंगे। उठो, जल्दी चलो।

—किन लोगों के घर तोड़े गए ? कहीं किसी का घर नहीं टूटा है।

—नहीं टूटा है ? तुम्हारे कहने से ? फावड़े से मार-मार कर तोड़े गए हैं। नीता बोल रही थी, उनके घर फिर से बनवा दिए जाएंगे। ये फिजूल की बात है। मैं कह रहा हूँ, इनके घर नहीं बनेंगे। एक बार घर टूटने पर फिर क्या बनता है ?

सुचिन्ता अचानक सुशोभन के कंधे पर हाथ रखकर बुझी-बुझी-सी आवाज में बोली— क्यों नहीं बनता है, कहो तो सुशोभन ?

अचानक पागल सुशोभन ने टेबल पर से एक शीशे का गिलास उठा कर जमीन पर पटक दिया। गिलास जोर की आवाज के साथ टूट गया।

सुशोभन बोले—क्यों नहीं होता है, तुम्हीं बताओ सुचिन्ता ? फिर सन्तोष की हँसी हँसकर बोले—नहीं, बता सकती हो न ? पागल की बकवास है। तुम्हारी बातचीत सुनकर कभी-कभी मुझे लगता है कि धीरे-धीरे तुम्हारा दिमाग खराब होता जा रहा है। तुम पागल हो रही हो।

—तुम्हें ऐसा लगता है सुशोभन ? सुचिन्ता बोली।

—हाँ, लगता है। सुशोभन अपनी बातों पर जोर देकर बोले—कभी-कभी इतनी फालतू बातें किया करती हो। नीता विलायत गई है और तुम कह रही हो कि नीता मुझ पर नाराज होकर चली गई है।

अपनी बातों का जवाब सुशोभन स्वयं ही दे रहे थे।

□

—बाहर मुझे एक नौकरी मिल रही है। रूखी आवाज में निरंजन ने इस नई खबर की घोषणा की।

सुचिन्ता सब्जी काट रही थी। रुक गई। उसने बेटे की कही हुई बात को ही दोहराया। बोली—बाहर नौकरी मिल रही है?

—हाँ।

—कहाँ? मानो यह कोई प्रश्न नहीं था। सुचिन्ता के मुँह से यों ही निकल गया था।

—किसी एक शहर में। जरूरत से ज्यादा निरंजन बोलना नहीं चाहता था। शहर का नाम बताना भी उसने आवश्यक नहीं समझा।

सुचिन्ता आगे क्या कहती? क्या व्याकुल होकर लड़के से पूछती—तू क्यों अचानक बाहर नौकरी के लिए जाना चाहता है? या फिर पूछती—वहाँ काम कैसा है? यहाँ की नौकरी से अच्छी है क्या? तनख्वाह ज्यादा मिलेगी? रहने-खाने का क्या इन्तजाम है? पर नहीं! सहज मातृ हृदय से उठे हुए ये आसान प्रश्न पूछने का सुचिन्ता के पास कोई उपाय नहीं था, क्योंकि सुचिन्ता ने ही अपने लड़कों को सहज साधारण ढंग से नहीं पाला था। इसलिए थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोली—जाने का एकदम निश्चय कर लिया है?

—हाँ।

—निरु को कहा है?

—कहने की कोई जरूरत नहीं।

—नहीं जरूरत तो क्या है! बड़ी सावधानी से सुचिन्ता ने अपनी लम्बी साँस को रोक रखा।

निरंजन बोला—निरुपम से अनुमति लेने के लिए कह रही हो? बड़ा भाई, सम्माननीय व्यक्ति जो ठहरा।

सुचिन्ता अवाक् रह गई। चुप रही, कुछ बोली नहीं।

—रात नौ बजे की गाड़ी पकड़ूँगा। इतना कहकर निरंजन जाने लगा, पर अब सुचिन्ता 'अनुपम कुटीर' का धैर्य नहीं रख सकी। वह आर्तनाद कर उठी—आज ही चला जाएगा?

हाँ, आज ही जाऊँगा। परसों रिपोर्ट करना है।

—बाहर की नौकरी पकड़नी बहुत जरूरी थी? सुचिन्ता धीरे-धीरे ककर बोली—यहाँ की नौकरी भी तो अच्छी थी।

निरंजन एकाएक कड़े स्वर में बोला—यहाँ की नौकरी बुरी नहीं थी न यहाँ मेरे लिए रहना असहनीय हो गया है माँ। इस असहनीय जगह मुक्ति पाने के लिए आधी तनख्वाह पर मुझे दूसरी जगह जाना पड़ रहा। कहकर निरंजन अपने कमरे में चला।

सुचिन्ता चुपचाप बरामदे की रेलिंग पर हाथ टिका कर खड़ी रही। आकाश में बादल तैर रहे थे। विलक्षण व्यक्तियों का कहना है जीवन बिल्कुल आकाश की तरह है। वहाँ सुख-दुख के बादल आते-जाते रहते हैं। जीवन में कुछ भी स्थायी नहीं होता। सफेद बादलों को सफेद और काले बादलों को काला समझ कर घबराने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि बादल का अपना कोई रूप-रंग नहीं होता। वह बनता है फिर पानी के रूप में बरस जाता है, फिर बनता है।

बादलों के इस प्रकार के आने-जाने से आकाश का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। सुचिन्ता भी क्या आकाश की तरह न हो जाए?

इसी बीच कब तो सुशोभन अपने कमरे से बाहर निकल आए, और कब सुचिन्ता की बगल में आकर खड़े हो गए, सुचिन्ता को पता ही न चला। उनकी बातों से एकाएक सुचिन्ता की सुधि लौट आई।

सुशोभन बोले—सुचिन्ता, तुम्हारा लड़का तुम्हें डाँट क्यों रहा था?

सुचिन्ता झट बोली—नहीं, नहीं, डाँटा तो नहीं है।

—नहीं डाँटा है तो फिर तुम इतनी उदास क्यों खड़ी हो?

...उदास नहीं हूँ सुशोभन!

सुशोभन अपना सर हिला कर बोले— तुम्हारे कहने से मैं मा
थोड़े ही? मैंने देखा है, तुम्हारा मन खराब है। मैं यह भी जानता
तुम्हारे लड़के तुम्हें डाँटते हैं। चलो सुचिन्ता, हम दोनों यहाँ से कहीं
चले जाएँ।

सुचिन्ता सुशोभन की तरफ देखकर बोली—चली जाऊँ? क

सुशोभन आहिस्ते से बोले—वहाँ, जहाँ तुम्हारे ये लड़के न

सिर्फ हम-तुम मिलकर गप-शप करेंगे। यहाँ, जहाँ ये लोग हमें घूरेंगे नहीं।

सुचिन्ता सुशोभन को कुछ देर तक अपलक देखती रही फिर अवरुद्ध स्वर में बोली—वे लोग हमे किस दृष्टि से देखते हैं, तुम समझते हो सुशोभन ?

—क्यों नहीं समझूँगा ? सुशोभन असहिष्णु होकर बोले—मैं क्या काना हूँ सुचिन्ता ? मुझे कुछ दिखाई नही देता क्या ?

—तुम सब कुछ देख सकते हो ? सब कुछ समझ सकते हो ? अचानक सुचिन्ता सारा विवेक भूलकर सुशोभन का हाथ पकड़कर आवेशपूर्ण आवाज मे बोली—मेरी यंत्रणा, मेरे कष्टों को तुम समझ सकते हो ?

—गाडी के लिए खाना देने की कोई जरूरत नहीं है। शायद निरंजन यही कहने आया था, पर आते-आते वह रुक गया। कुछ बुदबुदाता हुआ फिर अपने कमरे मे वापस चला गया।

—उसने क्या कहा ? सुशोभन ने पूछा।

'बर्दाश्त के बाहर है ?' या 'फुलिशन' या 'रबिश' ? सुचिन्ता ठीक से समझ नही पाई।

अपने कंधे पर झुकी हुई सुचिन्ता के सर को सुशोभन ने दूर हटा दिया। बोले—देखा न सुचिन्ता, मैं तो पहले ही कह रहा था। तुम्हारे लड़के फैन ही तो घूरते हैं।

—घूरने दो, घूरने दो। जिसकी जैसी मर्जी, वैसी आँखों से मुझे घूरे। सुचिन्ता तीव्र आवेग के साथ बोली—हम अब उस ओर ताकेंगे भी नहीं। हम अब और नही सोचेंगे। चलो, सचमुच ही हम कहीं और चलते हैं।

थोड़ी देर पहले सुशोभन स्वयं यह बात कह रहे थे—चलो सुचिन्ता, हम कहीं और चलते हैं, पर अब जब सुचिन्ता ने यह बात कही तो वे चुप रहे। खुश नहीं हुए। बोले—मुझे सोचने दो सुचिन्ता। दिमाग मे सब गोलमाल हो रहा है। मुझे सोचने दो।

पागल आखिर क्या सोच ही सकता है ? या सोच-सोच कर ही कोई पागल बन जाता है ?

सुचिन्ता भी क्या धीरे-धीरे पागल हुई जा रही थी ?

—डा० पालित ने एक बार इन्हें अपने चेम्बर में बुलवाया है।
सी को कुछ सम्बोधन किए बिना निरुपम ने आकर यह बात कही।
कहकर वह किसे समझाना चाहता था?
लेकिन सुचिन्ता को तो जवाब देना ही पड़ेगा। उपाय भी क्या था।
न्ता बोली—ठीक है, ले जाना। किस समय जाना है?

—वही ग्यारह बजे। जिस समय हमेशा जाते हैं।

—कल तुम्हारा कालेज नहीं है? सुचिन्ता ने बड़ी सावधानी से
छा।

—है, लेकिन क्या किया जा सकता है? निरुपम बोला—जाना तो
है ही।

सुचिन्ता बोली—अगर पता बता दो, सुबल को साथ लेकर मैं भी जा
सकती हूँ।

—तुम जाओगी माँ?

—क्यों कोशिश करने में क्या हर्ज है?

—अगर वैसी जरूरत कभी पड़ी तो कोशिश भी करना। निरुपम
बोला—नीता जाते समय यह भार मुझ पर सौंप गई थी, यानी अनुरोध
कर के गई थी।

—ठीक है। डाक्टर से कहना इन की भूख बुरी तरह घट गई है।

—कह दूंगा, पर डाक्टर उस तरफ विशेष ध्यान नहीं देते। मुझे तो
ऐसा ही लगता है।

—तुम्हें ऐसा लगता है?

—हां, कुछ भी कहने पर कहते हैं, इसमें घबराने की कोई बा
नहीं।

—डाक्टर ने एक बार मेरी भी मिलने की इच्छा है।

—भेंट करने में क्या दिक्कत है? निरुपम बोला। पर यह नहीं
ठीक है, कल मेरे साथ तुम भी चली चलना।

थोड़ी देर चुप रहकर सुचिन्ता बोली—निरंजन ने तुम्हें कु

—निरंजन ! मुझे ? किस विषय पर ?

—वह आज चला जा रहा है···।

—चला जा रहा है ?

—हाँ। दूसरे किसी शहर में नौकरी ले ली है।

—आज ही जा रहा है ? बाहर नौकरी भी जुटा ली है ? निरुपम सुनकर हैरान रह गया।

सुचित्रा कठिन भाव से बोली—हाँ, अभी मुझे कह कर गया है। यहाँ की नौकरी से आधी तनख्वाह पर जा रहा है। यहाँ रहना उसके लिए असहनीय हो गया है।

निरुपम कुछ बोला नहीं। माँ की ओर देखता रहा।

सुचित्रा फिर बोली—हो सकता है, कभी तुम्हारे लिए भी यहाँ रहना दूभर हो जाय। इन्द्र के लिए भी यहाँ रहना असहनीय हो उठेगा। तब तो तुम सभी इस जगह को छोड़कर कहीं और जाना चाहोगे।

—निरंजन को तुम क्या दोष देना चाहती हो माँ ? निरुपम ने निर्लिप्त भाव से पूछा।

—नहीं, दोष क्यों दूंगी। दोष देने के लिए है ही क्या ? असहनीय लगना ही स्वाभाविक है, लेकिन क्या मुझे बता सकते हो कि इस परिस्थिति में मैं और कर भी क्या सकती थी ? दूसरी कोई होती तो दूसरा क्या करती ?

—मैंने तो तुमसे कोई कैफियत नहीं माँगी है माँ !

एकाएक सुचित्रा उत्तेजित हो उठी। बोली—क्यों नहीं माँगते कैफियत ? कैफियत माँगना ही उचित है। तुम लोग बड़े हो गए हो। तुम लोग मेरी गलतियों के लिए कैफियत माँग सकते हो। मेरी बेवकूफी पर मुझे सलाह दे सकते हो, मेरी···।

—मैं किसी के किसी भी काम को अन्याय नहीं मानता, माँ। हर कोई अपनी समझ से कुछ करता है, उसके लिए वही स्वाभाविक होता है। और बेवकूफी की बात अगर पूछती हो तो, खामखा मैं क्यों किसी को बेवकूफ मान लूँ जब कि वह है नहीं।

सुचित्रा विक्षुब्ध हो उठी। बोली—निरंजन चला जाएगा। तुम

रोकोगे नहीं ?

इसमें रोकने का क्या है ? आदमी क्या परदेश में नौकरी करने के

ता नहीं ?

—क्या वे इस तरह से जाते हैं ?

निरुपम थोड़ा हँसा। बोला—जाने के ढंग से क्या आता-जाता है सिर्फ जाना सच है।

सुचिन्ता उत्तेजित भाव से बोली—नीता जो मर्जी करती रही, म्मेदारी से छूट कर अपनी बात सोचकर चली गई। मैं अब सुशोभन को लेकर क्या करूँ, कहो ?

—नए सिरे से और कुछ करने के लिए कुछ नहीं है माँ। और तुम क्या करोगी, यह प्रश्न आज का नहीं है। यह सोचने का दिन तो शुरू का वह पहला दिन था।

सुचिन्ता बिल्कुल बुझ गई, ठंडी पड़ गई। बुझी-बुझी-सी आवाज में बोली—अच्छा, रहने दो ये बातें। लेकिन एक बात कहना ठीक रहेगा कि सुशोभन आजकल बहुत कुछ समझने लगा है। अवहेलना, असम्मान, यह सब वह पकड़ लेता है।

निरुपम थोड़ा चुप रहकर बोला—अवहेलना और असम्मान की बात, मेरी तरफ से कभी उठी नहीं है और उठेगी भी नहीं, पर दूसरों के लिए मैं क्या कह सकता हूँ।

सुचिन्ता क्या आज अपने बेटे से झगड़ा करने पर तुल गई थी ? जैसा कभी उसने बेडरूम के बँटवारे पर किया था। वैसे तो अपने सभी बेटों से सुचिन्ता की दूरी थी, पर निरुपम के साथ वह दो चार बातें कर भी ले थी, पर क्या इसीलिए वह आज निरुपम के साथ झगड़ा करना चा थी। सुचिन्ता बोली—अवहेलना या असम्मान शायद नहीं करते हो उनके प्रति तुम लोग सन्तुष्ट भी तो नहीं हो। सुचिन्ता की आव अभियोग था।

निरुपम बोला—सन्तुष्ट या असन्तुष्ट की बात इतने दिनों क्यों उठ रही है, यह नहीं समझ में आ रहा है। हम लोगों के स ले में किसी का क्या आता-जाता है ? तुम्हें किसी नई

का सामना करना पड़ रहा है क्या ?

—मेरी असुविधा ? क्या मैं अपने लिए कह रही हूँ ? मैं तो यह कहना चाहती हूँ कि सुशोभन कभी-कभी होश में आ जाते हैं, और उस समय अपने प्रति अवहेलना का भाव देखकर शायद दुख से फिर···।

—मुझे क्या करने के लिए कह रही हो, मैं ठीक से समझा नहीं।

सुचिन्ता बोली—कठिन परिश्रम का कोई काम नहीं बता रही हूँ। थोड़ी सहानुभूति के साथ बातचीत करना, थोड़े नरम भाव से उनकी ओर देखना, इतने से ही—।

निरुपम ठंडी आवाज में बोला—कोशिश करूँगा। जितना हो सके कोशिश करूँगा। लेकिन अगर बहुत बड़ी कोई उम्मीद रखती हो तो जबान देना कठिन है।

—उम्मीद करूँगी ? मैं तुम लोगों से बहुत बड़ी कोई उम्मीद करूँगी ? नहीं निरू, दुनिया में किसी से मेरी कोई उम्मीद नहीं है, पर बीमार आदमी के लिये थोड़ी करुणा की भीख माँग रही हूँ।

निरुपम के चेहरे पर एक सूक्ष्म हँसी की रेखा खिंच गई। बोला—बीमार आदमी की बात सोच-सोच कर अगर कोई स्वस्थ आदमी भी बीमार पड़ जाए तो करुणा किस पर की जाए माँ ? करुणा शब्द ही मन से मिट जाता है।

सुचिन्ता निरुपम के व्यंग्य को पचा नहीं पाई। तीखी आवाज में बोली—करुणा कभी नहीं मिटती है निरू। विशेष अवसर पर करुणा की धार अपने आप ही बरसने लगती है। बड़े बुजुर्गों का अपमान और असम्मान करना तुम्हारे इस युग का धर्म है। इसलिए निरंजन कहाँ जा रहा है, इतना भी बताना उसने उचित नहीं समझा। इन्द्र किसी लड़की के साथ जहाँ-तहाँ अपनी मर्जी से घूम फिर रहा है। और तुम ?

—मेरी बात रहने दो माँ। मैं जैसा था, वैसा ही हूँ, वैसा ही रहूँगा। कहकर निरुपम चला गया।

सुचिन्ता स्तब्ध होकर खड़ी रही। पर सुचिन्ता कब तक चुपचाप खड़ी रह सकती थी। घड़ी ने समय सूचित किया कि सुशोभन के नहाने का समय हो गया है। सुचिन्ता इसे टाल नहीं सकती थी। मकड़े

वह अपने ही जाल में फँसती जा रही थी !

निरंजन जा रहा था इससे सारा घर स्तब्ध बना हुआ था। बस्ता, बिस्तरबंद नीचे ले जाने के लिए सुबल मूक बना खड़ा था। निरंजन का इस तरह से चला जाना, आम लोगों की तरह परदेस में नौकरी पर जाने के समान नहीं था। मानों यह बात सबको मालूम हो गई थी।

इन्द्रनील सुबह-सुबह कृष्णा के घर के लोगों के साथ कहीं पिकनिक पर गया था और अभी-अभी लौटा था। निरंजन को जाते देख तो वह भी आश्चर्यचकित हो गया।

इन दिनों ज्यादा बोल-बोल कर उसका संकोच खत्म हो गया था। बड़ी आसानी से उसने पूछा — क्या बात है भैया ? इसका मतलब क्या है ?

निरंजन बोला—'मतलब' की व्याख्या करना जरूरी नहीं है। बाहर एक नौकरी मिली है। जा रहा हूँ बस।

—बाहर ! कहां ?

—बंगलौर।

कमरे के अन्दर बैठी सुचिन्ता ने भी यह सुना और तभी जान सकी कि उनका लड़का नौकरी करने बंगलौर जा रहा था।

इन्द्रनील बोला—यह तो अच्छा हुआ। बड़े मजे से बच निकले, जी जाओगे।

अपने छोटे बेटे की बात सुनकर सुचिन्ता दंग रह गई। घर छोड़ कर निरंजन जी जाएगा, यह बात उसी का बेटा कह रहा था, और अपने भाई को इसके लिए बधाई दे रहा था। इन्द्रनील बोल रहा था—मेरे लिए भी कोई नौकरी-वौकरी देखना भैया तो मैं भी अपना रास्ता नापूं।

सुचिन्ता के लड़के रास्ता नापना चाहते हैं। परदेस में जैसी-तैसी नौकरी पाने पर भी ये खुश रहेंगे।

निरंजन इन्द्रनील से बोला—क्यों, तुम तो अच्छे भले रह रहे हो।

—हां, अच्छा तो हूँ ही। जितनी देर हो सके घर से बाहर रहता हूँ। जो मर्जी कर रहा हूँ। खाने पीने के बंधन ने इस घर के साथ बांध रखा है। अगर उसका इन्तजाम हो जाए तो एक घंटा भी नहीं रहूँगा।

निरंजन व्यंग्य से बोला—क्यों, तुम किस बात से इतने असहिष्णु बन

रहे हो ? तुम तो इतने नीतिपरायण आदमी लगते नहीं।

—नीति या दुर्नीति की बात मैं नहीं जानता, भैया। जो मुझे अच्छा नहीं लगता, उसे मैं सह भी नहीं पाता, सीधी सी बात है। खैर, रहने दो। चलो तुम्हें ट्रेन में चढ़ा आऊँ। खाना खा लिया है ?

—स्टेशन पर खा लूँगा।

—स्टेशन पर खाओगे ? क्यों ? अभी तो आठ ही बजे हैं, आसानी से····।

—नहीं। वही ठीक रहेगा। सुबल ! सामान नीचे उतारो।

— सुबल विनय के साथ बोला—पहले टैक्सी बुला लेना शायद अच्छा रहेगा।

निरंजन बोला—नहीं। बाहर निकल कर रास्ते में पकड़ लूँगा। इन्द्र, तुम्हें चलना है तो चलो। हालांकि इसकी कोई खास जरूरत नहीं।

—जरूरत तुम्हारी नहीं भैया, मेरी है। तुम्हारा पता वगैरह तो ले लूँ। हो सकता है कभी कलकत्ता छोड़कर तुम्हारे घर आकर ही शरण लेनी पड़े। तुमसे मुझे ईर्ष्या हो रही है भैया।

—निरंजन की नौकरी किस तरह की थी, उस नौकरी में उसका क्या भविष्य था, यह जानने की जरूरत इन्द्रनील को नहीं थी। निरंजन घर छोड़कर जाने में सक्षम है, यह इन्द्रनील के लिए बहुत बड़ी बात थी।

माँ के कमरे के दरवाजे के पास आकर निरंजन बोला—ट्रेन का समय हो रहा है।

अगर वहाँ कोई निष्पक्ष आदमी मौजूद होता तो निरंजन की प्रशंसा ही करता। लड़के के परदेस जाते समय जो माँ घमण्ड से अपने कमरे में घुसी बैठी थी, उस माँ को जाते वक्त निरंजन का इतना कहना ही काफी था। जो माँ उद्वेलित होकर बेटे को गले नहीं लगा सकती थी, उस माँ पर किसकी सहानुभूति होगी। दस लोग छिः-छिः ही तो करेंगे।

शास्त्रों में भी कहा है—स्नेह निम्नगामी है।

कहावत भी है, कुपुत्र हो सकता है पर कुमाता कभी नहीं होती।

पर सुचिन्ता यह क्या कर रही थी ? निरंजन ने फिर भी जाते समय

तो कहा, पर सुचिन्ता अपने कमरे में ही बैठी रही। जो बाहर निकल
सामने आए, वे थे सुशोभन। परली तरफ के कमरे से पैरों की
री आवाज करते हुए आकर सारी परिस्थिति पर नजर दौड़ाकर एका-
क डपट कर बोले—तुम लोगों ने आखिर सोचा क्या है? इस तरह से
क्यों सब लोग चले जा रहे हो?

उनकी बातों का किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। पर हमेशा से चुप
रहने वाला सुबल बोल उठा—आप तो हैं न बाबू। यही बहुत है।

अचानक सुशोभन चिल्ला उठे—तुम चुप रहो। तुम इस घर के नौकर
हो, समझे? मैं इन लड़कों से पूछ रहा हूं।

सुबल कुछ बुदबुदाता हुआ सामान लेकर नीचे चला गया।

सुशोभन पास आकर बोले—तुम लोग नीता के पास जा रहे हो?

इन्द्रनील कौतुक के साथ बोला—नीता के पास हम क्यों जाएं, हमें
जरूरत क्या है।

—जरूरत नहीं है? नीता के पास जाने की जरूरत नहीं है? फिर
तुम लोगों को जाने की क्या जरूरत है?

इन्द्रनील बोला—क्यों, हम लोगों का जाना ही तो आपके लि
अच्छा है। घर में इतने सारे लड़के आपको पसन्द भी तो नहीं।

सुशोभन बोले—हां, यह तो सच है। तुमने ठीक कहा है। पर
लोग एक साथ चले जाओगे तो सुचिन्ता रोएगी।

—नहीं। रोएगी क्यों? पागल को सम्मान देना कोई जरू
था, इसलिए इन्द्रनील तीखी आवाज में बोला—क्यों आप तो हैं?

—हां, मैं तो हूं। सुशोभन गम्भीर होकर नाराजगी के साथ
तुम लोगों की बातचीत करने का ढंग अच्छा नहीं है समझे?
है। अब से अच्छी तरह से बात करना सीखना। नीता से सी
नीता तो कभी तुम लोगों की तरह नहीं देखती है। तुम्हारी त
भी नहीं है।

इन्द्रनील आगे क्या कहता, पता नहीं; पर इसी बीच
कारमय छोटे कमरे में से सुचिन्ता बाहर निकल कर आ
अपने कमरे में जाओ। तुम्हें बाहर आने की ज

कहकर सुचिन्ता फिर अपने कमरे में घुस गई।

सुशोभन भी अपने कमरे में जाकर बड़बड़ाने लगे—जरूरत नहीं है, जरूरत नहीं है, मतलब क्या है इसका ? सब चले जायेंगे तो तुम रोओगी। मैं नहीं समझता क्या ? ये लोग तुम्हें प्यार नहीं करते हैं, तुम्हें डाँटते रहते हैं, फिर भी तुम इन लोगों के लिए रोओगी। तुम इतनी बेवकूफ क्यों हो सुचिन्ता ?

निस्तब्ध मकान से धीरे-धीरे निरंजन और इन्द्रनील निकल गए।

नीता इस घर की लड़की नहीं थी। फिर भी उसके जाने पर घर में एक सूनापन आ गया था। निरंजन के जाने का पता ही नहीं लगा।



निरंजन कल रात चला गया था। सुबह से गृहस्थी का पहिया यथा-वत् चल रहा था। निरंजन के कमरे के दरवाजे पर भारी बादामी रंग का पर्दा लटक रहा था। पर्दे की दूसरी तरफ कितनी शून्यता थी, इस पार से समझा नहीं जा सकता था।

निरंजन की कमी का पता एकमात्र शायद सुबल को ही लगा। वह भी सुबह की चाय बनाते समय और दिन का खाना बनाते समय।

पर सुचिन्ता भी इस बात का अनुभव करना चाह रही थी कि निरंजन नहीं था। निरंजन चला गया था। इसलिए सुचिन्ता भारी पर्दा हटाकर निरंजन के कमरे में आई।

सुचिन्ता की इस कमजोरी को कोई देख नहीं पा रहा था। थोड़ी देर पहले निरुपम सुशोभन को लेकर डाक्टर के पास चला गया था। इन्द्रनील कब कहाँ गया, किसी को पता नहीं था। नौकरानी काम करके चली गई थी और सुबल बाजार से फल लाने गया था।

फिर भी सुचिन्ता को डर लग रहा था। मानो सुचिन्ता की साधारण सी इस कमजोरी को शायद कोई देखकर हँस उठेगा। असाधारण होना बड़ा कष्टदायक है।

सच में, साधारण लोग कितने सुखी हैं।

सुचिन्ता अगर साधारण होती तो बेटे के पलंग पर गिरकर मुँह छुपा-

कर रो पड़ती। जिस पलंग पर से गद्दा, तकिया और चद्दर उठा लिया गया था। केवल नीचे वाला मोटा गद्दा पड़ा हुआ था। निरंजन अपनी निष्ठुरता को कितना निरावरण कर गया था, यह सूना कमरा मानों उसी का प्रतीक था।

सुचिन्ता स्तब्ध होकर खड़ी-खड़ी चारों तरफ देखती रही। निरंजन की कुर्सी, टेबल, छोटी आलमारी, अलगनी, छोटी टेबल, टेबल लैम्प, सब कुछ वैसा का वैसा पड़ा था। पलंग के नीचे उसका रंग-विरंगा पायदान भी वैसे ही पड़ा था। ये चीजें जरा भी इधर-उधर हो जातीं, तो निरंजन को बुरा लगता था। इन चीजों के विना निरंजन का काम चलेगा कैसे? जरूर फिर सब कुछ नया बनवा लेगा। पुरानी चीजों को मिट्टी के समान तुच्छ समझकर निरंजन नए संचय के नशे में लग गया होगा।

फिर भी निरंजन की कोई निन्दा नहीं करेगा। कोई नहीं कहेगा, तुमने ऐसा क्यों किया? निरंजन सबको यही कहेगा,—मेरे लिए वहाँ रहना असहनीय हो गया था। सुनने वाले भी यही कहेंगे—तुम ठीक कह रहे हो निरंजन। कैसे रहते थे वहाँ?

सुचिन्ता के मन में एक वार आया—निरंजन का घर नई चीजों से भर उठेगा। फिर सोचा—निरंजन के जाने के लिए क्या मैं जिम्मेदार हूँ?

निरंजन नीता की तरफ जिस दृष्टि से देखता था, यह क्या सुचिन्ता ने नहीं देखा था?

सुचिन्ता क्या नीता को अभिशाप देती?

निरंजन क्या वापस लौटकर कभी नहीं आएगा?

निरंजन की किताबें तो यहीं पड़ी रहीं। किसी एक छुट्टी में कम से कम किताबें लेने के लिए भी नहीं आएगा? क्या उस दिन सुचिन्ता साधारण हो जाएगी? लड़के का हाथ पकड़कर वोलेगी—अव तू नहीं जा पाएगा। तेरे जाने से मुझे कष्ट होता है।

पर नहीं, सुचिन्ता ऐसा नहीं कर सकेगी। निरंजन के पलंग के हत्थे पर हाथ रखकर स्तब्ध होकर सुचिन्ता ने निरंजन की अलगनी की तरफ देखा। पूरी अलगनी खाली थी। सिर्फ एक फटा तौलिया और एक अधमैला वनियान लटक रहे थे।

सुचिन्ता को शायद होश नहीं था पर उसके गालों पर आँसू के बूँद टपक पड़े।

□

—'माँ!'

सुचिन्ता चौंक उठी।

घर में तो कोई था नहीं, फिर किसने पुकारा? और वह भी 'माँ' कहकर किसने पुकारा? यह पुकार क्या सुचिन्ता के अपने मन की आकुल इच्छा थी?

उसका मन उद्वेलित हो उठा।

सुचिन्ता जल्दी-जल्दी कमरे से निकल आई। सामने निरुपम और सुशोभन खड़े थे। ये लोग भी आ गए। कितनी देर तक सुचिन्ता इसी तरह अनमनी-सी रही?

पर क्या निरुपम ने उसे 'माँ' कहकर पुकारा था, सुचिन्ता समझ नहीं पाई। सुशोभन आगे बढ़कर बोले—तुम इस कदर अनमनी रहती हो सुचिन्ता। सारा घर खुला पड़ा है, हम तुम्हें ढूँढ़ रहे हैं और तुम्हें इसकी सुध ही नहीं। चोर आकर अगर सब लूट ले जाता तो?

—चोर मेरा क्या लेगा? सुचिन्ता बोली।

निरुपम धीरे-से अपने कमरे में चला गया।

सुचिन्ता थोड़ी देर तक उस तरफ देखती रही। फिर बोली—चलो, तुम्हारे खाने का समय हो गया है।

थोड़ी देर पहले सुचिन्ता रोई थी, यह वह उन्हें पता लगने नहीं देना चाहती थी।

सुशोभन बोले—खाऊँगा बाबा! हर समय खाने-पीने की चिन्ता। थोड़ी देर बैठो न।

—ठीक है, बैठती हूँ। कहो, तुम्हें क्या कहना है?

सुशोभन गम्भीर हो गए। बोले—इस तरह से बोलने पर क्या कुछ कहा जा सकता है? सब गड़बड़ा जाता है। पर मुझे लगता है, तुम रो रही थीं, सुचिन्ता। लेकिन…।

—कैसी मुश्किल है, सुशोभन। मैं रोऊँगी क्यों? हर समय तुम मुझे
रोते देखते हो।

—रो नहीं रही थीं? अच्छी बात है। शायद फिर तुम्हारा चेहरा ही
दल गया है। पहले लगता था·· दिनाजपुर में लगता था, तुम हर समय
सती रहती थी पर अब लगता है, तुम रोती रहती हो। लेकिन सुचिन्ता,
तुम्हारा यह बड़ा बेटा उतना क्रोधी स्वभाव का नहीं है। वह मुझे संभाल
कर ले गया था। उसने मुझसे प्यार से बातें कीं।

—तुम्हें संभालकर ले गया था? तुम्हें प्यार दिया था? एकाएक
मन का सारा भार उतारकर सुचिन्ता हँस पड़ी। बोली—अच्छा? तुम्हें
कैसे मालूम? उसने तुमसे कहा है क्या?

सुशोभन असन्तुष्ट स्वर में बोले—कहेगा क्यों? नहीं कहने पर क्या
समझा नहीं जा सकता? तुम क्या मुझे पागल समझती हो?

पर सुचिन्ता शायद खुद पागल थी, इसलिए सुशोभन के करीब आकर
बोली—तुम्हें पागल क्यों समझूँगी। पर किसी के नहीं कहने पर भी तुम
कैसे कुछ समझ जाते हो यही पूछना चाहती थी। मैं तुम्हें प्यार करती हूँ
या नहीं, तुम समझ सकते हो?

सुशोभन गम्भीर हो उठे। सुचिन्ता को थोड़ी दूर धकेलकर बोले—
समझ सकता हूँ। पर तुम्हें इतना नजदीक नहीं आना चाहिए सुचिन्ता
तुम्हारा लड़का गुस्सा करके चला जाएगा।

सुचिन्ता तीखी आवाज में चिल्लाकर बोली—जाने दो, सबको ज
दो। मैं किसी के गुस्से की परवाह नहीं करती। क्यों करूंगी? वे
प्यार कर सकते हैं, जिससे मर्जी प्यार कर सकते हैं, पर वह कोई अप
नहीं है। अपराध सिर्फ मेरा है?

सुशोभन डर गए। बोले—तुमने भी गुस्सा करना शुरू कर दि
सुचिन्ता। किसी को गुस्से में देखने से मेरे दिमाग में रेलगाड़ी के च
तरह आवाज होती है। तुम समझती नहीं हो?

रेलगाड़ी के चलने की आवाज क्या सिर्फ सुशोभन के
गूंजती थी, सुचिन्ता के दिल में नहीं? पर सुचिन्ता पागल नहीं
लिए उस आवाज को छाती में छुपाकर निरुपम के पास जाक

डाक्टर पालित ने क्या कहा? इस बार तो काफी दिनों के बाद बुलवाया था।

निरुपम हाथ की किताब मोड़कर मुँह उठाकर बोला—वह रहे थे हालत में बराबर सुधार हो रहा है।

—सुधार हो रहा है?

—हाँ। और यह एक नई दवा दी है—कहकर सामने के टेबल से एक शीशी उठाकर सुचिन्ता की तरफ बढ़ा दी—रोज रात सोने के पहले एक गोली देनी है।

सुचिन्ता फिर भी रुकी रही।

निरुपम माँ को खड़ी देखकर थोड़े अपनेपन के स्वर में बोला—यह दवा नई निकली है। इसको लेकर डाक्टरों के बीच तहलका मच गया था। जिन मानसिक रोगियों का दिमाग चंचल है, उनके लिए तो उपकारी है ही, जो मन से हारे हुए हैं, वैसे रोगियों के लिए भी···।

—सुशोभन किस दल में आते हैं? डाक्टर की राय है?

निरुपम धीरे-से बोला—कई तरह के ग्रुप हैं। मैंने विस्तार से सब कुछ तो पूछा नहीं, पर डाक्टर साहब कह रहे थे कि जिस तरह से धूप निकलने से आकाश से कोहरा छँट जाता है, उसी तरह आच्छन्न बुद्धि साफ होती जाती है, चेतना का विकास होता जाता है। इस दवा से लगातार घंटों नींद आती है, इससे स्नायु ग्रंथियों को आराम मिलता है और उनमें नई शक्ति आती है।

निरुपम क्या अपनी माँ पर दया कर रहा था?

सुचिन्ता ने पूछा—नीता की चिट्ठी आने का समय नहीं हुआ है?

—अगर उसने लिखा है तो समय तो हो गया है।

—बस वही एक टेलिग्राम आया था न? सुचिन्ता ने अपने बेटे की तरफ देखकर पूछा। सुचिन्ता क्या यह देखने आई थी कि निरंजन की तरह क्या उसका बड़ा बेटा भी नीता से प्यार करता था?

पर निरुपम सुचिन्ता की पकड़ में नहीं आया। उसने हाथ की किताब खोलकर आँखों के आगे रखकर कहा—हाँ।



कृष्णा के माँ-बाप अब इन्द्रनील पर दबाव डाल रहे थे। उनका कहना था—शादी अगर करनी है तो झटपट कर डालो। हमारी लड़की तुम्हारे साथ घूमेगी-फिरेगी और तुम शादी टाँगकर रखोगे, यह भी कोई बात है ?

इन्द्रनील बोला था—इस समय कैसे शादी हो सकती है ?

कृष्णा की माँ गम्भीर होकर बोली—इसमें कैसे का क्या है ? अग्नि और नारायण को साक्षी रखकर होगी। तुम्हारे-हमारे घरों के बीच रिश्ता जुड़ सकता है, यही हमारा बड़ा भाग्य है।

—पर हमारे बड़े भाईयों की तो अभी तक शादी हुई नहीं।

कृष्णा की माँ लीला और भी गम्भीर होकर बोली—बड़े भाइयों की शादी नहीं हुई है, इसलिए तुम तो बच्चे नहीं रह गए हो।

—शादी यदि थोड़े दिनों के बाद हो तो आप लोगों को कोई आपत्ति है ?

—आपत्ति क्यों नहीं है ? अचानक कभी शादी करना जरूरी हो जाएगा और तब रजिस्ट्री मैरेज करके तुम दोनों सामने आकर खड़े हो जाओगे, यहाँ तक बात पहुँचे, यह हम नहीं चाहते। हम तुम्हारी आजादी में टाँग नहीं अड़ा रहे हैं, पर हमारी यह इच्छा तुम्हें पूरी करनी होगी।

फिर भी इन्द्रनील बोला—आप क्या देखकर मेरे हाथ अपनी लड़की सौंपेंगे ?

अब कृष्णा के पिताजी उसकी माँ से भी अधिक गम्भीर आवाज में बोले—लड़की सौंपने का प्रश्न यहाँ हास्यास्पद है। एक सामाजिक दिखावा तो करना ही है। कन्यादान का प्रहसन। सभी सब कुछ जानते समझते हैं फिर भी समाज के लिए यह नाटक करना ही पड़ता है।

—लेकिन शादी के बाद पत्नी की जिम्मेदारी तो मुझे ही उठानी पड़ेगी।

—उचित काम कर पाना बड़ी अच्छी बात है। कृष्णा के पिताजी बोले—पर यह नहीं कर पाने से उससे भी बड़ा अनुचित काम करते जाना

कर कृष्णा थोड़ी देर तक रोती रही फिर पिकनिक के हो-हल्ले में जुट गई।

एक लड़का सबको मैजिक दिखा रहा था, दूसरा हाथ देखकर अपनी ज्योतिष विद्या का परिचय दे रहा था। उसी की तरफ सबसे ज्यादा भीड़ थी। कृष्णा का हाथ देखकर उसने बताया था—कृष्णा के विवाह का योग पड़ गया है। पर इन्द्रनील का हाथ देखकर बोला—हाथ में शादी की रेखा ही नहीं है। इसे लेकर बहुत वाद-विवाद हंसी-मजाक होता रहा।

इन्द्रनील ने गर्व से चुनौती दी कि वह थोड़े ही दिनों में प्रमाणित कर दिखाएगा कि हाथ की रेखाएँ देख कर बोली गई बातें बिल्कुल बेकार होती हैं।

भविष्यवक्ता वह लड़का कृष्णा का ही मौसेरा भाई था। उसने धीरे से मामी से कहा—मामी देख, यह सब कहकर तुम्हारी लड़की की शादी मैंने और पक्की कर दी है।

खैर, पिकनिक आनन्द के साथ मनाया गया। यहाँ तक कि कृष्णा के पिताजी भी किसी के साथ शतरंज खेलने बैठ गए थे।

इन्द्रनील उस रोज काफी उत्तेजित होकर घर लौटा था। घर आ कर देखा तो परिस्थिति वहाँ भी बिल्कुल गम्भीर थी। हालांकि घर में अनुकूल वातावरण इन दिनों था ही नहीं, फिर भी निरंजन का इस तरह से अचानक चले जाने लायक विषम परिस्थिति भी नहीं थी। इन्द्रनील ने मन ही मन सोचा, वह अब कृष्णा के पिता के प्रस्ताव को किसके आगे रखेगा?

इन्द्रनील का घर भी बड़ा अजीब था। बाकी हजार घरों से इसकी तुलना करते तो भी कोई मेल नहीं बैठता था। हर मामले में अतुलनीय था।

नीता अगर इस समय इस तरह से नहीं चली जाती तो—

हालांकि नीता इन लोगों की कुछ भी नहीं लगती, फिर भी पिछले कुछ दिनों में इस घर की वह बहुत कुछ बन गई थी।

इन्द्रनील कई दिनों तक सोचता रहा, फिर एक दिन कृष्णा के घर जाकर बोला—आप लोगों की जितनी मर्जी अनुष्ठान कीजिए, हमारे घर

से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलने वाली है। अगर इसमें आप लोगों की आपत्ति न हो तो बेशक रीति-रिवाज के अनुसार विवाह कीजिए, सिर्फ कृपा करके सर पर टोपी-वोपी पहनने के लिए जिद मत कीजिएगा।

कृष्णा की माँ बोली—थोड़ा कुछ भी नहीं जाएगा। तुम्हारे घर की तरह अजीब हमारा घर नहीं है। ठीक, शादी के पहले का सारा पूजा पाठ श्राद्ध आदि हमारे ही घर में किया जाएगा।

इन्द्रनील हैरान होकर बोला—श्राद्ध माने? श्राद्ध क्या चीज है?

कृष्णा की माँ थोड़ी देर भावी दामाद की तरफ देखकर व्यंग से बोली—श्राद्ध क्या है, नहीं जानते? शादी के समय लड़की की माँ का श्राद्ध किया जाता है, कभी सुना नहीं?

भावी सास का इस तरह का मजाक इन्द्रनील सही ढंग से समझ नहीं पाया। थोड़ी देर बाद मौका पाकर कृष्णा से बोला—अर्थहीन कुछ रीति-रिवाजों और अनुष्ठान का क्या फायदा है? इसकी जरूरत क्या है?

—अवश्य ही कुछ जरूरत होगी। कृष्णा तर्क के सुर में बोली—जरूरत क्यों नहीं है, दुनिया की सभी जात में, सभ्य और असभ्य समाज में शादी के रीति-रिवाज तो होते ही हैं।

—पर हजाम, पुरोहित, श्राद्ध और पिण्डदान की···।

—इसका अर्थ है शादी को एक उपलक्ष्य मान कर समाज के सभी श्रेणियों के लोगों को कुछ रुपए-पैसों की प्राप्ति हो, इसलिए यह नियम बनाए गए हैं।

—इसके माने देश भर के लोगों को घूस देकर शादी के लिए अनुमति लेनी पड़ती है?

—घूस क्यों? उन्हें खुश करना कह सकते हो। सब को खुश करके सब की शुभकामनाओं के साथ जीवन-पथ पर आगे बढ़ना ही असली बात है।

—उस युग में शायद इसकी जरूरत थी, पर आज के युग में तो ये बातें अर्थहीन हैं।

—कुछ भी हो। कृष्णा दुलार से बोली—अनुबंध पत्र पर दस्तखत करके शादी हो गई, ऐसी शादी हमें अच्छी नहीं लगती। शादी कोई व्यापार थोड़े ही है?

इन्द्रनील हंस कर बोला—है क्यों नहीं ? पूरी तरह है।

—शादी पूरी तरह दुकानदारी है ?

—और नहीं तो क्या ? विवाह के मंत्र क्या हैं, कहो तो ? मेरा हृदय तुम्हारा हो, तुम्हारा हृदय मेरा हो, आदि-आदि। एकतरफा तो कुछ होता नहीं। जो एकतरफा नहीं है वही व्यापार है।

—तुम्हारी बुद्धि का भी क्या कहना है ? तर्क भी क्या लाजवाब है।

—मेरा तर्क काट सकती हो ?

—इसकी मुझे जरूरत नहीं है। पर तुम्हारे रंग-ढंग से ऐसा लगता है कि यह शादी तुम पर जुल्म ढाने जैसा है। यह मेरा अपमान है, तुम समझ सकते हो।

—लड़कियां बहुत कुछ से अपमानित हो जाती हैं। अगर मैं अचानक यह कह दूं कि तुम्हारे चेहरे का सौन्दर्य तुम्हारा अपना नहीं है, किराए का है—भौंएं बनाई हुई हैं, आंखें बनाई गई हैं, ओंठ रंगे हुए हैं, गाल पर रंग लिपा है, तो यह सुनकर तुम तो अपमान से ढह जाओगी।

कृष्णा तीखी आवाज में बोली—बिल्कुल नहीं हूंगी, क्योंकि तुम्हारा तर्क बेबुनियाद है।

—बेबुनियाद ? तुम कहना चाहती हो कि यह चीजें तुम्हारी अपनी हैं ?

—'कहना चाहती हूं' का क्या मतलब ? कृष्णा रुआंसी होकर आंखों पर रूमाल रगड़-रगड़ कर बोली—रगड़ो, देखो भौंओं का कालापन मिटाया जा सकता है या नहीं, गाल पर क्या लिपा है और···?

—बस बस। अब बस भी करो। इन्द्रनील हँस पड़ा। बोला—अगर यह सारी चीजें तुम्हारी ही हैं तो दूसरे जंगली पुरुषों की आंखों के आगे तुम्हें अकेला छोड़ना खतरे से खाली नहीं। ऐसी शुद्ध चीज आज के बाजार में दुर्लभ है।

नकली कलह के बीच फिर इन्होंने खुशी के ज्वार में अपने को बहा दिया। कृष्णा सोचती—इन्द्रनील इतना लापरवाह है, यह मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है। अगर गद्गद होकर हमेशा प्रेम की वाणी ही सुनता रहता

तो मुझे अच्छा ही नहीं लगता।

उधर इन्द्रनील सोचता—धत् समस्या में इतना क्यों सोचूँ ? जैसा हो रहा है, होने दो। घर की आबोहवा अब बर्दाश्त के बाहर हो रही है।

घर में इन्द्रनील ज्यादा देर तक रहता ही नहीं था। जितनी देर रहता था, ऐसा चेहरा बना कर रखता था मानों कोई कड़वी दवा पी हो।

सुचिन्ता सुशोभन के सामने बैठ कर अखबार पढ़ रही थी। हजार तर्क के बावजूद भी इन्द्रनील इस बात को प्रसन्नमन से कबूल नहीं कर पा रहा था। नीता के पिता की हैसियत से सुशोभन पर जो थोड़ी बहुत सहानुभूति होती थी, वह इस बात को याद करते ही हवा हो जाती थी कि सुशोभन माँ का पूरा प्रेमी था। और फिर सुचिन्ता मानो इधर में कुछ ज्यादा ही हिम्मती बनती जा रही थी। लड़कों की पसन्द-नापसन्द की उसे मानों कोई परवाह ही नहीं थी।



—नीता की चिट्ठी है। निदराम ने चिट्ठी लाकर सामने की टेबल पर रख दी जहाँ सुशोभन और सुचिन्ता के आमने-सामने एक खुली किताब थी। क्या पता वह सुशोभन को पकड़कर सुना रही थी या नहीं। सुचिन्ता के बड़े बेटे की नजर भी तीखी हो उठी क्या ?

—नीता की चिट्ठी ? सुचिन्ता खिल उठी। सुचिन्ता ने चिट्ठी को हाथ में लिया। सुशोभन चिट्ठी पर झुक कर बोले—नीता की चिट्ठी आई है ? मेरे लिए उसने लिखा है ?

सुचिन्ता के हाथ में चिट्ठी लेकर सुशोभन थोड़ी देर उसे देखते रहे। फिर बोले—नीता ने इतना कुछ क्या लिखा है, कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

चिट्ठी पढ़कर सुशोभन प्रसन्न होंगे, यह उम्मीद किसी ने [illegible] नहीं थी। रोज सुबह जब अखबार आता, सुशोभन हाथ में लेकर [illegible] देखते, फिर कहते—इतनी बातें इतने क्या लिखी रहती हैं, कुछ [illegible] नहीं आता।

सुचिन्ता हँसकर बोलती—क्यों तुम्हें क्या लगता है कि अखबार में सिर्फ फालतू बातें लिखी रहती हैं ?

—फालतू बातें नहीं रहती हैं ? पढ़ते जाता हूँ तो दिमाग में सब गोलमाल हो जाता है ' तुम देख नहीं पाती ?

सुचिन्ता बोलती—दिमाग के अन्दर क्या होता है, तुम्हें दिखाई पड़ता है ?

—नहीं दिखलाई पड़ता ? अजीब बात करती हो ?

—लेकिन मुझे तो कुछ नहीं दिखाई पड़ता। तुम देख सकते हो सुशोभन ? कह सकते हो मेरे दिमाग में इस समय क्या हो रहा है ?

सुशोभन ठहाका लगाकर बोलते—तुम्हारी बातचीत बिल्कुल पागलों की तरह है सुचिन्ता !

कमरे के अन्दर बैठे-बैठे सुचिन्ता के बड़े बेटे का चेहरा लाल हो उठता। वह सोचता—हा···हा···कर हँसने लायक कौन-सी बात अख-बार में लिखी रहती है ?

आज भी निरुपम सोच रहा था—नीता की चिट्ठी में हँसने लायक कौन-सी बात है ?

पढ़ी हुई चिट्ठी निरुपम दुबारा देख रहा था।

नीता ने लिखा था—सागर को होश आ गया है। असली विपत्ति टल गई है, पर डाक्टरों का कहना है उसकी आँखें शायद चली जाएँगी। ज्यादा चोट आँखों में ही लगी थी। नीता ने यह भी लिखा था कि सागर थोड़ा ठीक हो जाए तो उसे लेकर वह चल पड़ेगी। साथ में सागर का दोस्त शिशिर भी रहेगा। दुर्घटना के दिनों में यह दोस्त अंतरंग बन गया था। सागर के लिए उसने अपने यूरोप घूमने के प्रोग्राम को रद्द कर दिया था। नीता की भी उसने काफी सहायता की थी। शिशिर की पढ़ाई की अवधि भी खत्म हो चुकी थी। नीता ने सुशोभन के लिए भी उत्कंठा जाहिर की थी। पूछा था, सुशोभन कैसे हैं ? डाक्टर क्या कह रहे हैं ? उसकी गैरहाजिरी में कोई नया परिवर्तन हुआ या नहीं, आदि आदि।

निरुपम सोचने लगा—नीता की अनुपस्थिति में परिवर्तन अगर किसी में आया है तो वह उस पागल में नहीं, बल्कि स्वस्थ आदमी में।

सुचित्रा बिल्कुल लापरवाह हो चुकी थी, नहीं तो क्या वह कमरे की मोटी मुलायम गीली बनी उनाकर रात को बारह बजे तक सुशोभन को सुनाती रहती। कमरे में यदि कोई नहीं होता तो सुशोभन की नींद नहीं आती थी पहले तो सुचित्रा थोड़ा संकोच भी करती। लड़कों के सामने अपनी सफाई देने के सुर में बातें करती, पर अब तो दोनों की हँसी एक साथ सुनाई पड़ती। निरुपम के दिमाग में एक दर्द-सा उठा। नीता ने सुचित्रा को भी ये ही सब बातें लिखी थीं। साथ में यह भी लिखा था—बड़े भैया की अलग चिट्ठी में डा० पाल्लिन से सम्बन्धित बातें लिख रही हूँ।

पर नीता की चिट्ठी सुचित्रा पढ़ भी नहीं पा रही थी। सुशोभन अधीर होकर सुचित्रा के चिट्ठी पकड़े हुए हाथ को झकझोर कर बोले—सुचित्रा, मन-ही-मन क्यों पढ़ रही हो? जोर से पढ़ो न। नीता की चिट्ठी तुम मन-ही-मन पढ़ोगी?

सुचित्रा सर उठाकर बोली—रुको, पहले मुझे पढ़ लेने दो, उसके बाद चिल्लाकर सुनाऊँगी।

सुशोभन थोड़ी देर तक चहलकदमी करते रहे पर दूसरे ही क्षण सुचित्रा को झकझोर कर बोले—नीता की चिट्ठी तुम छुपाकर पढ़ोगी? क्या मतलब है तुम्हारा?

फट से सुचित्रा के हाथ से चिट्ठी छीन कर सुशोभन उसे हाथ में मसलने लगे।

—क्या कर रहे हो? अरे, यह क्या कर रहे हो?

सुचित्रा सुशोभन के हाथ से चिट्ठी लेना चाहती थी पर पागल से कौन जीत सकता है? सुशोभन कुर्सी पर खड़े होकर चिट्ठी पकड़े हुए हाथ को ऊँचा उठाकर बोले—क्यों? हमारी ताकत से जूझ सकोगी?

—तुमसे अनुरोध करती हूँ। चिट्ठी को इस तरह मत कुचलो। मुझे उसे पढ़ना है। कितने दिनों के बाद खबर मिली है। अब जोर-जोर से ही पढ़ूँगी।

पर पागल के लिए यह एक नया खेल था। सुशोभन अपने हाथ को और भी ऊपर उठाकर उँगली के छोर से चिट्ठी पकड़कर, ऐड़ी के बल खड़े होकर हँस रहे थे। सुचित्रा व्याकुल होकर बोली—गिर जाओगे

सुशोभन। मुझ पर कृपा करो। नीचे उतर आओ।

सुचिन्ता ने टेबल के दोनों छोरों को अपने हाथ से पकड़ रखा था कि कहीं सुशोभन गिर न जाएँ।

—क्यों, फिर नीता की चिट्ठी लोगी ? मन ही मन पढ़ोगी ?

अब सुचिन्ता ने दूसरी चाल चली। उसने कहा—ठीक है। मत दो चिट्ठी। मुझे पढ़ने की जरूरत क्या है ?

चाल व्यर्थ नहीं गई।

सुशोभन तुरन्त चिट्ठी को जमीन पर फेंक कर हँस उठे। बोले—हूँ। जरूरत नहीं है तो फिर इतनी देर तक चिल्ला क्यों रही थी ? जानती हो सुचिन्ता ? तुम जब मुंह ऊँचा करके चिट्ठी मांग रही थी तो कहानी की उस लोमड़ी जैसी लग रही थी जो अंगूर की बेल की तरफ टकटकी लगाए देख रही थी और फिर बाद में कहा—अंगूर बड़े खट्टे हैं।

सुशोभन अब नीचे उतर आए।

सुचिन्ता बोली—ईसप की कहानियां तुम्हें अब भी याद हैं ?

—याद क्यों नहीं रहेंगी ? ये कहानियां क्या कोई भूलता है ? एक कहानी में एक शेर के गले में हड्डी फँस गई थी—तुम्हें याद नहीं है सुचिन्ता ?

सुचिन्ता अनमनी-सी दूर आकाश की तरफ देखकर बोली—है क्यों नहीं ? याद है। अब मुझे चिट्ठी पढ़ने के लिए दो। पढ़कर बताती हूँ कि नीता ने क्या लिखा है। नीता के लिए तुम्हें चिन्ता हो रही है न ?

—बेशक हो रही है। नीता को मैं प्यार करता हूँ, तुम जानती नहीं? मुझे पूरी चिट्ठी पढ़कर सुनाना, सुचिन्ता। मुझे ठगना नहीं।

—मैं तुम्हें ठगती हूँ ? सुचिन्ता हँसकर बोली।

—हां, अखबार पढ़ते समय तुम बहुत-सी बातें मुझे बताती नहीं। मैं सब समझता हूँ।

—कैसे समझते हो बताओ।

—कैसे ? तुम जब अखबार पढ़ती हो तो मैं तुम्हारे चेहरे को देखता रहता हूँ। तुम्हारी आंखें घूमती हैं, मैं देख नहीं पाता क्या ?

सुचिन्ता को क्या आग से खेलने की इच्छा हो रही थी ? बोली—

अगर ठगनी हूँ तो मुझे डाँटते क्यों नहीं ?

—डाँटूंगा और वह भी तुम्हें ? क्या कह रही हो सुचिन्ता, पढ़ो-पढ़ो सुचिन्ता, नीता की चिट्ठी पढ़ो।

पर सुचिन्ता कैसे पढ़ती ? यदि भारी-भरकम कोई पुरुष कुर्सी की पीठ के पीछे खड़ा रहकर झुककर उसी चिट्ठी को पढ़ना चाहे, और उसकी गरम साँसें सुचिन्ता के गाल और कानों पर पड़ती रहें तो क्या सुचिन्ता स्थिर मन से चिट्ठी पढ़ सकती थी ?

पागल की साँसें क्या ज्यादा गर्म होती हैं ? सुचिन्ता को लगा उसके गाल जल जायेंगे। उसके कान से भी मानो गरमी निकल रही थी।

सुचिन्ता के ठंडे खून में अब भी गरमी मौजूद थी क्या ?

कब इन्द्रनील सुशोभन के पीछे आकर खड़ा हो गया था, सुचिन्ता जान ही नहीं पाई थी। परिस्थिति को बिल्कुल अनदेखा कर इन्द्रनील सामने आकर खड़ा हो गया और बोला—एक बात कहनी थी।

सुचिन्ता ने सर उठाया। थोड़ी संकुचित भी हुई कि न जाने कौन-सी बात है। फिर शंका से डर कर बात को अनसुनी कर बोली—नीता की चिट्ठी आई है। नीता की चिट्ठी आई थी, यह इन्द्रनील भी समझ गया था, पर नीता ने क्या लिखा है, उसके भावी पति का क्या हाल है यह सब बातें इन्द्रनील ने नहीं पूछीं। पूछने की उसकी इच्छा भी नहीं हुई।

वह बड़ी अवहेलना का भाव दिखाकर बोला—हाँ, मुझे मालूम है कि नीता की चिठ्ठी आई है।

—लिखा है, जान बच गई है पर···।

—सुचिन्ता ! सुशोभन नाराजगी से बोले—चिट्ठी मुझे न सुना कर उसे क्यों सुना रही हो ?

—वाह ! नीता की खबर वह भी तो सुनेगा।

—नहीं ! नहीं सुनेगा। कहकर सुशोभन इन्द्रनील के नजदीक आकर फिर बोले—यंगमैन ! सुचिन्ता के छोटे बेटे ! नीता की खबर जानना तुम्हारे लिए क्यों जरूरी है ?

इन्द्रनील उद्दण्ड भाव से बोला—मुझे इसकी कोई जरूरत नहीं है।

—जरूरत नहीं है ? तुम्हें कोई जरूरत नहीं है ? सुशोभन

बोले—नीता कोई ऐरी-गैरी या फालतू है कि उसकी खबर से तुम्हारा कुछ आता-जाता नहीं ? जानते हो, इससे नीता का अपमान होता है।

इन्द्रनील तीखी आवाज में बोला—थोड़ा हो न।

—हो न! अपमान हो न ? सुचिन्ता, तुम्हारे लड़कों की बुद्धि तो ठीक नहीं है ? तुम—।

सुचिन्ता बोली—तुम अपने कमरे में जाओ, सुशोभन।

—कमरे में चला जाऊँ ?

—हां, चलो। मैं तुम्हें वहां नीता की चिट्ठी पढ़कर सुनाती हूँ। चलो।

सुशोभन की पीठ पर हल्का हाथ रखकर सुचिन्ता इन्द्रनील के सामने से चली गई।

दांत से दांत भींचकर थोड़ी देर तक वहीं खड़ा रहकर इन्द्रनील तेजी से निकल गया। वह कृष्णा के पिताजी के प्रस्ताव को सुचिन्ता के सामने रखने आया था। आज शाम कृष्णा के माता-पिता सुचिन्ता से मिलने आने वाले थे। इन्द्रनील यह बात कह ही नहीं पाया।

अब वह सोचने लगा कि वह कृष्णा के पिताजी से जाकर क्या कहेगा? उसने तो पहले ही मना किया था। कहा था—मां से जाकर शादी की बातचीत करना बेकार है। मेरी मां इतनी उदार हैं कि मेरी शादी हो चुकी है, यह सुनकर भी नाराज नहीं होंगी।

फिर भी कृष्णा के पिताजी बोले थे—मां से कोई मिन्नत करने तो जा नहीं रहा हूँ, फिर भी सौजन्यता की खातिर जाना तो पड़ेगा ही।

—मेरी मां साधारण औपचारिक सौजन्यता की परवाह नहीं करतीं।

कृष्णा की मां बीच में बोल पड़ी—यह मैं समझ सकती हूँ कि तुम्हारी मां असाधारण हैं, पर हम तो साधारण ठहरे, इसलिए हम लोगों को तो कर्तव्य पूरा करना ही पड़ेगा। आज शाम दिखावे के लिए ही सही, पर तुम्हारे घर हम आएँगे।

इन्द्रनील आगे और क्या कहता ?

इसलिए वह उनके आने की खबर मां को देने आया था। सोचा था, पहले से थोड़ा कहकर रखूं तो अच्छा रहेगा। पर यहां तो सारा खेल ही

बिगड़ गया।

सुशोभन के साथ सुचिन्ता के जाने की मुद्रा में एक दुस्साहसिक संकल्प की उद्दण्डता झलक रही थी।

इन्द्रनील क्या अपने भावी ससुर को जाकर यह कह दे कि यदि माँ को बिना सूचित किए वे शादी करने के लिए राजी हैं तो ही शादी करना संभव है। पर कृष्णा के पिताजी भी ठहरे घमंडी आदमी, शायद कहेंगे—ऐसी अजीब शर्त के बिना जब शादी करना सम्भव नहीं तो फिर शादी रोक ही देनी पड़ेगी।

और यह सुनकर कृष्णा फिर रोने लगेगी, और मौका देखकर इन्द्रनील के कंधे में मुंह रगड़ेगी।

अचानक इन्द्रनील को लगा, अगर कृष्णा के साथ उसका परिचय ही नहीं होता तो···।

न जाने क्यों परिचय के शुरू के दिनों में ही कृष्णा ने सोच लिया था कि इन्द्रनील को उससे प्रेम हो गया है। इस तरह की बेवकूफी नवयुवकों के लिए खेल के समान लगती है। शुरू-शुरू में इन्द्रनील को मजा भी आता था। फिर न जाने कब से उसे भी लगने लगा कि उसे सचमुच में ही कृष्णा से प्यार हो गया था।

कब से? किस समय से?

क्या पता? कौन याद रखता है? किसी सुन्दरी लड़की का विराम-हीन प्रेम किस युवक को विमलित तो करेगा ही, और वह भी तब जब इन्द्रनील का व्याकुल मन किसी आश्रय को ढूंढ रहा था।

नीता से प्रेम करने की बात उसने सोची नहीं थी, पर मुग्ध नयनों से वह उसकी तरफ देखता था और फिर एक दिन उसे पता चल गया कि नीता का मन बहुत पहले से ही किसी के पास गिरवी था। अपना अच्छा दोस्त मानकर नीता ने यह बात खुद ही सीधे सपाट ढंग से इन्द्रनील को बताई थी।

किसी भी जवान लड़के के मन में लड़कियों के लिए जो मोह होता है, वह इन्द्रनील के मन में भी जागा, पर नीता के बारे में तो मन को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था। ऐसे ही समय में कृष्णा उसके जीवन में आई थी।

इन्द्रनील ने देखा कि नीता उसके लिए आकाश के तारे के समान थी। उसकी हँसी, उसका खुला चंचल स्वभाव उसका सम्पूर्ण चरित्र नहीं था। उसे शायद कोई भी नहीं समझ सकता था। इन्द्रनील के पास इतनी ताकत नहीं थी कि वह आजीवन न समझने का बोझ सर पर लादकर चलता। इन्द्रनील के लिए तो कृष्णा जैसी लड़की ही ठीक थी, जिसे एक सांस में पढ़ा जा सकता था। और पढ़ी हुई चीज पर दुबारा सोचने की जरूरत नहीं पड़ती। सीधे सहज स्वभाव वाली कृष्णा में इन्द्रनील के तुरन्त जागे हुए मन ने आश्रय लिया।

पर आज ?

आज इन्द्रनील सोच रहा था कि यदि कृष्णा से उसकी भेंट ही न होती तो अच्छा होता। वह सोच रहा था, मंझले भैया की तरह यदि मैं भी कहीं भाग सकता।

शायद ऐसा ही होता है। जो लड़की अपनी तरफ से आत्मसमर्पण कर अपना सारा रहस्य खो देती है, वह लड़की पुरुष के लिए बोझ बन जाती है। पुरुष नारी की पूजा करना चाहता है, भिखारिन के आकुल भाव को वह अधिक दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर पाता।

शुरू-शुरू में तो वह उसे अपने कब्जे में लाने की चेष्टा में रहता है क्योंकि इससे आदमी का पौरुष तृप्त होता है। विजय के अहंकार से पुरुष मन खुशी से उछल उठता है पर फिर अनायास पाई गई उस चीज को असहनीय बनने में भी अधिक दिन नहीं लगते। और यह पता लगने पर भी कि जो हाथ लगा है, वह धान का गुच्छा नहीं बल्कि घास का गुच्छा है, तो भी वह उसे सर पर ढोता है, ताकि उसकी बेवकूफी का दूसरों के सामने पर्दाफाश न हो। शायद बहुत से प्रेम विवाहों का भीतरी इतिहास यही है।

शादी के पहले का अनुराग बड़ा मोहक होता है, क्योंकि वह भारहीन होता है। तब वे एक-दूसरे के सामने अच्छा बने रहने की साधना में जुटे रहते हैं।

शादी के बंधन के फँसने के बाद यह मोह भी जाता रहता है। सिर्फ इस देश में ही नहीं, दुनिया के सभी देशों में समाज, आभिजात्य और

आर्थिक समानता की बात किसी न किसी रूप मे मौजूद है और यह सब कुछ न मानकर जो प्रेम करता है उसे अभिभावको के स्नेह से वंचित होना पड़ता है और दाम्पत्य जीवन का सारा भार अपने कंधो पर ढोना पड़ता है।

यह भार भार न रहकर फूल की तरह हल्का हो उठे, ऐसा जीवन-साथी कितनों के भाग्य में जुटता है? अधिकतर लड़कियां तो कृष्णा की तरह ही होती हैं और इसलिए कई प्रेम-विवाह सफल नही हो पाते।

इन्द्रनील शायद अभी से इस तरह की बातें नहीं सोचता। अगर घर का छोटा बेटा होने के नाते वह सारी सुविधाएँ पाता और बड़े भाइयों के संरक्षण में सेहरा बाँध कर शादी के लिए निकल सकता तो कृष्णा की प्राप्ति ही इन्द्रनील को अपने जीवन की परम प्राप्ति लगती।

पर इन्द्रनील का इतना भाग्य कहाँ? इसलिए उसका मन हर पल क्षुब्ध हो उठता था। उसे लग रहा था, कृष्णा के पिताजी अच्छे आदमी नहीं हैं। कृष्णा की माँ अवसरवादी है, और कृष्णा उसके लिए मुसीबत बन गई है। पर अब उसके लिए पीछे मुड़ना संभव भी नहीं था। और फिर पीछे मुड़कर वह जाता कहाँ? मृत विवर्ण किस शव साधिका के श्मशान में? अनुपम कुटीर मे जीवन का उत्ताप कहाँ था? स्वाभाविक जीवन के संतुलित छन्द नहीं थे। वह तो छन्दहीन उस जीवन से भागना चाहता था, शायद इसीलिए कृष्णा के आगे उसने अपने को खो दिया था।

पर इन्द्रनील का सोया हुआ मन बार-बार टोक रहा था—अगर कृष्णा से उसकी भेंट न होती तो? अगर वह निरंजन की तरह भाग सकता तो?

बहुत दिनों के बाद आज इन्द्रनील को अपने पिता की याद आई। अनुपम मित्र यदि जीवित होते तो उनके छोटे बेटे का जीवन शायद इस कदर समस्याओ से घिरा नही होता। या क्या पता वे खुद ही एक समस्या बन जाते? पर इस समस्या से कैसे जान छूटे? कृष्णा के माँ-बाप सुचिन्ता से आज मिलने के लिए आने ही वाले थे।

और फिर आते ही यह प्रश्न उठना स्वाभाविक था—सुशोभन कौन है? यहाँ क्यों है?

उनका आना कैसे रोका जाए, सोचते-सोचते वे लोग आ ही पहुँचे। और इन्द्रनील क्या करे, यह समझ न पाकर 'आप लोग जरा बैठिए मुझे थोड़ा काम है,' कहकर भाग गया। माँ की तरफ आँखें उठाकर देखा भी नहीं। सुचिन्ता भी लड़के को जाता देखती रही।

कृष्णा के पिताजी बोले—आपके पास हमें पहले ही आना चाहिए था। खैर, न होने से अच्छा तो देर से होना है, आपकी क्या राय है? बात यह है कि हम आपके छोटे बेटे को अपना दामाद बना रहे हैं।

क्या सुचिन्ता चौंक उठी? आकस्मिक चोट से स्तब्ध हो उठी?

कुछ पता नहीं चला। सुचिन्ता की सब बातें सब की समझ में नहीं आतीं। ऊपर से थोड़ा मुस्कराकर सुचिन्ता बोली—दामाद जब आप बना ही रहे हैं तो सारी बातचीत तो यहीं पर खत्म हो गई।

कृष्णा के पिता शायद इस उत्तर के लिए तैयार नहीं थे। इन्द्रनील ने कुछ-कुछ समझाकर तो रखा था फिर भी उन्हें लगता था कि भद्र महिला सुनते ही जल उठेंगी या चोट खाकर सुन्न हो जायेंगी। ऐसी ही परिस्थिति को पैदा करने के लिए उन्होंने 'दामाद करना चाहता हूँ' न कहकर 'दामाद बना रहा हूँ' कहा था।

मनुष्य के मन के रहस्य को समझना सचमुच बड़ा मुश्किल है।

सुचिन्ता को चोट पहुँचाकर कृष्णा के पिता को क्या आनन्द मिला? सुचिन्ता ने उनका क्या बिगाड़ा था?

हो सकता है सूक्ष्म अपमान से कृष्णा के पिताजी खुद ही जल रहे थे और उस जलन से इन्द्रनील की माँ को भी वे अपमानित करना चाहते थे। इन्द्रनील जैसे एक बेकार छोकरे के हाथ में उन्हें अपनी बड़ी कीमती इकलौती लड़की को सौंपना पड़ रहा था, यह असहाय जलन उन्हें बहुत खल रही थी।

इस घटना के मूल में उनके अपने घर की लड़की थी, यह बात वे सज्जन भूल गए थे। वे इसके लिए इन्द्रनील और उसकी माँ को जिम्मेदार ठहरा रहे थे। सुचिन्ता की बात सुनकर वे गम्भीर हो उठे। बोले—हाँ! बातचीत करने के लिए है भी क्या? सौजन्यता की खातिर आपको सूचित करना उचित समझा इसलिए—।

सुचिन्ता हँसकर बोली—सुनकर खुशी हुई।

सुन्दर बेटी की माँ होने के गर्व से चूर कृष्णा की माँ बोली—हमारी लड़की को आपने अवश्य ही देखा होगा। आपके घर आई होगी।

सुचिन्ता बोली—दो-तीन लड़कियाँ कभी-कभार आती तो थीं, पर ठीक से मैंने देखा नहीं। मैं ठीक से याद नहीं कर पा रही हूँ कि उनमें से कौन-सी आपकी लड़की है।

लीलावती मुँह लाल कर बोली—आपके घर यदि कोई आए तो आप उसकी तरफ ठीक से देखती भी नहीं?

सुचिन्ता विस्मय से बोली—क्या मुश्किल है। देखूँगी क्यों नहीं? मेरे पास आने से मैं जरूर देखती। पर लड़कों के साथी-संगी कब कौन आते-जाते हैं, इन सब पर नजर रखूँ, इतना वक्त ही कहाँ है मेरे पास? और जरूरत भी क्या है?

—आपके लड़के किस तरह के दोस्तों के साथ मेल-जोल बढ़ा रहे हैं, यह देखना आप जरूरी नहीं समझती?

—फायदा क्या है? सुचिन्ता बोली—उनकी सारी गतिविधियों पर नजर रखूँ, इतनी हिम्मत तो है नहीं। हमारे इस छोटे से मकान के छोटे-छोटे कमरों में उनके जीवन का है ही कितना?

—वाह! क्या खूब कही। कृष्णा के पिताजी व्यंग्य से भौं तानकर मुँह सिकोड़ कर बोले—आपकी तरह इतनी उदार माँ अगर हर घर में हो तो इस देश को विलायत बनने में ज्यादा देर नहीं लगेगी।

एकाएक इस तरह के आक्रमण से सुचिन्ता सहसा विमूढ़-सी हो गई पर तुरन्त हँस कर बोली—यह कैसे हो सकता है? आप लोग तो हैं न, संभाल रखेंगे ही।

कृष्णा के पिताजी कड़वी आवाज में बोले—कहाँ संभाल रख पा रहे हैं? यही कर पाते तो क्या अपनी इकलौती लड़की को इस तरह से बहा देते? जस्टिस घोष के लड़के के साथ उसका रिश्ता करते आपको मालूम है? लेकिन—। आगे वे चुप हो गए।

सुचिन्ता बड़े स्वाभाविक ढंग से बोली—यह बात आपकी सच है। मैं भी सोच-सोच कर हैरान हो रही हूँ कि मेरे इस बेकार बेटे को आप

सुचिन्ता सर उठा कर स्थिर भाव से बोली—हमारे बचपन के साथी हैं।

—बचपन के साथी! लीलावती ने इस तरह से इन शब्दों का उच्चारण किया मानों जीवन में पहली बार ऐसा कुछ सुना हो।

सुचिन्ता कुछ बोली नहीं, सिर्फ इन्हें विदा करने के उद्देश्य से फिर अपने दोनों हाथ जोड़े।

फिर भी लीलावती अपने को रोक न सकी। बोली—सुना था आपके घर कोई एक पागल आया है, ये ही हैं क्या?

सुचिन्ता अब पूरी तरह हँस कर बोली—पागल को एक ही नजर देख कर पहचान लेती हैं आप? आश्चर्यजनक क्षमता है आपकी। अच्छा, अब मेरे पास और समय नहीं है। इस पागल को लेकर मैं कम परेशान नहीं हूँ।

—मुझे बिना बताए क्यों चली जाती हो सुचिन्ता? मैं तुम्हें ढूंढ़-ढूंढ़ कर भी नहीं खोज पाता हूँ।

—तुम तो सो रहे थे?

—वाह! मैं हमेशा सोता रहूँगा क्या?

—घर में मेहमानों के आने पर मुझे बातचीत तो करनी पड़ेगी न?

—नहीं सुचिन्ता, ऐसे लोगों से तुम्हें बातचीत करने की कोई जरूरत नहीं। वे अच्छे लोग नहीं हैं।

—किसने कहा कि वे अच्छे लोग नहीं हैं? अच्छे ही तो हैं।

—नहीं? नहीं! वे किस तरह से तुम्हारी तरफ देख रहे थे?

—किस तरह से?

—बड़े गुस्से से। तुमने देखा नहीं?

सुचिन्ता नजदीक आकर बोली—तो क्या सभी तुम्हारी दृष्टि से देखेंगे?

सुशोभन एकाएक सहम गए। बोले—मैं किस तरह से देखता हूँ सुचिन्ता? मेरी समझ में नहीं आ रहा है।

—तुम्हें समझने की जरूरत नहीं। पर अगर वे लोग फिर कभी आए तो तुम उनके सामने नहीं आना, समझे। वे लोग तुम्हें प्यार नहीं करते।

—लेकिन क्यों सुचिन्ता ? क्यों मुझे लोग प्यार नहीं करते ? मुझसे तो सभी प्यार करते थे।

—अभी-अभी तो तुमने कहा, 'वे लोग भले लोग नहीं हैं।'

—हाँ। पर सुचिन्ता ये लोग थे कौन ?

सुचिन्ता कौतुक के साथ बोली—वे लोग मेरे छोटे बेटे के सास और ससुर थे।

—छोटे बेटे के सास और ससुर, इसका माने ?

—माने नहीं मालूम तुम्हें ? उनकी बेटी के साथ मेरे छोटे बेटे की शादी हो रही है।

—नहीं, यह शादी हर्गिज नहीं हो सकती। सुशोभन बड़ी वीरता के साथ बोले—वे लोग अच्छे लोग नहीं हैं।

—लेकिन उन लोगों की बेटी के साथ मेरे बेटे ने प्यार किया है। मेरे बेटे को उनकी लड़की ने पसन्द किया है, उससे प्यार किया है, शादी नहीं होने से लड़की के मन में कष्ट होगा ?

सुशोभन बिलकुल ठंडे पड़ गए। तरल स्वर में बोले—मन में कष्ट होगा ? उनकी लड़की के मन में कष्ट होगा ?

—हाँ ! और मेरे बेटे के मन में भी कष्ट होगा ?

—उनकी लड़की उन लोगों की तरह तो नहीं है न ? सुशोभन दुश्चिन्ता से पीड़ित भाव से बोला—तुम्हारी ओर गुस्से से तो नहीं देखेगी न ?

—नहीं ! वह अच्छी लड़की है।

—अच्छी लड़की है। सुशोभन ने तुरन्त पसन्द कर लिया। फिर बोले—पर सुचिन्ता वे लोग तो मुखर्जी ब्राह्मण हैं। फिर कैसे शादी होगी?

सुचिन्ता अपलक पागल की तरफ देखती हुई बोली—किसने कहा कि वे मुखर्जी लोग हैं ? वे मुखर्जी नहीं हैं।

—नहीं हैं। ठीक कह रही हो ? सुशोभन को जैसे चैन मिला हो। बोले—अच्छा हुआ कि वे मुखर्जी नहीं हैं।

सुचिन्ता बोली—मुखर्जी होने से क्या होता है ?

—क्या होता है ? बेवकूफ की तरह पूछ रही हो ? शादी नहीं हो सकती, तुम्हें मालूम नहीं ?



सड़क पर निकलकर घर आते समय हालांकि इस घर से उस घर की दूरी ही कितनी थी, फिर भी कृष्णा के माता-पिता चुपचाप सड़क पार कर अपने घर पहुँचे। इस भयंकर चुप्पी को तोड़कर पहले लीलावती ने कहा—मुन्नी के भाग्य में क्या यही अन्त लिखा है ?

—और क्या लिखा रहेगा ? अभी बहुत बाकी है। तुम देखती जाओ।

—छि: छि:। लीलावती रुआंसी होकर बोली—मां अच्छी नहीं है। इतने दिनों से हम इस मुहल्ले में हैं, पर यह मालूम ही नहीं था। अभागिन लड़की ने चुन-चुनकर अन्त में···।

—चुन-चुनकर ? कृष्णा के पिता भयंकर रूप से गरज उठे। अवारा लड़के-लड़कियों का कोई विचार-निर्णय होता है। जिसे सामने पाया··· छि: छि:, क्या कहूँ ? तुम्हारी दुलारी लड़की ने 'आत्महत्या कर लूंगी' कहकर धमका कर रखा है, नहीं तो लड़की को कमरे में ताला बन्द कर दिखा देता कि सबक कैसे सिखाया जाता है। मार-मारकर लड़के का हुलिया बिगाड़ देता। वह बाप-बाप कर भागता और अच्छे घर की लड़की के साथ प्रेम करने का आनन्द जन्म-भर के लिए भुला देता।

लीलावती आंखें पोंछकर बोली—क्या करूँ तुम्हारी लड़की ही तो मुजरिम है। कैसे दुलार से लड़की को सर चढ़ाकर रखा है और आज मुझे दोष दे रहे हो। बचपन से उसे इकलौती कहकर किसी बात के लिए टोका नहीं। जो मांगा, वही दिया, उसका हर कहना माना।

—हां। हां। उसकी मांगें पूरी करता था। जो भी अच्छी चीज मांगती थी, लाकर देता था। सड़क का कीचड़ मांगती तो हर्गिज लाकर नहीं देता।

कृष्णा की मां बोली—कच्ची उम्र है, अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं है। पर इन्द्रनील लड़का बुरा नहीं है। कीचड़ के साथ उसकी तुलना मत करो। मुन्नी सुनेगी तो बड़ा दुख होगा।

—दुख होगा ? दुख होने से क्या होता है, कहो ? अगर कुछ होना होता तो जिस दिन तुम्हारी लड़की ने आत्महत्या की धमकी दी थी उसी दिन दुख से मेरा हार्ट फेल हो जाता। शादी के लिए 'हां' मैंने लड़की के

स्नेह में अन्धा होकर नहीं मरा है, बल्कि लेक के पानी में डूब कर मेरा नाम हँसाएगी, इस डर से। अब अफ़सोस होता है कि शुरू में ही क्यों नहीं जड़ से उखाड़ फेंका था।

लीलावती भय से बोली—अच्छा, तुम्हारी विनती करती हूँ, जरा चुप भी करो। मुन्नी सुन लेगी। मुन्नी को उस सास के साथ घर बसाने के लिए नहीं भेजूँगी। लड़की और दामाद दोनों मेरे पास ही रहेंगे।

—रख सको तो रख लेना! बेटी और दामाद के साथ चैन की गृहस्थी जमाना। कृष्णा के पिता गम्भीर भाव से बोले—मेरे रहने का ठिकाना कहीं और कर देना।

लीलावती इस गर्जन से डरती नहीं थी।

लीलावती को छोड़ कर उसके पति कहीं नहीं रह सकते थे, इस बात को लीलावती अच्छी तरह जानती थी।

संसार का चक्र इसी तरह घूमता रहता है। हर आदमी अपनी समस्याओं पर सोचता है, इसके लिए उसे दोष भी नहीं दिया जा सकता। और सब की समस्याओं का समाधान कभी हो भी नहीं सकता।

एक ही घटना भिन्न-भिन्न आदमियों के लिए भिन्न-भिन्न रूपों में होती है। जिस बारिश के लिए किसान मरता है, शहर के लोग उसे गाली देते हैं। जिस कानून को किराएदार पूजता है मकान मालिक उसे गाली देता है। धनी के सामने गरीबों का असन्तोष बुरा है, गरीबों की आँखों में अमीरों की अमीरी चुभती है। बड़ों की आँखों में छोटों का व्यवहार आपत्तिजनक होता है, छोटों की आँखों में बड़ों का व्यवहार निर्मम लगता है। दोष आखिर किसे दिया जाए?

कृष्णा के अभिभावक कृष्णा के गलत निर्वाचन पर पागल हो उठे थे लेकिन उनके लिए यह असंगत नहीं था।

सुचिन्ता ने अपने उद्दंड पड़ोसियों की अवहेलना की, सुचिन्ता के लिए यही स्वाभाविक था और सुचिन्ता को पड़ोसियों ने बुरा बताया, उनके लिए भी यही स्वाभाविक था।

ईश्वर ही जानता है, सच और झूठ का मापदण्ड किसके हाथ में है।

आपस में एक-दूसरे के विरोधी सत्य ने सारे संसार को कुहासे में

ढँक रखा है। उसमें से प्रकाश की किरणें ढूंढ़ निकालना असम्भव-सा है। गुरु के भक्त जब अपने पुत्र के मृत्यु शैया पर डाक्टर को न बुला कर उसे गुरु का चरणामृत पिलाते हैं तो उस समय उनकी गुरुभक्ति की तारीफ करूँ या उनकी बेवकूफी का मजाक उड़ाऊँ? दुश्चरित्र पति की अपमानित पत्नी जब अपने बच्चे को छोड़ कर पति के घर से चली जाती है, तो उस समय उस स्त्री की आत्म-मर्यादा को साधुवाद दें या उसकी निष्ठुरता की निन्दा करें।

आदमी पर विचार कर पाना सच में बड़ा कठिन काम है।



जिस तरह आदमी पर विचार कर पाना कठिन है, उसी तरह कर्तव्य क्या है, यह समझ पाना भी आसान नहीं। क्योंकि बुद्धिमान वकील सुविमल मुखर्जी भी अपने कर्तव्य को समझ नहीं पा रहे थे। नीता के विदेश चले जाने के बाद सुविमल ने कई बार सोचा कि नीता पर गुस्सा कर भाई के प्रति उदासीन रहना ठीक होगा या नहीं।

एक जिद्दी लड़की की कर्तव्यहीनता के कारण क्या सुविमल अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन रहें? अस्वस्थ भाई को एक बार देखने के लिए भी नहीं जाएँ? या सिर्फ देखना क्यों, उन्हें तो उनकी देख-रेख भी करनी चाहिए। सुचिन्ता लेना चाहती है, सिर्फ इसलिए क्या वे अपने भाई को दे दें?

हालांकि यहां लेन-देन की बात उठाना फिजूल है। उस दिन उन्होंने पागल को सुचिन्ता की सारी बात मानने का जो ढंग देखा वह उनके लिए एक विस्मय का अनुभव था। उस अनुभव के आगे सुविमल को मानना पड़ा कि रिश्ते का दादा ही सब कुछ नहीं होता।

फिर भी सुविमल का समाज तो है न। रिश्तेदार सुशोभन के बारे में पूछते हैं और किस अधिकार से सुचिन्ता सुशोभन को निचोड़ कर उसका सब कुछ ले रही है, उस पर आश्चर्य प्रकट करते हैं। सुविमल की छोटी बुआ भी आकर बोल गई—मुझे एक बार उस सुचिन्ता के घर ले चलो। [illegible] मैं भी देख आऊँ कि वह [illegible]न लड़की ने उस पर क्या जादू कर दिया है

और लपने घर के बेटे से भी मिल आऊँ।

—पागल हुई हो बुआ ? कह कर सुविमल ने बात टाल दी थी। पर उस दिन से वे हर रोज ही सोचते कि उन्हें एक बार जाना चाहिए। इसके अलावा नीता की खबर भी बड़ी खबर के समान ही थी।

सुविमल ने रविवार की सुबह जाना तय किया और सोचा कि वे साथ में सुमोहन के दोनों बेटों को भी ले जाएँगे। वे उनके साथ सुशोभन के व्यवहार को देखना चाहते थे।

सुशोभन सुमोहन के लडकों को बहुत प्यार करते थे। सुविमल के कहने पर अशोका ने दोनों लडकों को जाने के लिए तैयार कर दिया था पर सुविमल ने अशोका से कब तो उनके बारे में कहा और कब उसने बच्चों को तैयार किया, मायालता जान ही नहीं पाई। उसने तब देखा जब ये लोग जाने के लिए निकल ही रहे थे।

रविवार के दिन सुबह सुविमल अक्सर भतीजों को लेकर घूमने के लिए निकलते थे। मायालता इसे कभी बर्दाश्त नहीं कर पाती थी। हर सप्ताह दीवार को सुना कर कहती—इसके तो नखरे ही और हैं। लड़कों को भिड़ा दिया ताऊ के पीछे। आदमी को जैसे और कोई काम ही नहीं होता। एक तो दिन-रात कचहरी और मुवक्किल, और फिर एक दिन जरा सी छुट्टी मिली तो लगे भतीजों पर प्यार जताने। अपने लड़कों को लेकर तो कभी घूमते नहीं देखा। छुट्टी के दिन कभी किसी काम के लिए न कह दूँ, इसलिए जान बचा कर जा रहे हैं।

मायालता के इतने अभियोग पर भी दीवार यथावत् चुप रहती और हमेशा की तरह सुविमल—क्यों रे तैयार हो गया ? कहकर बच्चों को साथ लेकर निकल पड़ते।

आज जाते समय मायालता ने उन्हें देख लिया। बोली—सुबह-सुबह भतीजों को कन्धों पर लाद कर कहाँ जाना है ?

सुमोहन के दोनों बेटों ने ताऊ के दोनों हाथों की उँगली पकड रखी थी। सुविमल उस तरफ इशारा कर बोले—कंधे पर तो नहीं है, हाथ पकड़ कर कह सकती हो।

—अच्छा बाबा मुझसे व्याकरण की गलती हुई है। पर इतने सज-

धजकर जा कहां रहे हो ?

सुविमल बोले—अन्दाज नहीं लगा पा रही हो ?

—मैं कोई ज्योतिषी तो नहीं ?

—बच्चों को उनके ताऊ के पास ले जा रहा हूँ।

—सुशोभन के पास जा रहे हो। ओः ! बात छुपाने की क्या जरूरत है ? कह सकते थे कि खुद भी जा रहे हो। सच तो यही है न ? प्रेम के उस ताजमहल को खुद देखने जाना है तो जाओ, पर बच्चों को ले जाने की क्या जरूरत है ?

—ताजमहल तो देखने की ही चीज है। कहकर सुविमल निकल गए। मायालता अपने लड़कों के सामने रो पड़ी—देखा, देखा न तुम लोगों ने। मुझे एक बार बताया तक नहीं। छोटे भाई की पत्नी को बताया, उसके बच्चों को सजा-धजाकर साथ ले गए। मैं जैसे घर की नौकरानी ठहरी। मुझे बताने की जरूरत ही क्या है ?

तपोधन हाथ की सिगरेट छुपा कर बोला—तुम बड़ी निर्लज्ज हो माँ, इसीलिए अब भी पिताजी से बातें करती हो। दूसरी कोई प्रेस्टीज वाली महिला होती तो इस प्रकार के अपमान से पति के साथ किसी प्रकार का सहयोग नहीं रखती।

मायालता अब लड़के को लेकर पड़ गई, क्योंकि लड़के का कहना बिल्कुल सच था। इस ठेस से मायालता छटपटा उठी। झल्ला कर बोली—झुकने के सिवा मेरे पास चारा ही क्या है ? तुम लोग मेरा एक भी काम करते हो ? काम तो मुझे करवाना पड़ता है। बात बन्द करने से चलेगा कैसे ?

थोड़ी दूर पर अशोका बैठ कर चाय बना रही थी। बड़ी जेठानी के हाथ चाय का प्याला पकड़ा कर बोली—क्या कहती हैं दीदी ! राजा के बिना राज्य चल पाता—?

—क्या ? क्या कहा तुमने छोटी बहू ? मायालता चिल्ला उठी—तुम मेरे मरने की कामना करती हो ?

—बड़े आश्चर्य की बात है दीदी। क्या कह रही हैं आप ? चाय ठंडी हो जाएगी। पहले पी लीजिए। कहकर अशोका एक पुरानी प्याली में

चाय उड़ेलने लगी।

यह चाय इस घर की बूढ़ी नौकरानी के लिए थी।

अचानक प्रसंग भूलकर मायालता चिल्ला पड़ी। यह चाय किसकी है जरा सुनूं तो सही ?

—इस गिलास में और किसके लिए हो सकती है दीदी ?

—यो तो मुझे मालूम है। पर मैं तुम्हें बता देती हूँ छोटी बहू। दूसरे की चीज है इसलिए इतना उड़ाना भी ठीक नहीं है। इतनी कीमती चाय, गिलास भरकर नौकरानी को दे रही हो। क्यों ? क्या यह मुफ्त में आती है कि कम्पनी का माल, दरिया में डाल। क्यों, नौकरानी के लिए सस्ती चाय नहीं मंगवाई जा सकती ? उसे थोड़ा कम नहीं दिया जा सकता ?

अशोका गरम चाय आँचल में पकड़कर बड़ा सम्भाल कर ले जाती हुई बोली—यह काम मुझसे नहीं हो सकता दीदी। अच्छा होगा कि कल से गोपाल की मा के लिए चाय आप खुद बना लिया कीजिए।

—उचित जवाब मिला न ? तपोधन मुँह चिढ़ाकर बोला—गाल बढ़ा कर थप्पड़ खाना इसी को कहते हैं। तुम्हारी जगह आत्मसम्मान वाली कोई भी औरत इन लोगों से बातें ही नहीं करती।

मायालता गुस्सा कर बोली—मान-मर्यादा कोई दे तभी तो होगा न ? किसी ने कभी मान दिया है ? आजीवन इस गृहस्थी में नौकरानी बन कर ही रही। आगे बेटे की बहूएँ आकर न जाने क्या हाल करेंगी। इस तरह हर पल मायालता के गुस्से के पात्र बदल जाते थे।

इसके दूसरे ही क्षण वह सुमोहन के कमरे में लड़ने के लिए चल पड़ी। सुमोहन व्यंग्य से पत्नी को कह रहा था—यह रविवार की सुबह का नाश्ता है ? दरिद्रों के घर में छुट्टी के दिन इससे बढ़िया नाश्ता बनता होगा।

इस मन्तव्य को सुनने के बाद मायालता कैसे चुप रहती। वह पति-पत्नी की बातचीत के बीच कूद पड़ी। बोली—तारीख और वार तुम्हें भी याद रहते हैं, देवरजी ? बड़ी अच्छी याददाश्त है तुम्हारी। नहीं तो किसे बुधवार कहते हैं और किसे रविवार, तुम्हें याद रहने की बात तो है नहीं।

मायालता ऐसी ही थी।

सिर्फ वाक्-संयम के अभाव में मायालता अपनी गृहस्थी में गृहिणी की मर्यादा नहीं पा सकी थी। बहुत सी कंजूस, छोटे मन की गृहिणियाँ भी तर जाती हैं, सिर्फ स्वल्प वाक् की चादर ओढ़े रहती हैं। मायालता जितनी बकती थी, उतनी बुरी वह थी नहीं। उचित बात सुनाने के लोभ ने उसके सम्मान को हानि पहुंचाई थी। वह किसी के साथ बातचीत बन्द कर अपना सम्मान कायम रखे, इतनी क्षमता मायालता में कहाँ? उसकी बातों की पिटारी तो कभी न खत्म होने वाली थी।

छोटे देवर के साथ वाक्-युद्ध चलाने के बाद मायालता अपने बड़े बेटे के पास आई। बोली—तपो, तू किसी काम का नहीं है। तू भी कुछ नहीं करना चाहता। क्या तेरे मंझले चाचा वाला मामला वैसे ही चलता रहेगा?

—और नहीं तो क्या?

—तू ऐसा बोलेगा, यह मैं जानती थी। पर मैं कहती हूँ कि क्या पुलिस की सहायता नहीं ली जा सकती? यह नहीं कहा जा सकता कि उस औरत ने उस पागल को अपने कब्जे में कर रखा है। यह भी तो कहा जा सकता है कि कोई दवा-दवा पिला कर सुचिन्ता ने ही सुशोभन को पागल बना दिया है।

तपोधन हँस पड़ा। बोला—ऐसा कहने पर सुचिन्ता थोड़ी मुश्किल में पड़ सकती है, पर इससे तुम्हें क्या फायदा है?

—वाह! किसी से भी कुछ फायदा नहीं? लाभ सिर्फ हफ्ते में तीन तीन सिनेमा देखने और अच्छे कपड़े पहनने में ही है, क्यों? ठीक है, तुम लोगों में से किसी को कुछ करने की कोई जरूरत नहीं। मैं खुद एक बार राधू के पास जाती हूँ।

राधू उर्फ राधानाथ मायालता की बहन का दामाद था। लाल बाजार की पुलिस चौकी में काम था इसलिए किसी भी तरह की मुश्किल में पड़ने पर मायालता 'राधू' का अहंकार दिखाती थी, मानों वह ही लाल बाजार का सबसे बड़ा अधिकारी था।

हालांकि प्लेटें भर कर नाश्ता और प्याली-प्याली चाय पीने के सिवा

नहीं थी ? दर्शक और श्रोताओं की भूमिका तो रही। मुहल्ले में लगातार तीन दिनों तक शहनाई बजती रही। उसका सुर हवा में तैरता रहा। और निरुपम ने भी अपने घर बैठ कर वह सुर सुना।

पंडाल भी पाँच दिनों तक लगा रहा। सारा कुछ खिड़की से ही दिखता था। बिना देखे उपाय भी क्या था ? शादी के मौके पर एक और चीज निरुपम ने देखी थी। शायद सुचिन्ता ने भी देखा। पड़ोसी के नाते कृष्णा के पिता ने अनुपम कुटीर के बड़े लड़के के नाम एक निमंत्रण पत्र भेजा था। टेबल पर रखे उस सुन्दर से कार्ड को निरुपम बड़ी देर तक देखता रहा, पर हाथ में उठाना शायद भूल गया।

माँ-बेटे में घर के एक और लड़के की शादी पर एक शब्द की भी चर्चा नहीं हुई। निरंजन के जाने पर थोड़ा बहुत शोरगुल हुआ भी था, पर इन्द्रनील मानों अनुपम कुटीर के अहाते से बड़े निःशब्द ढंग से खो गया।

सिर्फ शहनाई की आवाज सुनकर सुशोभन ने बार-बार पूछा था—शहनाई की आवाज कहाँ से आ रही है, सुचिन्ता ?

सुचिन्ता धीरे से बोली—मुहल्ले में शादी हो रही है।

—कहाँ ? किस घर में ? चलो न सुचिन्ता, दूल्हे-दुल्हन को देख आएँ।

—वाह ! हम वहाँ कैसे जा सकते हैं ? हम क्या उन्हें जानते हैं ?

—नहीं जानती हो ? मुहल्ले के लोगों को भी नहीं पहचानती हो।

—सबको पहचानना तो बड़ा मुश्किल है।

—लेकिन हमारे बचपन में तो ऐसा नहीं था। हम तो मुहल्ले के सब लोगों को पहचानते थे।

—हम लोगों का बचपन बहुत पहले बीत चुका है सुशोभन। एक अबोध पागल को उपलक्ष्य मानकर मानों सुचिन्ता अपने आप ही को बता रही थी—हम लोगों की सारी बेला बीत चुकी है। इनके लिए हम अपरिचित हैं। हम किसी को नहीं जानते।

क्या पता सुशोभन इससे क्या समझे, पर बोले—शादी की शहनाई सुनने पर मेरे मन में बड़ा कष्ट होता है सुचिन्ता। लगता है, कोई किसी को हमेशा के लिए छोड़ कर जा रहा है। तुम्हें ऐसा नहीं लगता ? तुम्हारे

मन में तकलीफ नहीं होती ?

सुचिन्ता एकाएक बड़े जोर से बोली—क्यों ? तकलीफ क्यों होगी ? शादी तो खुशी का मौका है, बड़ा ही खुशी का मौका है।

दिन-रात आने-जाने के बीच कई दिन कट गए। अनुपम कुटीर यथावत् शान्त स्तब्ध रहा। बीच में कुछ दिनों के लिए यहां भी हँसी और खुशी की तरंगें उठी थी, पर लगता था, मानों किसी जादूगरनी ने अनुपम कुटीर के लड़कों को चुरा लेने के लिए षड्यंत्र रचा था। सारी आवाज एकाएक अब ठंडी पड़ गई।

सिर्फ निर्वोध झक्की पागल की बातें तरंग उठाती, कभी भयंकर चुप्पी छाई रहती। गृहस्थी का बाहरी रूप बिलकुल शान्त रहता। एक दिन सुशोभन ने ही पूछा—सुचिन्ता, तुम्हारे बहुत सारे लड़के थे, अब कोई दिखता नहीं। वे लोग सब कहाँ गए ?

सुचिन्ता एक पलक देखकर बोली—सब परदेस गए हैं।

—क्यों ? सुशोभन नाराज हुए। बोले—सबों को एक साथ विलायत जाने की क्या जरूरत थी। जरूर नीता ने सबको—।

—विलायत नहीं सुशोभन, परदेस। लड़के परदेस में नौकरी करने नहीं जाते ? तुम भी तो दिल्ली गए थे ?

—हाँ, मैं दिल्ली गया था पर क्यों, कहो तो ?

—क्यों क्या ? नौकरी करने गए थे ?

—नौकरी ? सुशोभन भौं सिकोड़ कर सब कुछ सोचते रहे।

सुचिन्ता बोली—हाँ नौकरी ? बड़ी मोटी तनख्वाह की नौकरी करते थे तुम। बड़ा सुन्दर था तुम्हारा दफ्तर, चमकीली टेवल पर काम करते थे। अच्छे कपड़े पहनते थे। लोग तुम्हे मुखर्जी साहब कहा करते थे—।

सुशोभन सिर हिलाकर बोले—मुझे कुछ याद नहीं आ रहा है सुचिन्ता। तुम मुझे दिखाओगी ?

—क्या दिखाऊँ ?

—चमकीली टेवल और मुखर्जी साहब को ?

सुचिन्ता हँस कर बोली—कैसे दिखाऊँगी कहो तो। मैं क्या दिल्ली

जा सकती हूँ ?

सुशोभन अस्थिर हो उठे। बोले—क्यों नहीं जा सकती सुचिन्ता ? तुम तो जानती हो अगर तुम दिल्ली जाओगी तो मुझे कितना अच्छा लगेगा।

—अच्छा लगेगा ? पर तुमने तो कभी कहा नहीं सुशोभन। कभी बुलाया भी नहीं कि सुचिन्ता तुम आओ। तुम्हारे आने से मुझे अच्छा लगेगा।

सुशोभन अचानक डर गए। बोले—मुझे डर लग रहा है सुचिन्ता, इस तरह से बातें मत किया करो।

—डर ? डर क्यों लग रहा है ? कहो ?

—हाँ, मुझे डर लगता है। मेरे दिमाग में काले-काले बादल जैसा पता नहीं क्या दौड़ता रहता है।

—ठीक है, नहीं कहूँगी।

—कहोगी क्यों नहीं ? दिल्ली की बात करना। दिल्ली की अच्छी बातें करना, जिस दिल्ली में हम कुतुब मीनार के पास बैठे रहते थे।

—हम माने कौन सुशोभन ?

सुशोभन बाधा पाकर रुक गए। फिर बोले—हम माने क्या ? हम माने हम। तुम भी आजकल सब भूल जाती हो सुचिन्ता।

सुचिन्ता बिना कारण थोड़ी हंसी। फिर बोली—कौन कहता है कि मैं भूल जाती हूँ। देखो मुझे याद है कि तुम्हारे दवा लेने का वक्त हो गया है।

—फिर दवा ? यह तुम्हारी बड़ी बुरी आदत है सुचिन्ता ? दवा लेना हमें अच्छा नहीं लगता। नीता जाते समय सारी दवाइयां विलायत क्यों नहीं ले गई ?

—जब नीता ले नहीं तो फिर ले ही लो। इतना कहकर सुचिन्ता दवाई की शीशी और पानी लेकर आई।

सुशोभन झल्ला कर बोले—दवा और दवा ! मुझे अच्छा नहीं लगता। लड़के किधर गए, पहले उन्हें ढूंढ़ो न।

सुचिन्ता ठंडी आवाज में बोली—ढूंढ़ने की जरूरत क्या है ? तुम

तो उन्हें प्यार नहीं करते।

—प्यार नहीं करता ? कौन कहता है कि प्यार नहीं करता। जरूर प्यार करता हूँ। इन लोगों ने तुमसे शिकायत की है ?

—वे लोग क्यों कहेंगे ? तुम तो इन लोगों से डरते हो। जब वे घर में नहीं होते तो तुम्हें जैसे चैन मिलता है—।

सुशोभन चंचल हो उठे। घबरा कर बोले—नहीं, नहीं, ऐसा मत सोचो सुचिन्ता। इन लोगों को यहीं रहना चाहिए। उनके नहीं रहने पर तुम रोओगी।

—किसने कहा कि मैं रोऊँगी ? किसी दिन मुझे रोते हुए देखा है ?

सुशोभन चहलकदमी करते हुए बोले—कैसे देखूंगा ? तुम तो रात में रोती हो। रात को तुम्हें देख नहीं पाता।

सुचिन्ता दृढ़ और अविचलित नहीं रह सकी। बोली—नहीं देख पाते फिर भी कैसे मालूम है कि मैं रात को रोती हूँ।

सुशोभन अस्थिर भाव से बोले—तुम रोओगी और मैं जानूंगा नहीं ? जब तुम यहाँ सो रही थीं और मैं दिल्ली में रहता था तो मैं देखता था कि छोटी-सी नीता नींद में सो जाती थी और मैं बिस्तर से उठ कर खिड़की के पास जाकर खड़ा होता था, और मैं देख सकता था कि तुम रो रही हो ?

—मैं यहाँ बैठकर रोती थी ?

—बैठकर नहीं। तुम खड़ी-खड़ी रोती थीं। कहीं बहुत दूर खिड़की का पल्ला पकड़ कर तुम रोती थीं। आकाश से चाँद की रोशनी तुम्हारे चेहरे पड़ती थी और उस रोशनी में मैं देख पाता था कि तुम रो रही हो। मोतियों के समान आँसू टपकते थे। बोलो, मैं सच कह रहा हूँ न !

सुचिन्ता बोली—वह सुचिन्ता मर चुकी है, सुशोभन !

—नहीं ! नहीं ! सुशोभन चिल्ला उठे,—झूठ-मूठ मरने की बात कह कर मुझे डराओ मत। तुम न जाने कैसी ही हो गई हो ?

सुचिन्ता बोली—कैसी ही हो गई थी सुशोभन ! दुनिया में हँसना या रोना ये दो चीजें हैं, मैं यही भूल गई थी।

सचमुच, बात सो यही थी। तीव्र यन्त्रणा से रोना पड़ता है, सुचिन्ता

को यह बात याद नहीं थी।

स्वस्थ दिमाग का परिचय देने के लिए आदमी को बहुत कुछ भूलना पड़ता है।

पर पागल पर यह जिम्मेदारी नहीं होती इसलिए जो वह भूलता है, भूल ही जाता है। जो नहीं भूल पाता उसे छुपाने की कोशिश भी नहीं करता।

इसलिए नींद की टिकिया खाकर जो सुशोभन होशोहवास खोकर सो जाते थे, वही सुशोभन आधी रात गए, दुबके कदमों से अपने कमरे से दूसरे कमरे में आ घुसे।

अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं दे रहा था फिर भी यदि किसी की पैनी दृष्टि होती तो वह समझ जाता कि सुशोभन की आँखें चमक रही थीं, चेहरे पर एक खुशी-सी थी।

सुचिन्ता के कमरे में भी अँधेरा था। इस कमरे में बेड-स्वीच भी नहीं था। सुचिन्ता को कुछ दिखाई नहीं दिया, पर एकाएक माथे और गाल पर उसने किसी भारी हाथ के स्पर्श का अनुभव किया। शायद वह आदमी गालों पर हाथ फेरकर देखना चाह रहा था कि सुचिन्ता के गालों पर मोतियों के समान आंसू की बूंदें थीं या नहीं ?

—कौन, कौन! क्या हुआ है ? उस स्पर्श को दूर धकेलकर कपड़े ठीक-ठाक कर फड़फड़ा कर उठकर सुचिन्ता ने बत्ती जलाई। सुचिन्ता ने देखा, पागल बिस्तर के किनारे खड़ा था। चेहरे पर कौतुक की मुस्कराहट थी।

एकाएक सुचिन्ता को लगा, अगर नींद में कोई उसका खून करने के लिए आता तो शायद इसी तरह आता। वह तीखी आवाज में बोली—इस तरह से क्यों उठ आये हो ? क्या हुआ है ?

पागल फुसफुसाकर बोला—तुम्हें रोता हुआ पकड़ने आया था। मैं देख रहा था कि तुम रो रही हो या नहीं ?

—छिः-छिः, नींद में इस तरह नहीं आना चाहिए। जाओ अपने कमरे में जाकर सो जाओ।

पागल ने सुचिन्ता की बात अनसुनी कर दी। हँस कर बोला—क्यों

पकड़ लिया न ? बड़ी कह रही थी कि 'रोती नहीं हूँ।' अभी तो गाल भीगे हुए थे।

—अच्छा अभी आँसू पोंछ लेती हूँ। चलो तुम्हें तुम्हारे कमरे में जाकर सुला आऊँ।

सुशोभन इधर-उधर बैठने की जगह न पाकर विस्तर पर जमकर बैठ गए। बोले—मुझे अभी नींद नहीं आ रही है, सुचिन्ता। यहाँ बैठने का दिल कर रहा है। गप-शप करने का मन कर रहा है।

—गप-शप करने का मेरा मन नहीं कर रहा है। मुझे नींद आ रही है—। सुचिन्ता पागल को हुक्म देने की आवाज में बोली—नींद पूरी न होने पर मेरी तबियत खराब हो जाती है। उठो, अपने कमरे में जाओ।

—नहीं सुचिन्ता। सुशोभन ने बच्चों जैसी जिद ठान ली। नहीं सुचिन्ता, तुम आज मत सोओ। आज तुम्हें मजेदार कहानियाँ सुनाऊँगा।

—सुशोभन, मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। चलो इस कमरे में। सुनो, तुम्हें रात को इस तरह से आना नहीं चाहिए, गप-शप नहीं करना चाहिए, समझे।

—नहीं आना चाहिए ?

—नहीं। नहीं। उठो, जाओ अपने कमरे में जाओ। मुझे बड़ी नींद आ रही है।

सुशोभन उठ पड़े। मलिन भाव से बोले—पहले तो तुम्हें इतनी नींद नहीं आती थी, सुचिन्ता। जब रात भर खिड़की के पास खड़ी-खड़ी रोती थीं तब ?

—अब मेरी तबियत खराब हो गई है।

—तबियत खराब हो गई। सुशोभन चौंक पड़े—तुम्हारी तबियत खराब है और टोकरे भर कर दवा मुझे खिलाती हो। उफ! तुम तो बड़ी दुबली हो गई हो। बड़े स्नेह से उस पागल ने सुचिन्ता के गालों पर हाथ रखकर कहा।

—सुशोभन ! सुचिन्ता निराश होकर बोली—कभी-कभी तो लगता है तुम ठीक हो गए हो ? फिर क्यों ?

—ठीक होने का मतलब क्या है सुचिन्ता ? पागल नाराजगी के

साथ बोला—मुझे कोई बीमारी हुई है क्या ? तुम्हीं लोग पागलों की तरह मुझे दवाई पिलाती रहती हो। अब से दवा नहीं खाऊँगा। आज भी नहीं खाई है। रात को तुमने जो टिकिया दी थी, उसे चालाकी से मैंने मुंह में दाब कर रखा था। जैसे ही तुम चली आई, मैंने फेंक दिया।

—फेंक दिया ?

—जरूर फेंकूंगा। तुम मुझे खामखा नींद की गोलियां खिलाती हो।

सुचिन्ता मूक-सी सुशोभन के चेहरे को देखती रही। दवा पेट में गई नहीं, इसलिए मन चंचल हो उठा होगा। डाक्टरों का कहना था, रात में सोते समय यह नई दवा लेने से स्नायु ग्रन्थियों को आराम मिलता है। सुशोभन ने आज दवा खाई नहीं थी। सुचिन्ता को थोड़ा और ध्यान देना चाहिए था।

—सुशोभन ! फिर कभी ऐसा नहीं करना।

—क्या नहीं करना है ?

—इस तरह से दवा नहीं फेंकनी चाहिए थी। रात को आकर मेरी नींद खराब नहीं करनी चाहिए थी।

—तुम गुस्सा कर रही हो सुचिन्ता ? सुशोभन के चेहरे पर अपराधी का भाव था।

सुचिन्ता कहने जा रही थी—हाँ, गुस्सा किया है। पर बोल नहीं सकी। बोधहीन उस चेहरे को देखकर धिक्कार से उसका अपना ही मन संकुचित हो उठा।

अपने थोड़े से मानसिक चैन के लिए क्या इतने विश्वासी अबोध हृदय को चोट पहुँचाएगी ? क्या सुचिन्ता इतनी स्वार्थी थी ?

सुचिन्ता हँसकर बोली—गुस्सा क्यों करूंगी ? मुझे तो सचमुच नींद आ रही है। तुम्हें सुलाकर मैं भी गहरी नींद में सो जाऊँगी।

—क्यों ? मुझे सुलाकर क्यों ? मैं क्या कोई बच्चा हूँ। इससे तो अच्छा होगा कि तुम सो जाओ और मैं तुम्हारे सर पर हाथ फेरता रहूँ। अच्छी नींद आएगी।

—अच्छी नींद आएगी ? सुचिन्ता अस्वाभाविक ढंग से बोली—जो नींद फिर कभी नहीं टूटे, तुम मुझे ऐसी नींद सुला सकते हो सुशोभन ?

अगर तुम सचमुच इस बात की गारण्टी दो तो फिर मैं तुम्हारी गोद में सो जाऊँ।

—तुम्हारी बात मैं समझ नहीं पाता सुचिन्ता। तुम इस तरह से मत बोलो।

—ठीक है, नहीं कहूँगी। असल में कोई सर पर हाथ फेरता है तो मुझे नींद नहीं आती।

—नींद नहीं आती?

—नहीं।

—आश्चर्य की बात है। और मुझे क्या लगता है जानती हो? मेरे सर पर यदि तुम हाथ फिराती रहो तो मैं आराम की नींद सो जाऊँगा। पर तुम तो ऐसा कभी करती नहीं।

—कभी किसी दिन कर दूँगी। आज सो जाओ।

—किसी दिन और क्यों? आज ही क्यों नहीं। कहकर जिद से सुशोभन फिर बिस्तर पर बैठ गए और रात की निस्तब्धता को तोड़ते हुए अपनी निजी शैली में चिल्लाकर बोले—मुझे हिलाओ तो सही, देखूँ तुममें कितनी ताकत है?

नहीं, सुचिन्ता के शरीर में ताकत ज्यादा नहीं थी, कभी भी नहीं थी। पर मन की ताकत? वह शायद शरीर की ताकत की विपरीत दिशा में चलती है। अपरिसीम मन की ताकत नहीं होने पर क्या पागल की हँसी से जाग कर घबराए हुए बड़े बेटे की विस्मित दृष्टि के सामने इतने सहज ढंग से सुचिन्ता बैठ पाती? और सिर्फ बैठना ही क्यों, जिद्दी पागल के सिर पर बैठी-बैठी हाथ भी फेरती रही।

नहीं! निरुपम ने कुछ नहीं कहा।

वह सिर्फ दरवाजे के बाहर बरामदे में खड़ा रहा और फिर अपने कमरे में वापस चला गया।

पर क्या निरुपम को कुछ भी नहीं पूछना चाहिए था? माँ पर इतनी सी दया करना क्या बहुत ही असम्भव था?

सुचिन्ता का बड़ा बेटा तो उदार, सभ्य [illegible] था। उसने [illegible] जबर-दस्ती टिके हुए पागल के लिए वह बहुत कुछ [illegible]। [illegible]

पिता का भार सौंपकर नीता जैसी बुद्धिमती लड़की भी निश्चिंत थी।

सिर्फ क्या अपनी माँ के लिए निरुपम के मन में एक बूंद भी करुणा नहीं थी? सुचिन्ता लम्बी साँस लेकर सोच रही थी, निरुपम मामूली सा एक प्रश्न पूछ कर ही महान और सुन्दर बन सकता था। कम से कम यही पूछ लेता—क्या हुआ? बात क्या है? पर आदमी का मन बड़ा ही दीन-हीन और कंजूस होता है।

ऐश्वर्य का भण्डार अपने पास होते हुए भी वह दीनता को ही चुनता है। सुचिन्ता सारी रात चुपचाप इसी रहस्य पर सोचती रही।

दूसरे दिन सुबह सुशोभन बड़ी देर तक सोते रहे। सारी रात कमरे की बत्ती जलती रही। सुबह बत्ती बुझाकर सुचिन्ता कमरे का पर्दा जैसे आधा खिंचा हुआ था, उसी हालत में लटकता रहा।

नौकरानी संध्या पोछा लगाते समय सुचिन्ता के कमरेके पास जाकर पर्दे की आड़ में से छोटे से पलंग पर भारी भरकम आदमी को सोया देख कर पहले तो घबरा गई, फिर उसके चेहरे पर अजीब-सी मुस्कराहट खिल गई और वह फिर से पोछा लगाने लगी।

सुबल चाय लेकर दुमंजिल पर आया। चाय की ट्रे टेबल पर रखकर उसने कंधे की झाड़न से टेबल साफ किया, उसके बाद पीछे मुड़कर देखकर पत्थर की तरह जम गया। पत्थर जैसे जमने लायक बात भी थी। रात में पगला बाबू के सोने के बाद सुबल खुद उस कमरे में पीने का पानी रख आया था। मच्छरदानी टांग कर आया था।

नहीं, सुबल के चेहरे पर खुशी की लहर नहीं दौड़ी। उसका काला चेहरा और भी काला हो गया। उसके चेहर की पेशियाँ सख्त हो गई।

अनुपम कुटीर के अलावा इस कलकत्ता शहर में और भी घर भी थे। अगर वहाँ भी कोई इन्तजाम नही हुआ तो अपना गांव तो था ही।

अब उसे इन्द्रनील के लिए भी चाय बनानी नहीं पड़ती थी। निरंजन चला ही गया था। सिर्फ निरुपम रह गया था। इस समय वह हर रोज अखबार हाथ में लेकर बरामदे में कुर्सी पर आकर बैठता था पर आज वह कुर्सी भी खाली थी। सुबल अपना काला कठोर चेहरा लिए इन्द्रनील और निरंजन का कमरा पारकर निरुपम के कमरे में आया। थोड़ी देर बाहर

खड़ा रहा। फिर देखा, कमरा खाली पड़ा था। निरुपम वहाँ नहीं था।

बिस्तर से चादर जमीन पर लटक रहा था। ऐसा बुरा दृश्य मुवल ने निरुपम के कमरे में पहले कभी नहीं देखा था। निरुपम अपना कमरा हमेशा जँचा कर रखता था।

तो क्या निरुपम भी कहीं चला गया?

सुबह को ऐसा ही लगा। और उसके चेहरे पर एक कुटिल सी हँसी खिल गई। उसने निरुपम, निरंजन और इन्द्रनील तीनों के कमरों के सभी दरवाजे खिड़कियाँ खोल दी, दरवाजे पर से पर्दे भी सरका दिए, फिर सीधे नीचे उतर आया।



कतार में तीनों खाली कमरे अजीब शून्यता लिए पड़े थे और सुबह की गर्मीली धूप चुपके से खिड़की में बाहर उस दृश्य को मुँह फाड़े देख रही थी।

स्नान समाप्त कर सफेद मलमल की धोती पर सफेद पतली चादर ओढ़कर सुचिन्ता अपने कमरे में आई। सुशोभन तब भी बिस्तर पर अपना भारी शरीर लिए बच्चों की तरह सो रहे थे। सुचिन्ता वापस चाय टेबल के पास लौट आई। रोज सुबह की तरह आज भी चाय रखी गई थी पर निरुपम रोज की तरह अपनी कुर्सी पर नहीं था। सुचिन्ता पीछे मुड़ी। सामने मुवल खड़ा था। उसके चेहरे पर कुटिल हँसी थी।

सुचिन्ता भी मुवल की तरह सोचने लगी, 'तो निरुपम भी चला गया? कब गया? किस समय गया? आधी रात को?'

निरंजन के चले जाने के बाद उसके सूने कमरे में जाकर सुचिन्ता की आँखों से शायद अनजाने में ही आँसू टपका था, पर लगातार तीन शून्य कमरों की तरफ देखकर अब सुचिन्ता पत्थर की तरह स्थिर रही।



लेकिन सुचिन्ता का बड़ा बेटा कहीं नहीं गया था। वह सुबह घूमने निकल कर वहीं से सीधे डाक्टर से मिलने चला गया था। सारी बातें सुन

कर डाक्टर ने कहा था—अच्छा, यह बात है ? यह उम्मीद तो नहीं थी। इसका अर्थ एक-दो और सिटिंग की जरूरत है।

डाक्टर के यहाँ से निरुपम सीधे कालेज चला गया था, बिना खाए, बिना नहाए।

शाम को निरुपम घर लौटा।

घर में घुसते ही उसे लगा, शायद माँ भी सारे दिन की भूखी होंगी पर दूसरे ही क्षण उसका मन विरोध कर उठा। सोचा, पागल को खुश करने के पागलपन से शायद उन्हीं के साथ एक टेबल पर खा लिया होगा और उसके साथ हँस-हँस कर बातें भी की होंगी।

सुबल ने जब देखा कि बड़े भैया घर लौट आए तो उसकी छाती पर से बड़ा भारी बोझ उतर गया। थोड़ी शर्म भी आई। उसने सोचा, हो सकता है, बड़े भैया को आज बाहर कोई जरूरी काम रहा हो और सुचिन्ता को सचमुच ही भूख नहीं थी। नहीं तो बाकी दो बेटों के चले जाने पर तो सुचिन्ता ने खाना खाना नहीं छोड़ा था।

सुचिन्ता हाथ में किताब लेकर बैठी थी। बिना किसी भूमिका के निरुपम बोला—डाक्टर पालित ने कहा है, एक दो और सिटिंग की जरूरत है।

सुचिन्ता तुरन्त कुछ बोल नहीं पाई। फिर बोली—ओः।

निरुपम जाते-जाते बोला—मैं सोच रहा हूँ, इन्हें अस्पताल में दाखिल करा दूँ।

सुचिन्ता झट अस्वाभाविक भाव से बोली—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।

—ऐसा नहीं हो सकता ? दाखिल करवाने की परिस्थिति पैदा होने पर भी नहीं ?

सुचिन्ता निरुपम के शान्त चेहरे को देखती हुई बोली—नहीं। कम से कम नीना के लौटने के पहले मैं इन्हें और कहीं नहीं भेज सकती।

निरुपम माँ के इस दुस्साहसपूर्ण भाव को देखकर बोला—इससे तो यही समझना पड़ेगा कि तुम चाहती हो कि मैं भी घर पर न रहूँ ?

सुचिन्ता चौंकी नहीं।

इस प्रश्न के लिए वह शायद तैयार थी। उसने शायद दुनिया के तमाम प्रश्नों के जवाब के लिए अपने आपको तैयार कर रखा था। वह बोली—मेरे चाहने और नहीं चाहने पर क्या सब कुछ निर्भर करता है?

—कुछ तो करना ही है।

सुचिन्ता क्षण भर चुप रहकर बोली—सब की बुद्धि और सब का विवेक एक जैसा नहीं होता निरु!

अनुपम कुटीर के हमेशा के शान्त लड़के के मन में आज कैसा तूफान उठ खड़ा हुआ था।

निरुपम अपने को शान्त नहीं रख पा रहा था। बोला—समान होना ही उचित है माँ! वही स्वाभाविक है। रोगी के लिए सहानुभूति अच्छी चीज है, पर पागल को बढ़ावा देना उचित भी नहीं, सुन्दर भी नहीं। और मेरी राय में सुन्दरता और शोभनीयता ही आदमी के लिए आखिरी बात होती है।

—आखिरी बात क्या इतनी आसानी से कहकर खत्म की जा सकती है निरु? सुचिन्ता अविचलित भाव से बोली—हर आदमी का अपना एक मत होता है। सुन्दर और शोभन का मापदण्ड सब का एक जैसा नहीं होता।

निरुपम एक साथ इतनी बातें करता ही कब था? लेकिन आज शायद वह और बातें करता, पर इसी बीच एक टेलीग्राम ने आकर मानों सब को बचा दिया।

नहीं, इस आकस्मिक टेलीग्राम में कोई बुरी खबर नहीं थी। नीना ने अच्छी और शुभ खबर ही भेजी थी। निरुपम को नीना ने तार के द्वारा सूचित किया था कि सागर के साथ उसकी शादी हो गई थी। शादी के बिना वहाँ किसी-किसी बात में, तथा अधिकार के मामले में दिक्कत हो रही थी, इसलिए रजिस्ट्री शादी कर लेनी पड़ी। यह शादी आवेग की नहीं, जरूरत के लिए थी। अधीरता की शादी नहीं थी, विवेचना की थी। नीना ने अपने दोनों के लिए निरुपम से आशीर्वाद माँगा था और लिखा था कि पिताजी को इतना कुछ बताना कोई माने नहीं रखता। बुआ को कहने की हिम्मत नहीं थी, इसलिए वह उसे ही लिख रही थी और उसने

कुछ घंटों के बाद ही खबर मिली कि नानाजी अब नहीं रहे।

निरुपम को अचानक लगा माँ की इस प्रकार की नीरव अधीनता मानने को उसने हमेशा दया की दृष्टि से देखा था और कभी भी उसने माँ को समझने की कोशिश नहीं की थी। जब ज़रा-सी कोशिश करने पर किसी को समझा जा सकता था। इसी कोशिश में आदमी की आदमीयत और महानता है। आदमी आदमी की महानता का सम्मान करता है, उसे श्रद्धा देता है पर स्वयं महान बनने का मोह उसमें नहीं होता।

टेलीग्राम हाथ में लेकर निरुपम सुशोभन के पास जाकर खड़ा हुआ। सुशोभन अकेले ही चुपचाप बैठे थे। और दिन वे इतने चुपचाप नहीं रहते। और कुछ नहीं तो ज़ोर-ज़ोर से कविता ही पढ़ने लगते।

निरुपम ने पास जाकर कहा—टेलीग्राम है। पढ़िए।

—मैं पढ़ूँगा ? यह क्या है ?

—टेलीग्राम है, आप पहचानते नहीं ?

—देख तो रहा हूँ कि टेलीग्राम है। पहचानूँगा क्यों नहीं ? तुम मुझे समझते क्या हो ?

—कुछ नहीं। टेलीग्राम पढ़िए और पढ़कर समझने की कोशिश कीजिए।

—क्यों क्या ज़रूरत है ? पता नहीं किसका न किसका टेलीग्राम है—।

—मालूम है किसका है ? नीता का है। आपकी लड़की का।

—मेरी लड़की का। उसने टेलीग्राम दिया है ?

—हाँ, पढ़कर देखिए न क्या लिखा है।

—मैं पढ़ूँ ? बड़ा असहाय स्वर था सुशोभन का।

निरुपम थोड़े स्नेह से बोला—क्यों, नहीं पढ़ेंगे ? आपको तो पढ़ना आता है।

—आता तो था।

—अब भी आएगा।

सुशोभन एक बार फिर विड़विड़ाकर पढ़कर टेलीग्राम को दूर सरकाते हुए बोले—मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।

है। क्यों का कोई जवाब नहीं है।

—शादी के बाद लड़की ही ससुराल जाती है, लड़के नहीं जाते।

—मेरे भाग्य में सब कुछ उल्टा है। दुल्हन के घर सात दिन तक धरना देकर किन दूल्हे ने आज तक शादी की है?

—वह अलग बात है। कृष्णा झल्ला उठी—उस व्यवस्था में मेरा कोई हाथ नहीं था। पर अब मेरा जीवन मेरा है, मेरी इच्छा है—।

इन्द्रनील मुस्करा कर बोला—तुम्हारी इच्छा अगर मुझसे बंदर का नाच करवाने की है, तो भी मैं बाधा नहीं दूँगा। पर मुझसे ससुराल चलने के लिए मत कहो। तुमसे मेरी यह विनती है।

—तुम्हारी विनती सुन ही कौन रहा है? अगर तुम्हें लेकर मैं अपने मायके में बैठी रहूँ तो दोस्तों के सामने मुँह दिखाने काबिल नहीं रहूँगी।

इन्द्रनील बोला—ओ·· तो यह कारण है। मैं यही सोच रहा था कि अचानक ससुराल जाने के लिए इतनी उतावली क्यों हो रही हो? हिन्दू कुलवधू की हवा लग गई क्या? पर कृष्णा, तुम्हें दोस्तों के सामने शर्मिन्दा होना पड़ेगा, यह तो तुम पहले से ही जानती थीं। ससुराल में मेरे रहने की व्यवस्था पर उस समय तो तुमने कोई आपत्ति नहीं उठाई थी?

—अजीब बात है। उस समय कहती तो शादी रुक जाती। मैं इतनी बेवकूफ नहीं हूँ। मैं जानती थी कि पिताजी की हर बात न मानने पर शादी नामुमकिन हो जाएगी।

—नामुमकिन होना तो क्या बिगड़ जाता?

—मेरा कुछ बिगड़ता था। नचाने के लिए एक बंदर की बड़ी जरूरत थी मुझे।

—दुनिया में बंदरों की कुछ कमी तो नहीं।

—कमी क्यों नहीं है? देखते नहीं, मेरी कुंवारी दोस्तों को देखो, कैसी अभागिन की तरह बैठी हैं। मुझसे तो वे लोग जलती होंगी। कहती हैं, तू बड़ी भाग्यवान है। असल में आजकल सब के माँ-बाप शादी के लिए उतना सोचते नहीं हैं।

—नहीं सोचते हैं?

—बहुत कम। अधिकतर माँ-बाप सोचते हैं इतने झंझट में जाने की

उन्हें जरूरत ही क्या है? लड़की ही अगर किसी को जुटा सकी तो शादी होगी, नहीं तो नहीं। खर्च बचा, झमेले से भी बचे।

—सारी लड़कियां वर क्यों नहीं जुटा पातीं?

कृष्णा झल्ला उठी—अहा! सब मेरी तरह बुद्धिमान थोड़े ही हैं।

—यह सच है। पर अब तुम्हारी बुद्धि कामयाब नहीं हो सकती, क्योंकि अपने घर तुम्हें लेकर जाना मेरे लिए असम्भव है।

कृष्णा बोली—तुम्हारे लिए असम्भव हो सकता है, पर मेरे लिए नहीं। क्यों? उस घर में मेरा भी तो हिस्सा है।

—तुम्हारा हिस्सा? इन्द्रनील हैरान होकर कृष्णा को देखने लगा।

कृष्णा मुंह चिढ़ाकर बोली—आसमान से क्यों गिर रहे हो? तुम्हारे पिताजी का मकान है। तुम तीन भाई हो। तीन हिस्सों में से एक हिस्सा तुम्हारा है। और तुम्हारा यानी मेरा है। मैं तो दावे के साथ वहाँ जाकर रहूँगी।

इन्द्रनील मजबूर होकर बोला—अपना हक लेने तुम चली जाना। मैं उस चक्कर में नहीं पड़ूंगा।

—ठीक है। कृष्णा मन में सोचने लगी—इन्द्रनील क्यों संकोच कर रहा है, मुझे मालूम है। वह डरता है कि कहीं उसकी माँ के भेद का पता न चल जाए—पर मैं कुछ नहीं मानती। उस बाधा को दूर हटाकर रहूँगी।

कृष्णा की माँ कृष्णा की सलाहकार थी। मुहल्ले के बीच रह कर लड़की की सास एक पागल को लेकर पागल बनी रहेगी, यह वह बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। वह लड़की से बोली थी—पहले शादी हो जाने दो, फिर देखते हैं।

कलकत्ता लौट कर इन्द्रनील ने अपने को बड़ा असहाय और बेचैन पाया, हालांकि कृष्णा नई-नवेली दुल्हन की भूमिका में भी पटु थी।

पर पागल सुशोभन को किस बात की बेचैनी थी। वे खाते-पीते और जब मन में आता, ऊँची आवाज में कविता पाठ करते।

एक दिन कविता पढ़ते-पढ़ते उन्होंने अचानक पूछा—अगली लाइन क्या है सुचित्रा?

सुचित्रा ने रसोई से दौड़ कर आकर पूछा—क्या पूछ रहे हो?

—अगली लाइन मुझे याद नहीं आ रही है।

सुचिन्ता कुछ समझ नहीं पाई।

सुशोभन नाराज हो गए। बोले—दिनाजपुर के घर में मैं चिल्ला-चिल्ला कर पढ़ता था और तुम मुंह फाड़ कर सुनती थी और अब तुमको कुछ याद ही नहीं है?

—हाँ, याद आया। तुम किसी किताब से पढ़ते थे।

—किसी किताब से का क्या माने? क्लास में फर्स्ट आया था, इसलिए बंगला के मास्टर साहब ने मुझे एक किताब दी थी न—।

—हाँ-हाँ। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'चयनिका' थी।

—वाह! सुचिन्ता खूब याद दिलाया तुमने। कह कर सुशोभन जोर जोर से पढ़ने लगे।

सुचिन्ता क्या काम छोड़कर आई थी, सारा कुछ भूल गई। वह मानों देख पा रही थी कि छत की टूटी दीवार पर सूर्यास्त की छाया पड़ी है और एक किशोरी लड़की मुंह फाड़े सर हिला-हिलाकर किसी किशोर का कविता पाठ सुन रही है। वह देख रही थी रोज वह जिस किशोर को देखती थी, उसका चेहरा नई रोशनी मे बदल रहा था।

सुचिन्ता के दिमाग से घर गृहस्थी का सारा काम लुप्त हो गया।

—माँ! पुकार सुन कर सुचिन्ता पीछे मुड कर देखा।

नौकर सुबल थोड़ी दूर पर खड़ा था।

सुचिन्ता भौं सिकोड कर बोली—क्या बात है?

सुबल बोला—नीचे छोटे भैया भाभी को लेकर आए हैं।

—छोटे भैया भाभी को लेकर?

सुबल बोला—पड़ोस के उस घर की लड़की को—।

सुचिन्ता उसे रोक कर बोली—जाकर पूछ आओ, [illegible] है?

—जी, वे ऊपर आ रहे है। मुझे भैया ने [illegible] है।

—इसमे खबर देने की क्या बात है? [illegible] दीवार के पास एक मोढ़े पर बैठ गई।

सुशोभन बाधा पाकर कविता छोड़ सुचिन्ता के पास आकर बोले—क्या बात है? कविता तुम्हें अच्छी नहीं लगी?

—अच्छी लगी है। असल में पैर में दर्द हो रहा था, इसलिए यहाँ आकर बैठ गई।

सुशोभन व्याकुल होकर बोले—खूब पैर दर्द कर रहा है। बहुत पैदल चली हो क्या?

—पैदल कहाँ जाऊँगी? तुम जरा शान्त होकर बैठो।

—बैठूं? शान्त होकर?

—हाँ! अभी वे लोग आ जाएँगे।

—कौन लोग सुचिन्ता?

—मेरा छोटा बेटा और उसकी बहू।

इन्द्रनील और उसकी नवविवाहिता पत्नी कृष्णा सामने आए। कृष्णा पहले भी इस घर में आई थी। पर आमने-सामने होकर उसने सुचिन्ता से कभी बात नहीं की थी। आज आमने-सामने बात करने आई थी।

इन्द्रनील कृष्णा के पीछे खड़ा था। इन्द्रनील पतंगे की तरह कृष्णा की की इच्छा की आग में अपने को डाल कर उसके पीछे-पीछे अपने घर चला आया था।

गहनों से लदी कृष्णा ने झुक कर सुचिन्ता के पैर छुए और तिरछी नजर से सुशोभन की तरफ देखा। सुशोभन खड़े-खड़े विह्वल दृष्टि से सब कुछ देख रहे थे।

नहीं। नई बहू को देखने के लिए सुचिन्ता कोई गहने-जेवर निकालने के लिए नहीं उठी। बहू के सिर पर हाथ रखकर दृढ़ स्वर में बोली—किसी बड़े को प्रणाम करते समय सामने यदि दूसरा कोई बड़ा रहे तो उन्हें भी प्रणाम करना चाहिए बहू!

कृष्णा अपने हाथ का कंगन घुमाती हुई बोली—और बड़े कौन हैं?

सुचिन्ता क्षण-भर उसकी तरफ देखकर बोली—सुशोभन! जरा इधर आना, बहू तुम्हें प्रणाम करेगी। तुम्हें वह देख नहीं पा रही है।

सुशोभन बिना कुछ सोचे-समझे आगे बढ़ आए।

कृष्णा ने परिस्थिति की गम्भीरता नहीं दी। बोली—ये कौन हैं?

कृष्णा की मां चाहे कुछ भी बोले, 'तुम लोगों के सनात्रा हमारा है ही कौन', फिर भी उसका मन नहीं मानता। और फिर कृष्णा ने भी जिद ठान ली थी कि वह 'अनुपम कुटीर' में ही रहेगी।

कृष्णा की जिद के पीछे जो भी कारण रहा हो, पर उसकी जिद इन्द्रनील के अनुकूल थी।

पर कृष्णा की भी अजीब जिद थी। उसने यह स्पष्ट कर दिया कि मुशोभन के रहते हुए वह घर में रहने के लिए नहीं आएगी।

कृष्णा की मां ने भी कहा था—नहीं, बेटे नहीं। मेरी तो एक ही इकलौती लड़की है। मैं इसे पागल के घर नहीं भेज सकती। पहले उन्हें विदा करो, फिर लड़की को ले जाने की बात करना।

इसके जवाब में इन्द्रनील ने कहा था—वहां जाने की बात मैंने तो नहीं उठाई थी। आपकी लड़की ही जाने के लिए बेचैन है।

लीलावती गम्भीर भाव से बोली—उसका बेचैन होना वाजिब है। कहावत ही है कि लड़की पराया धन है। गोत्र बदला कि पुराना बंधन कटा।

उधर लड़की के साथ एकान्त में दूसरी ही बात कहती। बोलती—सास का स्वभाव और चरित्र अच्छा नहीं है। छि छि', कैसी घृणा की बात है। जैसे भी हो उसे जड़ से उखाड़ कर फेंक देना। क्यों दुनिया में और कहीं जगह नहीं है? वहां जाकर रहे न। इतनी उम्र हो गई है, लड़के बच्चे बड़े-बड़े हो गए हैं! थोड़ी लाज शर्म नहीं, छि: छि:! और तू भी तो ऐसी है कि चुन-चुन कर वहीं शादी की। और कोई घर नहीं मिला? इन लोगों के रंग-ढंग तो पहले से ही तू जानती थी।

कृष्णा भी तुनककर बोली—पहले से इतना कुछ कैसे जानती? सुना था नीना दीदी के पिताजी बीमार होकर यहां चिकित्सा के लिए आए हैं।

—तुम्हारी वह नीना दीदी इन लोगों की कौन होती है, जिनके साथ उनका क्या सम्बन्ध है, यह भी किसी दिन सोचा?

—इतना कौन सोचता है। कोई न कोई होगी ही, बुआ इत्यादि पुकारती तो थी।

—तुम्हारी तरह बेवकूफ दुनिया में दूसरी कोई नहीं, ... ; ...

नहीं बन पाई हैं समधिन। जिस युग मे पैदा हुई थी, उसी युग की बनी रहीं।

सुचिन्ता बोली—क्या मुश्किल है ? रहने से ही रहा जा सकता है क्या। काल अपने वेग से दौड़ता रहता है, उसके साथ कदम मिलाकर चलना ही पडता है।

—यह साधु भाषा मेरी समझ से परे है। हम काल भी नही समझते, उसकी चाल भी नही समझते। पर आदमी की चाल-ढाल, आदमी की तरह होना चाहिए। अपनी ही बात लीजिए। कौन न कौन पराए व्यक्ति के पीछे अपनी घर-गृहस्थी लुटा रही हैं यह भी क्या कोई इन्सानियत की वस्तु है ?

सुचिन्ता ने सोचा कि वह बात को आगे और नहीं बढ़ाएगी पर दो-दो औरतों की बातों का जवाब दिए बिना चुप रहना भी मुश्किल था। फिर भी हँसकर ही बोली—अपने और पराए के भेद की व्याख्या करना बड़ा मुश्किल काम है बहन ! और यह बात सचमुच ही जो पराया है, उसे तो किसी भी हालत में नही समझाई जा सकती।

—ओः यह बात है ? लोक-निन्दा आपके लिए कोई अर्थ नहीं रखती।

—कुछ भी अर्थ नही रखती, यह कैसे कह सकती हूँ, चाहिए ? पर दुनिया में इससे बड़ा भी तो और कुछ हो सकता है।

—उस बड़े को समझना हमारे लिए सच मे मुश्किल है समधिन ! लोक-निन्दा से रामचन्द्र भी हिल गए थे। हालाँकि आप अपनी रुचि और प्रवृत्ति के मुताबिक ही काम करेंगी, पर हम लोगो ने भी इस घर मे अपनी लड़की दी है इसीलिए—।

सुचिन्ता उन्हे रोककर बोली—यहां आप गलत कही रही हैं। लड़की आप लोगों ने दी नही है।

—देने पर भी ले कौन रहा था ? कृष्णा की माँ आक्षेप के साथ बोली—मेरी तो बुद्धि ही खराब है नही तो एक बार अपमानित होकर भी दुबारा अपमानित होने के लिए यहां आती नहीं। लड़की भी तो मेरी अजीब है। मेरा सब कुछ उसी का है, तीन मंजिला सूना पड़ा है, फिर

सुचिन्ता बोली—सभी क्या सब कुछ देख पाते हैं बहन ? हो सकता है आप जो नहीं देख पा रही हैं, मैं वही देख पा रही हूँ।

—समधिन के पास दिव्य दृष्टि है। अच्छा नमस्ते। आपके पास आकर बहुत ज्ञान मिला। इतना कह कर वे दोनों उतरने ही जा रही थीं कि उन्होंने देखा कि धम्-धम् करते हुए कोई सौम्य-सा व्यक्ति ऊपर चढ़ रहा था और उसके आगे-आगे दो हट्टे-कट्टे बच्चे भी चढ़ रहे थे।

ये लोग कौन हो सकते थे ? सुना तो था कि इस घर में कोई रिश्तेदार वगैरह का आना-जाना नहीं। कौतूहल के आगे घमण्ड हार गया। कृष्णा की मौसी ने छोटे बच्चे का हाथ पकड़कर पूछा—कहो मुन्ना, तुम्हारा नाम क्या है ?

बच्चे को यह अच्छा नहीं लगा। झटके से वह अपना हाथ छुड़ाकर गम्भीर भाव से बोला—सानू मुखर्जी। पिताजी अगर पीछे न होते तो वह जवाब दिए बिना ही भाग जाता। ऐसी बुढ़ियों से बच्चे बड़े चिढ़ते थे। जान न पहचान, लगी पूछताछ करने।

पर बच्चे की मन की बात मोटी बुढ़िया सुन नहीं पाई, इसलिए फिर पूछा—तुम इनके क्या लगते हो ?

—नहीं मालूम।

इस बीच दूसरा लड़का बगल से ऊपर दुमंजिले पर चला गया। सुमोहन लड़के से बोले—सानू, यह क्या बात है, ठीक-ठीक जवाब दो।

सानू गम्भीर भाव से बोला—मैं जानता हूँ कि मैं इन लोगों का कौन लगता हूँ ?

सुमोहन ने बच्चे को सँभाल लिया। बोला—बेटे, बताओ यहाँ तुम किसके पास आए हो ?

—ताऊ जी के पास आया हूँ।

—ताऊ जी ?

मौसी ने रहस्य की छोर पकड़ ली। सुमोहन को ऊपर जाने का रास्ता छोड़कर बोली—समझ गई। वही न। जिनको दिमाग की बीमारी है ?

—दिमाग की बीमारी ?

सानू मुखर्जी जिसके घर का नाम 'गुड्डा' और 'डाकू' था, उसने अपने

ही सर पर हाथ फेरकर कहा—धत् दिमाग में कहीं बीमारी होती है क्या ? बीमारी तो शरीर में होती है। कहकर भाग गया।

कृष्णा की माँ और मौसी खड़ी हो रहीं। धीरे से पूछा—आपका लड़का है ?

—हाँ।

—जो बीमार हैं, आप उनके भाई हैं ?

—जी हाँ।

—आप लोग कहाँ रहते हैं ?

सुमोहन अन्दर ही अन्दर नाराज हो रहा था। फिर भी सौजन्यता की खातिर बोला—जी, श्याम बाजार की तरफ।

—ओ। आपके यहाँ जगह की कमी है ?

—क्या कह रही हैं ?

—लगता है ये सज्जन आपके भाई हैं। आप लोग मुखर्जी हैं और ये लोग मित्रा हैं। मित्रा हमारे रिश्तेदार हैं। ये लोग क्या आपके भाई के मकान मालिक हैं ?

सुमोहन गम्भीर हो गया। बोला—आप इनके रिश्तेदार हैं और इनके बारे में आप लोगों को कुछ पता भी नहीं है ?

—नहीं, कुछ खास पता नहीं है। सोचा था, तीनों कुल में कहीं कोई नहीं है, इसलिए दया में आकर इन्होंने पागल को घर में जगह दी होगी। [illegible] मालूम था, उनके इतने लायक भाई भी हैं। फिर इन्होंने किराएदार के रूप में रखा होगा।

सुमोहन उन्हें रोककर बोला—इस घर की मालकिन हमारे सगे रिश्तेदार की तरह हैं।

—यह तो मालूम ही है नहीं तो पागल भाई को इनके यहाँ छोड़कर आप लोग चैन से बैठे न रहते। लेकिन मुश्किल क्या है जानते हैं ? इनके घर की बहू पागल के डर से घर बसाने नहीं आ पा रही है। हमारे ही घर की लड़की है। मैं लड़की की मौसी हूँ और यह उसकी माँ है। सुमोहन को निर्वाक् कर दोनों महिलाएँ नीचे उतर गईं।

थोड़ी देर उनको जाता देखकर सुमोहन जब ऊपर कमरे में आया तो

वहाँ बच्चों की किलकारियों के साथ हो-हल्ला चल रहा था।

सुशोभन उल्लास के साथ चिल्ला रहे थे—गुंडा, डाग्नू, बिच्छू, बिल्टू, बिबू, सानू, मंटू ! क्यों ? मुझे सब याद है। बड़ा आया है पूछने कि नाम याद है या नहीं। अरे तुम लोगों के नाम मैं भूल सकता हूँ ?



सुमोहन से सारा विवरण सुनकर सुविमल विचलित हो उठे। चिंतित होकर बोले—शोभन के बारे में हम लोगों को इतना निश्चिन्त नहीं होना चाहिए था। कम से कम नीता के बाहर जाने के बाद हम लोगों को इस बारे में और सोचना उचित था। सुचिन्ता के रिश्तेदारों ने अगर नाराजगी जाहिर की है तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। थोड़ा सोच कर सुविमल फिर बोले—शोभन की लड़की ने हमारी सहायता नहीं माँगी फिर भी उसके प्रति हम लोगों का कुछ कर्तव्य है।

सुमोहन बोला—हमारा क्या कर्तव्य हो सकता है ?

—है मोहन, कुछ है। मैं भी यही सोचकर निश्चिन्त बैठा था कि जब उसे हमारी परवाह नहीं तो हम भी उदासीन रह सकते हैं। लेकिन अब सोचता हूँ कि कर्तव्य का दायरा इतना छोटा और संकुचित नहीं है, और छोटी-सी एक लड़की पर गुस्सा करके अपने विवेक को सुला रखना ठीक नहीं है। नहीं मोहन, यह कोई काम की बात नहीं है। नीता अपने दृष्टि-हीन पति को लेकर अकेली आ रही है, यह खबर जानकर भी हम चुपचाप इसीलिए बैठेंगे कि उसने हम लोगों से सहायता नहीं माँगी है, यह भी एक प्रकार की हीनता है। हाँ मोहन, इसे नीचता भी कह सकते हो। किसे किस चीज की जरूरत है, यह समझ कर मदद का हाथ फैलाना ही इन्सानियत है, और हम नाराज भी किस पर हो रहे हैं अपने ही भाई की छोटी-सी लड़की पर, जिसे हमारे स्नेह का पात्र होना चाहिए। अगर उसे अपने विरोधी के रूप में भी देखो तो उसकी उद्दण्डता के अपराध के आगे हम लोगों की अपनी कर्तव्य की त्रुटियाँ भारी पड़ेंगी।

—वह कैसे ? सुमोहन बोला।

सुविमल बोले—छोटों से कोई कुछ उम्मीद नहीं करता, पर बड़ों

से जरूर करता है। लोग बड़ों से उदारता, त्याग और क्षमा की आकांक्षा रखते हैं। खैर! नीता कब आ रही है?

—अगली उन्नीस को।

—ठीक है। मेरी इच्छा है, तुम उसके पहले ही दिल्ली पहुंच जाओ।

—मैं दिल्ली चला जाऊँ?

—तुम्हारे अलावा किस पर मेरा जोर है कहो? साधन, तपोधन तो—जाने दो, वहाँ शोभन का घर भी है। वहाँ तुम्हें किसी बात की दिक्कत भी नहीं होनी चाहिए। सोचना, लड़की और दामाद के स्वागत के लिए जा रहे हो। जब पिता बीमार हैं तो यह ताऊ या चाचा का ही तो काम है। सचमुच मोहन, पहले कभी इस दृष्टिकोण से मैंने सोचा ही नहीं था। नीता की तरफ से मन को बिल्कुल विमुख बना रखा। लगता था वह बड़ी स्वावलम्बी और आजाद किस्म की लड़की है: पर हम लोगों ने भी तो कभी अपने आचरण से यह प्रमाण नहीं दिया कि यहाँ उसके लिए भरोसे की जगह है। सुशोभन तीन-चार सालों से यहाँ आया नहीं। नीता ने लिखा, पिताजी बीमार हैं, तो हम लोगों ने इसे एक बहाना समझा। समय पर जाकर अगर चिकित्सा करवाते तो शायद यह नौबत ही नहीं आती। दुख और नाराज नीता को ही होना चाहिए था, पर हुए हम लोग। खैर जो हो गया उसका क्या उपाय है, पर अब जितना हो सके—।

सुमोहन बोला—ठीक है, मैं जाऊँगा।

—हाँ, तुम जाओ। भविष्य में शायद तुम्हारे ही चलते नीता अपने पिता को वापस ले जा पाएगी। शोभन थोड़ा ठीक हो जाए, फिर तो सुनिन्दा के यहाँ उसका रहना कोई माने नहीं रखता।

—इसका माने मुझे दिल्ली में ही रह जाने के लिए कह रहे हो?

—नहीं! जबर्दस्ती तुम्हें कुछ भी नहीं कह रहा हूँ। लगता है स्नेह से मैं अब तक तेरी हानि ही करता रहा, अगर उस क्षति का थोड़ा भी भाग सुधर सके तो—।

—भैया?

—ठीक है। अभी थोड़े ही दिनों के लिए जा। बाद में देखा जाएगा।

थे। अधिकतर समय चुपचाप रहते और खिड़की के पास कुर्सी पर बैठकर सड़क पर आते-जाते लोगों को देखते।

सुचिन्ता शरबत का गिलास हाथ में लेकर सुशोभन के पीछे आकर खड़ी हो गई। बोली—क्या देख रहे हो?

सुशोभन चिन्तित भाव से बोले—देखो सुचिन्ता, मुझे लगता है, कहीं कोई गलती हो गई है।

—यहां कैसी गलती की बात कर रहे हो? मन में उठ रही भावना को दाब कर सुचिन्ता बोली—शरबत का समय हो चुका है, लो, पी लो।

—रुको! रख दो शरबत। अच्छा एक बात बताओ, उस दिन जो लोग आए थे वे हमारे अपने लोग थे न?

—हां! बिल्कुल तुम्हारे अपने लोग थे। तुम्हारे भाई और भतीजे तुम्हें देखने आए थे।

—तो फिर वे लोग चले क्यों गए? तुमने उन लोगों को जाने के लिए क्यों कहा?

—मैंने उन्हें जाने के लिए कहा था क्या?

—जाने के लिए नहीं कहा था, पर रहने के लिए भी तो नहीं कहा? वे हमारे अपने ही आदमी थे।

सुचिन्ता के मन में विद्रोह भड़क उठा। बोली—वे लोग भी तो तुम्हारे पास नहीं रहना चाहते। अगर इतने ही अपने आदमी थे तो—।

—यही तो मैं ठीक से नहीं समझ पा रहा हूं। अच्छा सुचिन्ता! यह मकान तुम्हारा है न? यहां वे लोग क्यों रहेंगे? उनके तो अपने मकान हैं। मुझे यही चिन्ता हो रही है। लगता है कहीं कोई भारी गलती हो गई है।

—तुम्हें इतना सोचने की जरूरत नहीं है। सोचने पर तुम्हें कष्ट होता है, तुम्हें मालूम है न? शरबत पी लो। अखबार पढ़कर सुनाती हूं। आज तो अखबार पढ़ा ही नहीं।

सुशोभन शरबत का गिलास दूर सरका कर बोले—रहने दो। अखबार नहीं चाहिए कष्ट होगा, इसलिए कुछ सोचूं भी नहीं? यह नहीं सोचना चाहिए कि गलती कहां हुई है?

—डाक्टर ने तुम्हें सोचने के लिए मना किया है।

—डाक्टर की बात मैं नहीं सुनूंगा। बस और कुछ?

सुशोभन के कुहासे से ढँके हुए दिमाग पर क्या सूर्य की किरण रोशनी पहुँचा रही थी—और इसलिए क्या वह चेतना की दुनिया में वापस आ रहे थे?



भंडारघर की खिड़की के पास खड़ी-खड़ी अशोका कोई चिट्ठी पढ़ रही थी। मायालता ने कमरे में घुसते ही, ओंठों पर व्यंग्य की हँसी और आँखों में जलन लिए पूछा—छोटी बहू! देवरजी की चिट्ठी आई है क्या?

अशोका चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते आँखें उठाकर बोली—हाँ।

—सुबह बड़े भाई के पास चिट्ठी तो आई थी। शाम को दुबारा चिट्ठी आई है? कुछ भी कह लो छोटी बहू, तुम लोग डुबकी लगाकर पानी पीने वालों में से हो। ऊपर से देखने से तो लगता है दोनों में पटती ही नहीं, पर आँख से ओझल होते ही विरह में पागल बन गया है। नए दूल्हे की तरह चार पन्ने की चिट्ठी? जरा सुनूँ तो क्या लिखा है?

अशोका ने धीरे से बड़ी जेठानी के आगे चिट्ठी बढ़ा दी।

मायालता भी हाथ फैलाकर बोली—अरे तुम्हारे पति-पत्नी का प्रेम-पत्र पढ़कर मैं क्या करूँगी? मैं तो सारांश जानना चाहती थी।

सारांश मैं खुद ही नहीं समझ पा रही हूँ।

—क्या कह रही हो, छोटी बहू? कोई काव्य लिखा है क्या?

—उसकी क्षमता हो तभी तो? अशोका मुस्कराकर बोली—लिखा है, तीन-चार दिनों के लिए सागर के लिए एक नर्स का इन्तजाम कर नीता कलकत्ता अपने पिता को देखने के लिए आएगी। नीता जब यहाँ से वापस जाएगी तो मुझे भी उसके साथ दिल्ली आने के लिए कहा है।

—इसका मतलब? छोटे देवरजी ने दामाद के घर रहना निश्चय किया है?

—नहीं, उस घर में नहीं, साथ वाले मकान में। सागरमय के चेम्बर के लिए भी एक आदमी की जरूरत है, नीता ने उनसे अनुरोध किया है—।

मायालता भौं सिकोड़कर बोली—चेम्बर ? क्यों वह अंधा डाक्टरी करेगा ?

—इन्होंने तो ऐसा ही लिखा है !

—तो फिर क्या ? तुम अब जाने की तैयारी में जुट जाओ। इसी-लिए तो कहा गया है कि दुनिया बड़ी बेईमान है।

मायालता अपने आँसू छुपाती हुई धम्-धम् आवाज करके वहाँ से चली गई।

आदमी का मन भी कितना विचित्र है ? मायालता ने हर पल जिन लोगों को बोझ समझा था, कितनी ही बार बड़बड़ाती हुई बोली थी—मरा हटे तो हाथ पैर फैलाकर बैठूं, आज उन्हीं लोगों के जाने की सम्भा-वना मात्र सुनकर उसकी आँखें भर आईं। ईर्ष्या या दुख, जो भी हो, मायालता अपने को संभाल नहीं पा रही थी।

पर मायालता को मुक्ति भी कहाँ थी ? उसके पति या पुत्र भी तो उससे सहानुभूति नहीं रखते थे।

सुविमल व्यंग्य से बोले—अच्छा ही हुआ। अब तुम हाथ-पैर फैलाकर सोओ बैठो न। बैंक में पैसे इकट्ठे करो।

मायालता के बेटों ने भी टिप्पणी की—चाची के जाने के नाम पर तुम्हें रोना आ रहा है ? बलिहारी है तुम्हारी माँ। समझ में नहीं आता कि कौन-सा तुम्हारा अभिनय सच्चा था ? अब तक का असन्तोष या आज का रोना ?

मायालता फिर दीवार को सुना-सुनाकर बोलने लगी—इसी को दुनिया कहते हैं। अब तक के करने-धरने पर एक मिनट में पानी फेर दिया। सब भूलकर दामाद के घर पड़े रहने में शर्म भी नहीं आती। ऐसे तो बड़ा मान दिखाते हैं, पर दामाद का नौकर बनने में सम्मान बना रहेगा ? और नीता नाम की उस लड़की को भी दाद देती हूँ। पागल बाप कहाँ किसके पास पड़ा रहा और लगी चाचा की खातिर करने। क्यों ? इसलिए कि चाचा से उसका मतलब सिद्ध होगा। ताऊ-चाचा को कभी ताऊ चाचा समझी नहीं, उनकी कभी परवाह नहीं की और अब ?—मैं होती तो ऐसी लड़की की छाया तक नहीं लांघती।

दीवार कभी कुछ कहती नहीं। उसका काम तो बस सुनना होता है। बातें वे ही करते हैं, जो हमेशा हल्के मिजाज के होते हैं।



कृष्णा ने चिट्ठी में लिखा—नीता दीदी, तुम इतनी अजीब तरह से निश्चिन्त बैठी हो। तुम्हारे कोई पिताजी हैं यह शायद भूल बैठी हो? और शायद यह भी भूल चुकी हो कि जिनके कंधे पर उन्हें छोड़ आई हो, उन महिला का भी एक समाज है, गृहस्थी है, बेटे हैं। अगर धीरे-धीरे वह असहिष्णु हो उठें तो क्या उन्हें तुम दोष दे सकोगी? सुना है तुम देश लौट आई हो। बाप के लिए कुछ क्यों नहीं सोच रही हो?

इन्द्रनील से छुपाकर कृष्णा यह चिट्ठी डाक में छोड़ आई। 'अगर सुमित्रा असहिष्णु हो उठें' यह एक तीर नीता के मन में चुभाने से वह चूकी नहीं।

अनुपम कुटीर में रहने की समस्या का वह इलाज नहीं पाई थी।

अपने बाप की अवहेलना से वह तंग आ चुकी थी। उनकी सारी सम्पत्ति कृष्णा की ही थी फिर भी जब तक वे जीवित थे तब तक नहीं, यह बात अपने बर्ताव से [illegible] कृष्णा के पिता हमेशा [illegible] देते थे।

कृष्णा की माँ के आक्षेप और दोषारोपण ने भी कृष्णा का वहाँ रहना असहनीय बना डाला।

उस दिन माँ और मौसी की अनुपम कुटीर की खबर की कहानी सुनने के बाद ही कृष्णा के दिमाग में नीता को चिट्ठी लिखने की बात आई थी।

और सच में, उन आदर्शों के बड़ी-बड़ी बातें, सन्तान, रिश्तेदार, [illegible], दामाद सबके रहते हुए भी सुमित्रा क्यों निराश्रय की तरह [illegible] रह रही थी? अगर इसी [illegible] से कृष्णा की [illegible] [illegible] [illegible] बुरा क्या था?

अब कृष्णा को लगता था इसी शादी के लिए उसको [illegible] [illegible] होना चाहिए था। सुमित्रा ने जितने ही [illegible]

कृष्णा का भी हो जाता। अब तक तो कृष्णा अच्छे खासे मकान, गाड़ी और बैंक में मोटी रकम के बीच पति के साथ आराम की जिन्दगी काटती। जी जाती।

कृष्णा सोचने लगी, प्रेम में पड़कर दुनिया में किसी को शादी नहीं करनी चाहिए। शादी के पहले थोड़ा बहुत प्रेम-नेम चलने तक तो ठीक है, पर उस कच्चे धागे पर लटकना पहले दर्जे की बेवकूफी है।

चिट्ठी भेजने के दूसरे ही दिन से उत्तर की प्रतीक्षा में कृष्णा दिन गिनने लगी।

नीना कृष्णा की चिट्ठी के जवाब में क्या-क्या लिखेगी, कृष्णा यह भी सोचने लगी। कृष्णा को नीना और उसके अंधे पति को देखने का मन भी कर रहा था। नीना ने यह शादी मजबूरी में की थी, या प्यार की कसौटी पर सच में वह इतनी खरी उतरी थी, एक बार दिल्ली जाकर नीना को देख आने की उसकी इच्छा हो रही थी। पर जाने की बात कहने की उसमें हिम्मत नहीं पड़ती।

इन्द्रनील को नीना के पास देखने का साहस कृष्णा में नहीं था। नीना से कृष्णा ईर्ष्या नहीं करती थी, पर उसे डर जरूर लगता था।



कृष्णा की चिट्ठी नीना के हाथ में तब पड़ी जब वह सागर को नर्स की देख-रेख में रखकर, चाचा को सब समझा-बुझाकर कलकत्ता आ रही थी।

इसलिए कृष्णा की चिट्ठी का जवाब देना नीना ने जरूरी नहीं समझा। सोचा आ तो रही ही हूँ। पर सुचिन्ता बुआ क्या वाकई थक गई हैं या फिर असहिष्णु हो चुकी हैं?

नीना ने क्या फिर गलत देखा था? गलत धारणा पर वह अब तक निश्चिन्त थी? क्या यह संभव था? या फिर यही स्वाभाविक था? नीना भी क्या इसी तरह थक जाएगी, असहिष्णु हो उठेगी? सागर का बोझ उसके लिए भार बन जाएगा? नीना यह सोचकर सिहर उठी। मन में बुदबुदाई, 'नहीं, नहीं। ऐसा नहीं हो सकता।'

□

मुचिन्ता ने टिकिया वाली दवाई की शीशी उँडेल दी, पर उसमें बस
ब एक ही टिकिया बची थी। दवाई आज ही मँगवानी पड़ेगी, क्योंकि
ड़ी जरूरी दवा थी।

मुशोभन धीरे-धीरे ठीक होते जा रहे थे। डा० पालित का कहना
ा, इन नई दवा ने चिकित्सा की दुनिया में हलचल मचा दी है। उन्होंने
नियमित रूप से दवा लेने की सलाह दी थी।

निरुपम को दवा लाने के लिए कहना पड़ेगा।

आजकल सुशोभन को डाक्टर के पास ले जाने की जरूरत नहीं पड़ती
ी, सिर्फ वहाँ रिपोर्ट पहुँचानी पड़ती थी और निरुपम यह जिम्मेदारी
ूरी तरह निभाता था। समय से दवा खरीदकर उसे सुशोभन की टेबल
र रख जाता।

पर सुचिन्ता जानती थी कि इस बार निरुपम दवा नहीं लाएगा, क्यों-
कि दवा खत्म होने का समय ही नहीं आया था। पर दवा खत्म इसलिए
ो गई थी क्योंकि सुशोभन ने कुछ टिकिया उस दिन गुस्से में फेंक दी थी।
हा था— दवा मैं नहीं खाऊँगा। दवा खिला-खिलाकर मुझे डाक्टर ने
ँगा ही बना दिया है। पहले मेरी कितनी खुशियाँ थीं, पर आजकल मन
में अजीब-सा कष्ट होता है। लगता है कहीं कोई भूल हुई है और मुझे पता
नहीं लग रहा है। उस डाक्टर की दवा मैं फेंक दूँगा—। कहकर उन्होंने
सच में फेंक दिया था। निरुपम को यह बात मालूम नहीं थी नहीं तो वह
दवा खरीदकर रख जाता। निरुपम कभी भी सुचिन्ता से आकर नहीं
पूछता था कि 'माँ, दवा खत्म हो गई है क्या?' कुछ बोले बिना ही निरुपम
स्पष्ट कर देता है कि माँ से बातें करना वह जरूरी नहीं समझता।
सुचिन्ता सोचने लगी दवा लाने के लिए उसे निरुपम को कहना पड़ेगा।

फिर सोचा, अगर दवा नहीं आई तो ? यह दवा ही तो सुशोभन को
भयानक पागलपन के अँधेरे में मुक्ति दिला रही थी। सुचिन्ता तो कुछ
भी नहीं थी। सुचिन्ता का मान सम्मान जीवन, और जीवन की शान्ति कुछ
भी नहीं थी ? अपने को खत्म कर जो फसल सुचिन्ता ने उगाई थी, उसे
तो कोई दूसरा अपने घर ले जाने वाला था। सुचिन्ता क्या फिर सारी

फनन्द बर्बाद कर डाले या सर झुकाकर निरुपम से जाकर बोले—दवा ला दो।

सुशोभन की स्नायु ग्रन्थियाँ अगर फिर से बिगड़ जाएँ तो बिगड़ें। सुचिन्ता निष्ठुर उल्लास से दुबारा आजमाएगी कि उसकी दुरूह साधना वाकई मूल्य रखती है या नहीं। सुचिन्ता दवा की यह आखिरी टिकिया भी फेंक देगी। वह देखना चाहती थी कि इस दवा का सुशोभन पर कितना असर हो रहा था।

खुली शीशी को खिड़की से वह बाहर फेंकने ही जा रही थी कि एकाएक उसका शरीर और मन, सब ठंडा पड़ गया। सुचिन्ता शान्त शिथिल हो गई। अपने को छिः छिः कर सोचा—'पागल के साथ रहकर क्या मैं भी पागल बन गई हूँ।'

निरंजन और इन्द्रनील के कमरे आजकल वन्द ही रहते थे। सुबल के जाने के बाद नया नौकर दिन में एक बार झाड़ू-पोंछा करके कमरों को वन्द कर देता था। वन्द दो कमरों को पार कर सुचिन्ता निरुपम के कमरे में पहुँची। दरवाजा भिड़ा हुआ था। शायद यह दरवाजा भी किसी दिन बाकी दोनों दरवाजों की तरह वन्द हो जाएगा।

सुचिन्ता दरवाजा खोलकर अन्दर आई। बोली—निरु, कमरे में हो न? सुचिन्ता की आवाज शर्म से थरथरा रही थी। पर उपाय भी क्या था।

सुचिन्ता को लगा अगर वह थोड़ी देर बैठ पाती तो ठीक रहता। पर निरुपम क्या बैठने के लिए कहेगा? कभी तो कहता नहीं है। पर अपने ही लड़के के कमरे में अगर वह खुद ही बैठ जाए, तो इसमें हर्ज ही क्या है।

मन में शक्ति जुटाकर सुचिन्ता बोली—दवा खत्म हो गई है। लानी पड़ेगी।

निरुपम ने कहा—अच्छा। उसने यह भी नहीं पूछा—इतनी जल्दी दवा खत्म कैसे हो गई?

सुचिन्ता आगे क्या कहती? सारा जीवन बात न कर कर सुचिन्ता हाँफ गई थी। बचपन में बड़ी बातूनी थी, पर उसने अपनी सारी बातों

पर मुहर लगा ली थी अपने भाग्य और जीवन के ऊपर दुख के कारण।

आज सुचिन्ता को लगा, मेरे स्वाभिमान और मेरे दुख को किसने कीमत दी? किसने उसे समझा?

इसलिए सुचिन्ता ने मन मे तय किया कि आज वह प्रगल्भ होकर बोलेगी। बोली—दवा खत्म होने पर दूसरी बार दवा लाते समय डाक्टर को रिपोर्ट देनी पड़ती है क्या?

—रिपोर्ट हर सप्ताह देनी पडती है। निरुपम ने किताब पर आँखें गड़ाकर जवाब दिया।

– पर इस बारे मे तुम कभी कुछ पूछते तो नही?

—इसमें पूछने का क्या है? सब कुछ तो दीखता ही है।

सुचिन्ता अब और क्या कहे? फिर भी बोली—दवा इतनी जल्द खत्म होने की बात तो नही थी। क्यो खत्म हो गई, नहीं पूछोगे?

—इतना हिसाब रखने की फुर्सत किसके पास है?

— यह बात तुमने ठीक कही है। तुम लोगों का समय बहुत कीमती है।

सुचिन्ता बेटे का कीमती समय बर्बाद न कर चली आई। सुचिन्ता की बातें कौन सुनेगा?

पर अगर कोई सुनना चाहे? नही, नही। फिर तो वह अपराध मे शामिल किया जाएगा।

निन्दनीय बात होगी।



यह कमरा, और वह कमरा, इन दोनो कमरो मे आदमियो के चलने फिरने की आवाज गूंजती है। इसके बाद शायद ऐसा भी नही रहेगा। अनुपम कुटीर स्तब्ध हो जाएगा।

सुचिन्ता दूसरे कमरे में जाकर अखबार लेकर पढने बैठी।

—तुम इतनी पास क्यो बैठ रही हो सुचिन्ता? यह तो नियम नही है। सुशोभन ने गम्भीर भाव से जज की तरह अपनी राय दी।

सुचिन्ता के हाथ से अखबार गिर गया। आहत विस्मय से पागल की

पर सभी, यहाँ तक सुचिन्ता भी तो इसी दिन की राह देख रही थी। इसी की साधना में सुचिन्ता ने अपना सारा कुछ उसर्ग कर दिया था। इसी साधना के हवनकुंड में वह जीवन के सब कुछ की आहुति दे बैठी थी।

तो फिर सुचिन्ता इतनी दुखी क्यों हो रही थी ?

साधना में सिद्धि लाभ के बाद क्या कोई सिद्धि की मूर्ति को देखकर स्तब्ध हो जाता है ?

सुचिन्ता क्या सचमुच अजीब जीव थी?



सुचिन्ता के अलावा भी विचित्र जीव इस दुनिया में हैं नहीं तो अशोका यह क्यों कहती कि मैं दिल्ली नहीं जाऊँगी। जिस गृहस्थी में हर पल अशोका की साँस घुट जाती थी, वहाँ से मुक्ति के लिए वह छटपटा उठती थी, फिर भी वह क्यों नहीं जाना चाहती थी ?

सुविमल आकर बोले—दो चार दिन घूम-फिर आओ, छोटी बहू। कभी तो कहीं गई नहीं।

अशोका धीरे से बोली—जब मँझले देवरजी ठीक थे, सब कुछ सही था, उस समय जा पाती तो कुछ और बात थी।

सुविमल बोले—पर लगता है मोहन भी वहीं रहना चाहता है। कलकत्ता में तो उसका कुछ हुआ भी नहीं।

—कहीं भी कुछ होगा नहीं, बड़े भैया। कहकर अशोका सर झुका थोड़ा मुस्कराई।

—मेरे भाई को तुम खूब मजाक उड़ाया करती हो, पर हो सकता कि अब उसके मन में कुछ करने की इच्छा जगी हो।

—अगर यह बात है तो बड़ी खुशी की बात है।

सुविमल बोले—मैं सोच रहा था, अगर तुम लोग वहाँ रहो तो मोहन को वहाँ ले जाना कोई मुश्किल नहीं होगा।

—पर वे तो यहाँ अच्छी तरह से ही हैं।

—हाँ हैं। पर हर अच्छा रहना दुनिया की न्याय और न



आश्चर्य की बात है इतनी आँधी और तूफान झेलने के बाद भी नीना के चेहरे का लावण्य पहले जैसा ही था। हावड़ा स्टेशन पर नीना से मिलने पर कृष्णा को ऐसा ही लगा।

नीना दिल्ली से हावड़ा आई थी और कृष्णा इन्द्रनील को गाड़ी में बैठाकर लौट रही थी। नीना हड़बड़ाकर प्लेटफार्म से निकल रही थी, कृष्णा शिथिल भाव से जा रही थी। दोनों आमने-सामने पड़ गईं।

नीना बोली—अरे तुम?

कृष्णा बोली—अरे आप?

नीना ने बताया कि उसे परसों ही वापस लौट जाना है।

कृष्णा ने कहा—इन्द्रनील को वर्दवान के किसी कालेज में नौकरी मिल गई है इसलिए वह वहीं गया है। तनख्वाह वैसे थोड़ी है। माँ ने और मैंने इतना मना किया फिर भी वह चला गया।

—क्यों, मना क्यों किया? नीना बोली। पहले ही मोटी तनख्वाह मिलेगी ऐसी क्या बात है? पर शिक्षा की लाइन तो है न।

कृष्णा ओंठ उल्टाकर बोली—शिक्षा की लाइन? पर दो जनों को अलग-अलग रहने की क्या जरूरत है? कोशिश करने पर क्या शिक्षा की लाइन में कलकत्ता में कुछ नहीं हो सकता था?

—हो क्यों नहीं सकता था? पर कलकत्ता से बाहर कोई कुछ नहीं करेगा, ऐसा सोचने में कौन-सी बुद्धिमानी है। और दो जनें अलग-अलग रहने की बात क्यों उठ रही है? तुम भी वहीं नौकरी कर रही हो क्या?

—मेरा दिमाग खराब थोड़े ही है? मैं गुलामी के चक्कर में नहीं पड़ती। मैं वर्दवान में जाकर नहीं रह सकती।

—तुम नहीं रह सकती?

—ऊँ हूँ। मुझे मार-काट डालने पर भी नहीं। [illegible] अच्छा [illegible] शहर नहीं ढूंढ सका। मुझे इतना गुस्सा आया था सुनकर। सोचा था स्टेशन भी नहीं जाऊँगी, पर [illegible] रखनी चाहिए, यही सोचकर चली आई। मेरे पिताजी ने कहा था कि वे अपने दोस्त को कहकर कोई अच्छी नौकरी दिला देंगे, पर महानुभाव ने कहा, 'वह काम मुझे भार

नहीं।' पिताजी ने यह भी कहा कि 'अगर बाहर के देश में जाना चाहते हो तो वहाँ भी भेज दूंगा। मैं तो खुशी से झूम उठी थी। मेरी एक-दो साथी शादी के बाद विलायत-अमरीका चली गई। पर महानुभाव ने कहा, 'आपके पैसे से नाम कमा लाऊँ, इसके लिए मेरा मन नहीं मान रहा है।' ताज्जुब है, लेकिन उसका मन भी कहाँ जाकर बैठा तो इस सड़ी-सी नौकरी के पीछे। क्या कहूँ घर में मेरी क्या स्थिति है। उसकी बुद्धि पर सभी छिः छिः कर रहे हैं। इसके अलावा शादी के बाद भी बाप के घर पड़ी हुई हूँ।

कृष्णा इतना कहकर एकाएक चुप हो गई। उसे लगा सामने ज्यादा बोलना ठीक नहीं।

नीता ने अधूरी बात को पकड़ लिया। बोली—बाप के घर पड़ी हो मतलब ?

—हां, कुछ ऐसा ही है। आपको मेरी चिट्ठी मिली थी ?

—हां, मिली थी। पर उससे मैं पूरी बात समझ नहीं सकी। अब बात कुछ-कुछ समझ में आ रही है।

—फिर मुझे अधिक कहने की जरूरत नहीं है।

—मैंने सुना है कि पिताजी की हालत करीब-करीब ठीक हो गई है। नीता बोली। क्या पिताजी लोगों के प्रति असहिष्णु हो रहे हैं ?

कृष्णा अपनी आदत के मुताबिक झल्ला उठी। बोली—वो हो रहे हैं या नहीं, यह देखने का मौका मुझे नहीं मिला है नीता दीदी, पर असहिष्णु इतना पक्ष तो हो ही सकता है ? और यह बात आप समझती नहीं थीं, ऐसी बात भी नहीं है।

बातचीत गाड़ी में चलते-चलते हो रही थी। कृष्णा ने अपनी गाड़ी में नीता को बैठा लिया था। कृष्णा के पिता के पास दो गाड़ियाँ थीं।

नीता बोली—देखूं, क्या हाल है ?

—हाल चाहे जो भी हो, आप कुछ नहीं कर सकतीं।

—मतलब ?

—आप पहुंचकर खुद ही समझ लीजिए।

नीता चिन्ता में पड़ गई। सुशोभन क्या ज्यादा पागलपन कर रहे थे ? निरंजन क्या अब तक गलत खबर देता रहा था ?

सुचित्रा क्या वहाँ दिक्कत से समय काट रही थी ?

नीना के स्वार्थ ने उस शान्त, भद्र, निर्लिप्त महिला के जीवन की सारी शान्ति छीन ली थी ?

नीना क्या अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही अनुपम कुटीर में आई थी ?

सुशोभन पागल थे, और अपने पागलपन में ही उन्होंने अपने आपको व्यक्त कर दिया था। पर जिनके मन में सब कुछ अव्यक्त था ? क्या उस के मन का भी आजीवन का संचित ऐश्वर्य व्यक्त नहीं हो उठा था।

पिताजी, आप मुझे भूले तो नहीं हैं न ? अगर भूल गए तो क्या उस दुख को मैं सह पाऊँगी ?

कृष्णा ने अनुपम कुटीर के दरवाजे पर नीना को उतार दिया। नीना अकेले ही पिता के सामने जाकर खड़ी हो गई।

लड़की को देखते ही सुशोभन ने उसे छाती से लगा लिया। सर पर हाथ रखकर बोले—बेटी नीना, तू आ गई है ? अब तक क्यों नहीं आई थी ?

फिर कुछ सोचकर बोले—सागर नाम के उस लड़के को नहीं ले आई ? उसके साथ तो तेरी शादी हो गई थी न ? लोगों ने तो मुझसे यही कहा था। उसे क्यों नहीं साथ ले आई ?

नीना सोच रही थी, सुशोभन अभी चिल्लाकर बोलेंगे—सुचित्रा ! क्या फालतू कामों में लगी हो। देखो तो कौन आया है ?

पर सुशोभन चिल्लाए नहीं।

सुशोभन अब जान गए थे कि इस तरह से चिल्लाना उचित नहीं है। सुशोभन आजकल हर समय सोचते थे।

नीना ने ही पूछा—सुचित्रा बुआ कहाँ है ?

सुशोभन चिन्तित भाव से बोले—पता नहीं कहाँ गई ?

—आप नहीं जानते पिताजी ?

—मैं ? मैं कैसे जान सकता हूँ ? वह क्या मुझे कहकर गई है ?

—अच्छा पिताजी, बात क्या है ? पूरा मकान बड़ा खाली-खाली-सा लग रहा है। एक नया नौकर देख रही हूँ। बाकी लोग गए कहाँ हैं ?

सुचिन्ता मृदु ढंग से प्रतिवाद कर बोली—पागल लड़की ? मैंने क्या किया है ? थोड़ी-सी सेवा, यह तो कोई मामूली नर्स भी कर लेती।

□

—परसों तुम दिल्ली जा रही हो नीता ? सुशोभन बोले—मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगा।

—आप जाएँगे ?

नीता ने चारों तरफ नजर घुमाई। डूबती धूप की धुंधली रोशनी में मोढ़े पर बैठकर सुचिन्ता कुछ सी रही थी। सर पर पल्लू था। वह स्थिर मुद्रा में बैठी थी।

—आप दिल्ली इतनी जल्दी कैसे जा सकते हैं पिताजी ?

सुशोभन के हाथ में एक किताब थी। पहले से आखिरी पन्ने तक वे उसे उलटते-पलटते रहे। यह उनकी एक नई आदत बन गई थी। अभी पढ़ने लायक उनका मन स्थिर नहीं हुआ था।

नीता की बात सुनकर बोले—जल्दी का क्या माने हैं नीता ?

—बीच में सिर्फ एक ही दिन तो रह गया है। सामान-वामान भी जंचाना है।

—मेरा क्या सामान है ? सब हो जाएगा। तुम अगर मुझे साथ नहीं ले गई तो कौन ले जाएगा ? मैं क्या पता लगा सकूँगा कि दिल्ली किस तरफ है ?

—तो फिर अभी आपका यहाँ से जाना ठीक नहीं है पिताजी ! बाद में आकर मैं आपको ले जाऊँगी।

—नहीं बाद में नहीं। मैं अभी जाऊँगा।

नीता ने देखा, सुचिन्ता एक मन से सिलाई किए जा रही थी मानो वह कुछ सुन ही नहीं रही थी।

नीता थोड़ी ऊँची आवाज में बोली—आप अभी जाएँगे तो सुचिन्ता बुआ नाराज होंगी। है न बुआ ?

सुचिन्ता सहज भाव से बोली—नहीं। नाराज क्यों हूँगी ?

सुशोभन बोले—हाँ, खामखा सुचिन्ता क्यों नाराज होने लगी ? यह

सुशोभन व्यग्र होकर बोले—तुम अकेली नहीं जाओगी नीना ! मैं भी साथ चलूँगा।

—आप मान को कहाँ छोड़िए ? मैं कल दिन में ले चलूँगी।

—नहीं। मैं इसी वक्त जाऊँगा। मैं मान को देखे नहीं रह सकता ? तू क्या जंगल होकर आएगी ? मान को तू जा सकती है और मैं नहीं ?

नीना हार मानकर बोली—ठीक है, कल हम दोनों ही चलेंगे बस।

—अभी जा रही थी, पर नहीं हो गया। बड़े आश्चर्य की बात है। तुम लोग यह कह रही थीं कि मेरा दिमाग खराब हो गया है, पर अब देखता हूँ कि दिमाग तो तुम सबका खराब है।

नीना क्या सुशोभन के स्वस्थ दिमाग को सहन नहीं कर पा रही थी ? बाप की अर्थहीन बातें सुनकर ही उसे चैन मिलता था ? बोली—आपसे ऐसा किसने कहा है ? सुचित्रा बुआ ने ?

—यहाँ सुचित्रा की बात नहीं हो रही है। तुम्हारी बात हो रही है।

◘

—बड़े भैया ! पिताजी तो नए किस्म का पागलपन कर रहे हैं। निरुपम के आने पर नीना ने पहली बात यही कही।

—पागलपन ? निरुपम को लगा नाव किनारे आकर डूब गई। सुशोभन क्या लड़की को देखकर खुशी से अपने होश खो बैठे थे ? फिर दूसरे ही क्षण निरुपम को लगा—नीना और भी कितनी सुन्दर हो गई है। खैर, मुझे यह नहीं देखना चाहिए। बड़ा भाई बनने के लिए बड़ा बनना पड़ता है।

पर नीना का पति क्या सच में अंधा हो गया था ? नीना का सुन्दर रूप, वह देख भी नहीं सकेगा ?

निरुपम बोला—कब आई ?

—बहुत देर से आई हुई हूँ। आप कहाँ थे सारे दिन ?

नेशनल लायब्रेरी में, फिर यहाँ वहाँ। तुम अकेली आई हो ?

—दिल्ली से तो अकेली आई, पर स्टेशन से छोटे चाचा जी पहली बार

में घर तक छोड़ गई।

—छोटे बाबू की पत्नी ?

—कृष्णा ! इन्द्र की बीवी। नीता हँस पड़ी। फिर गम्भीर होकर बोली—इन्द्रनील बर्दवान में किसी कालेज में नौकरी के लिए गया है। उसकी पत्नी उसे स्टेशन छोड़ने के लिए गई थी, आपको मालूम है ?
निरुपम ने सर हिलाकर 'ना' कहा।

—निरंजन भी चला गया है। यह सब क्यों हुआ बताइए तो ? मैंने तो ऐसा सोचा नहीं था।

निरुपम चुप रहा।

नीता उदास होकर बोली—अच्छा बड़े भैया, आदमी क्या सचमुच इतना दुर्बल जीव है ? अगर वह चाहे तो क्या उदार नहीं बन सकता ? महान नहीं बन सकता, सुन्दर नहीं हो सकता ? दूसरों के प्रति ममता नहीं रख सकता ? लेकिन शायद नहीं ही हो सकता ? अगर ऐसा बन सकता तो जीवन कितना आसान हो जाता ? पहले मुझे क्या लगता था जानते हैं ? आदमी अगर चाहे तो वह यह सब कुछ कर सकता है। पर अब देखती हूँ कि वह ऐसा नहीं कर सकता। थोड़ी-सी इच्छा के बदले, हम संकीर्ण और निष्ठुर होना पसन्द करते हैं। कंजूसी करते हैं। गन्दे हो उठते हैं। और इस तरह से जीवन को जटिल बना देते हैं।

निरुपम बोला—एक दो जनों की इच्छा से क्या हो सकता है ? एक साथ सारी दुनिया के लोग यदि महापुरुष बन जाएँ तभी तो ?

नीता बोली—यह तो आपने मजाक की बात कह दी। अगर हर आदमी अपने को अच्छा बनाना चाहे तो क्या कुछ फर्क नहीं पड़ेगा ? अपना भला तो हम सब समझते हैं। हम अपने बच्चे को अच्छी शिक्षा देना चाहते हैं, लड़की की अच्छी शादी करना चाहते हैं, घर अच्छी तरह सँवारना चाहते हैं, यह सब तो हम चाहते ही हैं। यह चाहते समय हम दुनिया की बात नहीं सोचते। पर महान बनने के सिद्धान्त को भी तो अपने ऊपर लागू किया जा सकता है ?

—वो तो तुम कर ही रही हो। तुम्हारा परिणाम देखकर कोई भी प्रेरणा पा सकता है। पर तुम नए पागलपन की बात कर रही थी ?

के बाहर ले देख पाएगी ? उसका शरीर और मन विश्राम माँग रहा था। वह किसी एकान्त कोने में अपने को खोलकर रख देना चाहती थी। बाहरी आवरण हटाकर, मुनाफे-घाटे, लेन-देन, भाग्य और भगवान् सब कुछ की चिन्ता छोड़ कर मृत्यु की तरह मधुर-मनोहर आराम की सुचित्रा को बड़ी जरूरत थी।

पर अभी तो काम बाकी था। जो गाड़ी कभी अनुपम कुटीर के दर-वाजे पर आकर रुकी थी उसे अनुपम कुटीर के दरवाजे से हमेशा के लिए विदा करना था। गाड़ी के पहिए के दाग तब मिट जाने पर ही सुचित्रा को छुट्टी मिल सकती थी।

उन पहियों के दाग कहाँ गहरी जगह अपनी छाप छोड़ गए थे या नहीं, इसका हिसाब लगाना भी हास्यास्पद-सा था। दुनिया तो यौवन की है, नए लोगों की है। जीर्ण बुढ़ापा यदि पृथ्वी के जीवन की सभा के किसी कोने में आकर खड़ा होकर यह कहे कि इस आनन्द के यज्ञ में 'मुझे भी निमंत्रण है' तो सभी एक साथ छिः छिः कर उठेंगे, हँस पड़ेंगे। कहेंगे, कितना लोभी है, कितना ओछा है ? मालूम नहीं, दुनिया में विस्मृति का एक कमरा है। तुम वहीं जाकर आश्रय लो, वहीं तुम्हारी सही जगह है। हम तुम्हें भूलना चाहते हैं। तुम अगर सामने आकर खड़े होते हो तो यौवन-वाद्य का छन्द बिगड़ जाता है।

सुचित्रा मन में सोची—ऐसा ही होगा। मेरे लिए विस्मृति का अँधेरा ही सही। दुनिया मुझे भूल जाए। मुझे छुट्टी मिल जाएगी। जीवन के यज्ञ के हवन की आग में मैंने बड़ा आहुति दी है, वह लौटकर मैं छोटी नहीं बनूँगी। हवन के भस्म का टीका मेरे ललाट के माथे में रहा।

कुछ दिन से सुशोभन के प्रति एक मूक दुःख से उसका मन भारी-भारी था, यह सोचकर सुचित्रा लज्जित हुई। मन ही मन उसने प्रार्थना की, 'हे भगवान्, सुशोभन स्वस्थ, सहज और स्वाभाविक बन जाए। उसके रिश्ते-दारों के घर लौट जाए। अन्तिम समय तक मैं सब कुछ सहकर उज्ज्वल हो रहूँ, यही मेरी प्रार्थना है।'

पर सही क्या था ? सुचित्रा क्या निश्चित रूप से जानती थी ? मन में किसी कोने में जब अवसर था वहाँ देखने की सुचित्रा में हिम्मत नहीं थी।

उदास होकर सोच रहा था, सान्निध्य की धुन की मलिनता में जिस दाना को ढूँढ़े भी नहीं मिलता, विदा के मुहूर्त में वह दाना खुद सामने आकर खड़ी हो जाती है। उस समय सारा मन आतुर हो उठता है—हाय, हाय, मैं थोड़ा और अच्छा बर्ताव करता तो क्या बिगड़ता ?

बहुत-बहुत दूर बैठे अनुपम कुटीर का मँझला लड़का निरंजन भी अपनी दक्षिण भारतीय नई दुल्हन को गोद में निश्चिन्त सुलाकर देखकर सोच रहा था—यह मैंने क्या किया ? सच में इसकी क्या जरूरत थी ? दुनिया अपनी गति से चले, मुझे तो असहिष्णु नहीं होना चाहिए था। मैंने अपना राग बिगाड़ लिया, इससे मुझे क्या फायदा हुआ ?

अनुपम कुटीर का छोटा बेटा सब भी सो रहा था। उसे काम की आदत नहीं थी। बस हारा हुआ अपने छोटे से बिस्तर पर सो रहा था। काम की थकावट के बोझ कभी यह भी सुखी बनने वाला था।

पर इन सबसे क्या अनुपम कुटीर का जीवन बदलने वाला था? बाकी जीवन भी तो मूल्य-हीनता का बोझ ढोकर ही उसे काटना था। अब से जीवन और मृत्यु में कौन फर्क ही क्या रहने वाला था ?

फिर रात अनुपम कुटीर के बीच के हिस्से में एक भयंकर आँधी आई और फिर धीरे-धीरे अनुपम कुटीर फिर शान्त और बेरंग हो जाने वाला था।

सुमित्रा सोच रही थी, सुमित्रा नाम की कभी कोई थी
भी लोग धीरे-धीरे भूल जाएँगे। लोग उदासीन हो
जाते हैं। वे जानना भी नहीं चाहेंगे कि इस साधारण
रामें सर्वांग हुआ करती थी, कि आँसुओं से
आता-जाता किसी से पूछेगा, 'उस पुराने मकान में कौन
उत्तर मिलेगा—क्या पता ? एक विधवा बुढ़िया र
रहती है।

आज रात स्वयं सुशोभन सोए नहीं। रात भर
रहे। वह अपना अच्छा-बुरा समझने की कोशिश कर रहे थे,
सोच रहे थे—सुमित्रा में बुद्धि की कमी है। सोच क्या
सोचती नहीं। मेरे पास बैठकर हँस-हँस करती है,

□

सुशोभन खुशी-खुशी लौट आए। आते ही चिल्ला-चिल्लाकर बोले—सुचिन्ता, सब ठीक कर आया! टिकट का इन्तजाम भी कर आया। नीना ने सोचा था कि मुझे दिल्ली नहीं ले जाएगी। मैं उसका मतलब समझ गया। इसीलिए तो उस घर में गया था। वहाँ मेरे बड़े भैया हैं। वे ही सब कर देंगे। छोटी बहू मेरी देखभाल करेगी। क्या बात है सुचिन्ता? तुम चुप क्यों हो? और कौन-कौन मेरे साथ जाएगा, पूछोगी नहीं?

—कब पूछूं बोलो? रेलगाड़ी की तरह तो बोलते जा रहे हो?

—रेलगाड़ी? सच में कितने दिनों से रेलगाड़ी पर नहीं चढ़ा हूं। स्टेशन, प्लेटफार्म, भीड़-भाड़, सोचकर ही मजा आ रहा है।

सुचिन्ता बोली—तुम्हारे साथ और कौन-कौन जा रहा है?

—मेंडो और गुंडा, और उनकी माँ, हमारी लक्ष्मी जैसी छोटी बहू।

सुचिन्ता नीना की तरफ कौतुक से देखकर बोली—अगर मैं तुम्हें नहीं जाने दूं तो?

—जाने नहीं दोगी? तुम मुझे जाने नहीं दोगी?

—सोच रही हूं, तुम्हें रोक लूं।

सुशोभन भारी आवाज में बोले—बचकानी बात मत करो। और फिर धीरे से अपने कमरे में चले गए।

दूसरे ही क्षण सुचिन्ता हँसकर बोली—नहीं बाबा, सिर-फिरे को नाराज करना ठीक नहीं है। नीना, चलो खाना खा लो। रात काफी हो गई है।

सुशोभन ने भी सिकोड़ लिए। बोले—सुचिन्ता, इतना हँस क्यों रही है, तुम कब इतना हँसती थी?

और फिर जब रात गहरी हो आई, सब लोग सो गए तो अनुपम कुटीर किसी के जागने की साँसों से मर्मरित हो उठा।

अनुपम कुटीर के बड़े लड़के ने विस्मय से सोचा, असहनीय हालत तो अब सामान्य होने जा रही है, फिर भी मेरा मन हल्का क्यों नहीं हो पा रहा है? निरुपम को लगा असहनीय अवस्था के साथ-साथ मानो और भी बहुत कुछ चला जा रहा था। कहीं कोई पुल टूट रहा था। निरुपम

उदार होकर सोच रहा था, सान्निध्य की धूल की मलिनता में जिस क्षमा को ढूंढे भी नहीं मिलता, विदा के मुहूर्त में वह क्षमा खुद सामने आकर खड़ी हो जाती है। उस समय सारा मन आतुर हो उठता है—हाय, हाय, मैं थोड़ा और अच्छा बर्ताव करता तो क्या बिगड़ता ?

दहन-दहन दूर बैठे अनुपम कुटीर का मँझला लड़का निरंजन भी अपनी दक्षिण भारतीय नई दुल्हन का नींद में निश्चिन्त मुखड़ा देखकर सोच रहा था—यह मैंने क्या किया ? सच में इसकी क्या जरूरत थी ? दुनिया अपनी गति से चले, मुझे तो असहिष्णु नहीं होना चाहिए था। मैंने अपना राग बिगाड़ लिया, इससे मुझे क्या फायदा हुआ ?

अनुपम कुटीर का छोटा बेटा तब भी सो रहा था। उसे काम की आदत नहीं थी। थका हारा दुखनील अपने छोटे से बिस्तर पर सो रहा था। काम की थकावट के बीच कभी वह भी सुखी बनने वाला था।

पर इन सबसे क्या अनुपम कुटीर का जीवन बदलने वाला था? बाकी जीवन भी तो मूल्य-हीनता का बोझ ढोकर ही इसे काटना था। अब से जीवन और मृत्यु के बीच फर्क ही क्या रहने वाला था ?

फिर शान्त अनुपम कुटीर के बीच के दिनों में एक भयंकर आँधी आई और फिर धीरे-धीरे अनुपम कुटीर फिर शान्त और बेरंग हो जाने वाला था।

सुचित्रा सोच रही थी, सुचित्रा नाम की कभी कोई थी, यह बात भी लोग धीरे-धीरे भूल जाएँगे। लोग उदासीन होकर यहाँ से गुजर जाएँगे। वे जानना भी नहीं चाहेंगे कि इस साधारण से मकान में कभी सारी मर्यादित हुआ करती थी, दिन आँसुओं से स्तब्ध हो जाते थे। कोई आता-जाता किसी से पूछेगा, 'उस पुराने मकान में कौन रहता ?'

उत्तर मिलेगा—क्या पता ? एक विधवा बुढ़िया कभी-कभी दिखाई पड़ती है।

आज रात स्वस्थ सुशोभन सोए नहीं। रात भर चहल कदमी करते रहे। वह अपना अच्छा-बुरा समझने की कोशिश कर रहे थे। इसलिए वे सोच रहे थे—सुचित्रा में बुद्धि की कमी है। लोग क्या कहेंगे, यह वह सोचती नहीं। मेरे पास बैठकर हँस-हँसकर बातें करती है, कहती है 'मुझे

जाने नहीं देगी।' मुझे उसे मना करना पड़ेगा। उसे कहना पड़ेगा—मुझे भी तुम्हारे पास बैठने की इच्छा होती है, तुम्हारे हाथ पर हाथ रखने का दिल करता है, पर इच्छा होने से ही तो सब कुछ नहीं होता न ? समझना पड़ता है कि ऐसा करना उचित नहीं होगा।

नीता भी जागकर सोच रही थी। कल्पना में सागर के सोए हुए चेहरे को देखती हुई कह रही थी—तुम मेरी आँखों से देखना। जीवन के सारे कर्तव्यों को पूरा कर मैं हर पल अपनी आँखें तुम्हें दे तो सकूँगी न ?

फिर एकाएक उसकी नजर सुशोभन पर पड़ी तो वह उठ गई। पूछा—पिताजी, पानी पीएँगे ?

—नहीं।

—नींद नहीं आ रही है, पिताजी ?

—आ जाएगी।

—नींद नहीं आ रही है तो आइए हम बातें करते हैं।

—हम माने क्या नीता ?

—क्यों ? हम, आप और सुचिन्ता बुआ ? बुआ को बुलाऊँ ? सुशोभन डपट कर बोले—पहले तो तुम इतनी असभ्य नहीं थी नीता !

गप-शप करने का प्रोग्राम जमा नहीं। रात अपने समय से खत्म हो गई।

सुचिन्ता किसी काम से दरवाजे के सामने से जा रही थी। उसने देखा, सुशोभन सारे कपड़े-लत्ते फैला कर बक्सा खोलकर चुपचाप घबराए हुए से बैठे हैं।

सुचिन्ता बोली—क्या हो रहा है ?

—क्यों ? बक्सा जँचा रहा हूँ।

—इतनी देर से जँचा रहे हो फिर भी बक्सा जँचा नहीं, छोड़ो मैं जँचा देती हूँ।

सुशोभन पलंग पर बैठते हुए बोले—इसमें हँसने की कौन-सी बात है ?

—नहीं हँसू ?

—मैं जा रहा हूँ और तुम हँस रही हो ? तुम्हें दुख नहीं हो रहा है ?

सुचित्रा स्थिर गम्भीर भाव से बोली—तुम्हीं ने तो कहा, 'हम लोग बड़े हो गए हैं, हमें किसी बात के लिए दुख नहीं करना चाहिए। हमारे लिए ऐसा करना उचित नहीं है।'

—तुम मेरी बात समझीं नहीं सुचित्रा ! मन उदास होने की बात कहनी नहीं चाहिए, पर तुम हँस कैसे सकती हो ?

—क्यों मेरी हँसी तुम्हें अच्छी नहीं लगती है ?

सुशोभन थोड़ा नजदीक आकर व्याकुल होकर बोले—बहुत अच्छी लगती है, पर मेरे जाने के दिन तुम्हारा हँसना अच्छा नहीं लगता।

—तो फिर क्यों जा रहे हो ?

—क्यों जा रहा हूँ ? इसीलिए तो कहता हूँ, तुम में बुद्धि थोड़ी है। जाना है, इसीलिए तो जा रहा हूँ। मेरे मन में क्या कष्ट नहीं हो रहा है, पर क्या किया जाए ? समाज है, सभ्यता है, और कष्ट भी है, रहेगा भी।

सुचित्रा फैले हुए किसी कपड़े को समेटती हुई बोली—मुझे कोई कष्ट नहीं हो रहा है।

सुशोभन सामान को बाँधते हुए चलते हुए बोले—यह कहकर तुम मुझे ठग नहीं सकती। मैं क्या तुम्हें जानता नहीं हूँ ? मुझे मालूम है, मेरे जाने के बाद तुम रोओगी ?

—नहीं, नहीं। मैं कुछ नहीं करूँगी।

नीना तैयार होकर आकर बोली—पिताजी, [illegible] बार डाक्टर [illegible] के यहाँ जाना है।

इसके बाद के कई घंटे दौड़-धूप और काम-काज में बीत गए। डाक्टर के यहाँ से आकर वे लोग कुछ खरीदारी करने के लिए निकल पड़े। सुचित्रा ने सुशोभन का सामान बँधवा दिया। इस बीच उस घर की छोटी बहू अशोका भी आ पहुँची।

निरुपम इन लोगों को स्टेशन छोड़ आने वाला था।

गेंडो, गुड्डा पहले ही गाड़ी में जाकर बैठ गए थे। जाते में [illegible] अशोका बोली—आप भी चलिए न दीदी ?

—मैं ? स्टेशन ? क्या पागल हो ? अभी [illegible]।

—काम ? इस वक्त आप काम की बात सोच रही हैं ? [illegible]।

निरुपम स्थिति देखकर गाड़ी से उतर पड़ा। तीखी आवाज में बोला—कैसी नादानी कर रहे हैं, जाने के लिए आपने ही तो जिद ठान ली थी।

—हाँ, ठानी थी पर अब नहीं जाऊँगा, बस! चलो सुचिन्ता, चलो। हम लोग कहीं छुप जाते हैं। कहकर सुशोभन चलने के लिए मुड़े।

मीना कातर स्वर में बोली—पिताजी, मैं आपको फिर यहाँ ले आऊँगी। अब चलिए।

पर पागल सुशोभन अपनी जिद पर अटल रहे। बोले—नहीं। मैं नहीं जाऊँगा। मैंने कहा न, मेरी जाने की इच्छा नहीं है।

ड्राइवर ने भी नाराजगी से कुछ टिप्पणी की। अशोका व्यग्र भाव से बोली—मँझले भैया चलिए न! देर हो रही है।

—तुम बीच में क्यों बोल रही हो? तुम कौन हो?

निरुपम सुशोभन को रोककर बोला—सड़क के बीच खड़े होकर यह क्या हो रहा है? गाड़ी में बैठिए। नहीं तो मजबूरन पकड़कर—

सुशोभन डर गए। दिशाहारा होकर आर्तनाद कर बोले—सुचिन्ता! ये लोग मुझे जबर्दस्ती पकड़कर ले जा रहे हैं। तुम इन्हें रोको। तुमने कहा था न, मुझे रोक लोगी, जाने नहीं दोगी।

नहीं, इस युग में धरती फटती नहीं है। दुःसह लज्जा का भार भी आदमी को ढोना पड़ता ही है। रक्त-मांस के साढ़े तीन हाथ के शरीर को कितना कुछ सहना पड़ता है। इस दुःसह परिस्थिति को सहकर शान्त भाव से पर दृढ़ स्वर में सुचिन्ता बोली—सुशोभन, गाड़ी में जाकर बैठो।

—नहीं जाना। मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगा।

—माननी पड़ेगी। कहना मानना चाहिए, सुशोभन। नहीं तो लोग बुरा कहेंगे।

—कहने दो बुराई। पिंजड़े में बन्द शेर की तरह गरजकर सुशोभन बोले—बदनामी से मैं फिर नहीं जाऊँगा।

—छि: ऐसा क्यों कर रहे हो? तुम तो अच्छे हो गए हो?

—नहीं। मैं ठीक नहीं होना चाहता। मुझे अच्छा नहीं होना है। तुम मुझे ठग कर ठीक-ठाक कर भगा देने पर तुली हुई हो। मैं तुम्हारी चाल समझ गया हूँ। कहकर सुशोभन पर की तरफ बढ़ने लगे।

नीना कातर भाव से बोली—अब क्या होगा, बड़े भैया ?

अशोका भी कातर भाव से बोली—मँझले भैया, यह आप क्या कह रहे हैं ? हम सभी दिल्ली जा रहे हैं, आपके सैंडो गुंडा भी जा रहे हैं।

—चुप भी रहो। तुम कौन हो जो बीच-बीच में बोल रही हो ? मैं तुम लोगों को किसी को नहीं जानता हूँ, बस।

निरुपम बोला—जबर्दस्ती के सिवाय और कोई चारा नहीं है। माँ, तुम अन्दर जाओ। मैं जैसे भी होगा—आइए। गाड़ी में चलकर बैठिए। गाड़ी छूट जाएगी। सुशोभन के कंधे पर निरुपम ने हाथ रखा।

सुशोभन ने धक्का मारकर निरुपम का हाथ हटा दिया। बोले—जाओ। गाड़ी छूट जाने दो।

—क्या हो रहा है ? सुचिन्ता बोली।

—माँ, तुम जाओ, मैं इन्हें देखता हूँ।

पर निरुपम क्या देखेगा ? किसे देखेगा ? जो पागल सड़क पर खड़ा होकर चिल्ला रहा था, 'सुचिन्ता, तुम कहाँ हो, मुझे रोकती क्यों नहीं ?' उसे निरुपम कैसे सँभालता ?

—अब कुछ नहीं हो सकता। सुचिन्ता निरुपम की ओर देखकर बोली—तुम लोग चले जाओ।

—हम लोग चले जाएँ ?

—और क्या ?

—और तुम ?

—मैं ?

सुचिन्ता हँसकर बोली—मेरा तो सब कुछ ही लक्ष्यहीन है। देख रही हूँ कि मुझे तो जिन्दगी भर इस पागल के साथ जलकर खाक होना पड़ेगा।

फिर सुशोभन की पीठ पर हाथ रखकर सुचिन्ता अनुपम कुटीर की तरफ चल पड़ी।

□□□